मंझन का सौन्दर्य-दर्शन

लेखक
डा० लालताप्रसाद सक्सेना,
एम ए, पाएच डी, डी लिट
रीडर, स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर

निर्मल प्रकाशन संस्थान, जयपुर-४.

प्रकाशक
निर्मल प्रकाशन संस्थान
डी०-१६३ बापूनगर
जयपुर-४

मूल्य २० रुपये

आवरण शिल्पी
प्रेमचन्द गोस्वामी

संस्करण १९७४

मुद्रक
चन्द्रोदय प्रिन्टर्स
जयपुर

मन्थन का सौन्दर्य दर्शन	Manthan ka Saundarya-Darshan
डा० लल्लनप्रसाद सक्सेना डी० लिट्	By Dr L P Saksena Lalit D Litt PRICE Rs 20 00 Rupees Twenty Only

समर्पण—

विद्वद्वर डा० माताप्रसाद जी गुप्त

को

जिनके व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व

से

इसके प्रणयन की प्रेरणा मिली

सादर

—लेखक

उपोद्घात

हिन्दी की अवधी सूफी प्रेमाख्यान धारा को समझने के लिए मझन की रचना अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है। एक तो, इसलिए कि वह धारा की प्रारंभिक रचनाओं में से है और उसके पूर्व की तीन ही रचनाएँ अभी तक मिली हैं दाऊद की चंदायन, कुतुबन की मृगावती और जायसी की पदमावत (दाम से पदमावत तो उसकी समकालीन ही मानी जायगी, क्योंकि दोनों की रचना तिथियों में केवल पाँच वर्षों का अन्तर है और इस बात के प्रमाण नहीं हैं कि मझन ने मधुमालती की रचना के पूर्व पद्मावत को देखा था)। दूसरे इसलिए कि मझन ने एक किंचित भिन्न ढाँचा कथा का प्रस्तुत किया दाऊद की रचना में लोरिक अपने सारे प्रयत्नों में अकेला है, उसे दुःख है कि उसका साथी सगी-सहायक कोई नहीं है, यही बात कुतुबन की रचना में भी दिखाई पडता है, जायसी की रचना में रत्नसेन के साथ उसके कुमारभुक्त सिंहल अवश्य जाते हैं किन्तु वह अपनी साधना में उनकी कोई सहायता नहीं लेता है, मझन में नायक के उद्देश्य की प्राप्ति में उसकी सहायिका एक अन्य राजकुमारी होती है और इसी प्रकार नायिका के उद्देश्य की प्राप्ति में सहायक एक अन्य राजकुमार होता है इनकी सहायता से ही दोनों परस्पर मिल पाते हैं और मझन इन अन्य दोनों उपकारियों को भी पारस्परिक प्रेम में आबद्ध कर विवाह-सूत्र में बाँध देते हैं। तीसरे, इसलिए कि जब कि पूर्ववर्ती तीनों प्रेमाख्यान लेखक कथा को दुःखान्त रखते हैं मझन उसे सुखान्त बनाते हैं कुतुबन तथा जायसी की रचनाओं के अन्त प्राप्त ही है, दाऊद की रचना का अन्त प्राप्त नहीं है किन्तु उसकी नायिका चाँदा की षष्ठी के अवसर पर उसके भाग्य का लेख पढ़ते हुए ज्योतिषियों ने कहा है– छगी क आगर दीरघ लिलारा उरधइ मो जन्हि जमवारा।' और नायक से उसके प्रवास में मिलते समय ब्राह्मण गुरुजन ने कहा है कि वह चन्द को राज्य देगा— "राजा चन्द्र पाट बइसारा मति बिरसपति सुरिजु उमारा।' जिससे ज्ञात होता है कि दाऊद की रचना भी दुःखान्त थी (कुतुबन तथा दाऊद की रचनाओं के लिए दे॰ प्रस्तुत लेखक द्वारा सपादित होकर उनके प्रकाशनीय संस्करण)। चौथे, इसलिए कि मझन अपनी परम्परा के पूर्वजों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट वक्ता हैं, दाऊद के बारे में

अभी विवाद है कि उनकी रचना का उद्देश्य एक शुद्ध प्रेम की कथा कहना था, क्योंकि उसमें एक उग्र परकीया प्रेम का चित्रण हुआ है। कुतुबन का अभिप्राय इतना विवादास्पद नहीं रहा है, किन्तु यह प्रकट है कि उसमें प्रेम के कथा पक्ष पर जितना बल दिया गया है उतना प्रेम के दर्शन-पक्ष पर नहीं। मृगावती को प्राप्त करने के लिए नायक घर-बार छोड़कर अनेकानेक कष्ट सहता है और उसको लेकर घर लौटता है उसका प्रेम किसी प्रकार से दूषणीय भी नहीं है किन्तु इस प्रेम व्यापार में पारमार्थिकता के स्पष्ट संकेत नहीं हैं। जायसी में यह कठिनाई नहीं है—जहाँ कहीं भी प्रेम के पूर्वराग, संभोग तथा वियोग के प्रकरण आते हैं जायसी प्रेम की अलौकिकता और दिव्यता के संकेत करना नहीं भूलते हैं किन्तु जायसी एक महान कलाकार भी हैं और कथनों में अतिशयोक्ति का प्रयोग भी वे बहुधा करते हैं इसलिए कभी कभी यह संदेह होने लगता है कि उनके कथनों में अलौकिकता व्यंग्य है या केवल अलंकरण के रूप में लाई गई है। वस्तुस्थिति कदाचित् यह है कि दोनों को वे साथ साथ लेकर चलते हैं और दोनों का निर्वाह इस प्रकार करते हैं कि पाठक इस उलझन में आदि से अंत तक पड़ा रहता है कि उनके प्रेम निरूपण में व्यंग्य कितना है और वाच्य कितना है। मंझन में ऐसी कोई समस्या नहीं मिलती है—आदि से अंत तक उनके कथन स्पष्ट हैं और कहीं भी वे पाठक को उलझन में नहीं डालते हैं। भले ही यह कहा जाए कि इसीलिए उनके काव्य में वह विलक्षणता नहीं है जो हम जायसी के काव्य में मिलती है किन्तु यह मानना पड़ेगा कि अवधी की सूफी प्रेमाख्यानक परम्परा की दार्शनिक और वैचारिक पृष्ठभूमि को जितनी स्पष्टता के साथ मंझन की कृति से समझा जा सकता है, उतनी स्पष्टता के साथ उनके समसामयिक या पूर्ववर्ती उस परम्परा के किसी भी अन्य कलाकार की कृति से नहीं समझा जा सकता है।

मुझे अत्यधिक प्रसन्नता है कि ऐसे विशिष्ट कवि और कलाकार के सौन्दर्य-दर्शन पर डा० [illegible]ताप्रसाद सक्सेना ने बड़ी योग्यता और कुशलता के साथ अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। मुझे विश्वास है कि यह रचना मंझन के समस्त पाठकों के लिए उपादेय होगी। कहीं कहीं पर इनसे मतभेद होना संभव है जैसे मंझन के दोहों की छंद योजना के सम्बन्ध में। मंझन ने दोहों में २३ तथा २४ मात्राओं के चरण तो रखे ही हैं जैसे वे तुलसीदास आदि की कृतियों में मिलते हैं किन्तु कहीं कहीं पर उन्होंने २७ या २८ मात्राओं के भी चरण रखे हैं। डा० सक्सेना इसे उनकी त्रुटि समझते हैं और कहते हैं कि उन्हें अपने दोहों में एक-दो शब्द कम करके २३-२४ मात्राओं वाले माप का ही निर्वाह करना चाहिए था। वस्तुस्थिति यह है कि किसी भी कलाकार से हम अपनी मान्यताओं के निर्वाह की अपेक्षा नहीं कर सकते हैं हम तो उसकी मान्यताओं को लेकर ही उसकी कला की समीक्षा करनी चाहिए। यदि

का २७–२८ मात्राओं का रूप जायसी तथा कुतुबन में तो इसी प्रकार मिलता ही है, अवधी की सूफी प्रेमाख्यान धारा के कुछ अन्य कवियों में भी मिलता है और यह कदाचित इसलिए है कि दोहा अवधी प्रदेश में एक गेय छन्द रहा है, और इसी प्रकार अपने दोनों रूपों में प्रचलित रहा है। २७–२८ मात्राओं के चरणों में एक विशिष्ट प्रकार की लय होती है जो २३–२४ मात्राओं के चरणों से भिन्न होती है। अतः अधिक से अधिक प्रश्न यह हो सकता है कि दोहे के दोनों साँचों का एक साथ प्रयोग इन कवियों ने क्यों किया है? क्या इस प्रयोग में इनकी कोई पद्धति भी रही है, या नहीं? इस पद्धति के मूल में कला अथवा अभिव्यक्ति संबंधी कोई आधार रहा है या नहीं?—आदि। आशा है कि आगे इस दृष्टि से भी अवधी सूफी प्रेमाख्यानों की इस प्रवृत्ति पर विचार किया जाएगा। हम डा० सक्सेना का उपकृत होना चाहिए कि उन्होंने मंझन की कला का यह उपयोगी और विचारोत्तेजक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

—मातप्रसाद गुप्त

प्रोफेसर एवं निदेशक

क० मु० हिन्दी एवं भाषा विज्ञान विद्यापीठ

आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

का २७–२८ मात्राओं का रूप जायसी तथा कुतुबन में तो इसी प्रकार मिलता ही है, अवधी की सूफी प्रेमाख्यान धारा के कुछ अन्य कवियों में भी मिलता है, और यह कदाचित इसलिए है कि दोहा अवधी प्रदेश में एक गेय छन्द रहा है, और इसी प्रकार अपने दोनों रूपों में प्रचलित रहा है। २७–२८ मात्राओं के चरणों में एक विशिष्ट प्रकार की लय होती है जो २६–२४ मात्राओं के चरणों से भिन्न होती है। अतः अधिक से अधिक प्रश्न यह हो सकता है कि दोहे के दोनों साँचों का एक साथ प्रयोग इन कवियों ने क्यों किया है? क्या इस प्रयोग में इनकी कोई पद्धति भी रही है, या नहीं? इस पद्धति के मूल में कला अथवा अभिव्यक्ति संबंधी कोई आधार रहा है या नहीं?—आदि। आशा है कि आगे इस दृष्टि से भी अवधी सूफी प्रेमाख्यानों की इस प्रवृत्ति पर विचार किया जाएगा। हम डा० सक्सेना का उपकृत होना चाहिए कि उन्होंने मंझन की कला का यह उपयोगी और विचारोत्तेजक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

—माताप्रसाद गुप्त

प्रोफेसर एवं निदेशक,
क० मुं० हिन्दी एवं भाषा विज्ञान विद्यापीठ
आगरा विश्वविद्यालय, आगरा

अनुक्रमणी

मंझन
का
सौन्दर्य-दर्शन

भूमिका

सौन्दर्य साहित्यिक सृष्टि का मूलाधार है। उसके अभाव में साहित्य का अस्तित्व सम्भव नहीं। मानव प्रकृति एवं वस्तु आन्तरिक एवं वाह्य, स्थूल एवं सूक्ष्म अनुभूतिक एवं अभिव्यक्तिक सौन्दर्य के बहु विध रूपों की नींव पर ही, उनके ईंट-गारे एवं पत्थरों से ही साहित्य के विराट भवन का निर्माण होता है। सौन्दर्य के भव्य रूपों के साक्षात्कार से आत्म विभोर एवं आनन्द विह्वल साहित्यकार उनकी अभिव्यक्ति के लिए आकुल व्याकुल हो माता वागीश्वरी की शरण लेता है और तभी उसकी कलम कूचिका में साहित्यिक सौन्दर्य के शत-शत रूपों एवं भव्यातिभव्य चित्रों की सृष्टि होती है।

मानव सौन्दर्योपासक प्राणी है। सौन्दर्य में वह जितना अभिभूत होता है उतना अन्य किसी वस्तु से नहीं। सौन्दर्यानन्द में आत्म विभोर मानव अपने पृथक अस्तित्व का भी विस्मरण कर देता है, धर्म अधर्म पाप-पुण्य मङ्गल अमङ्गल, हानि लाभ, जीवन मरण की चिन्ता से मुक्त हो कर सौन्दर्य सागर की लहरों का आनन्द लेने में ही अपने जीवन की चरम सार्थकता समझता है।

सौन्दर्य मानव-जीवन का सर्वस्व है। उसकी साधना तथा उसकी प्राप्ति ही उसके जीवन का सबसे बड़ा लक्ष्य है। वह अपने चतुर्दिक उसी का प्रसार, उसी की सृष्टि देखना चाहता है उसी में आत्म विभोर हो कर अपने जीवन का चरम साफल्य समझता है। उसके अभाव में उसका जीवन जीने योग्य नहीं रहता। अपने खान पान वेश भूषा रीति रिवाज रहन सहन, निवास उद्यान, शिक्षण एवं जन स्थान सर्वत्र सौन्दर्य का ही प्रसार देख कर उसे सन्ताप होता है। यही नहीं जहां उसका अभाव है वहां भी वह उसकी सृष्टि कर के अपनी सौन्दर्य दर्शन की आकांक्षा की पूर्ति करना चाहता है। कविवर श्री सुमित्रानन्दन पन्त की अधिकांश कृतियां उसकी इसी मूल प्रवृत्ति की परिचायिका हैं —

रम्य रूप निर्माण करो हे
रम्य वस्त्र परिधान
रम्य बनाओ गृह जन पथ को
रम्य नगर जनस्थान।
रम्य सृष्टि हो रूप जगत् की
रम्य धरा शृंगार
बाह्य रूप हो रम्य वस्तु का
होंगे रम्य विचार।
रम्य रूप हो मानवता का
अखिल मनोरम वेश
भावी रम्य मनुजता का मन
वहन करे निःशेष।

\+ + +

रम्य रूप मानव समूह का
जीवन रूप विचार[1]।

सौन्दर्य जिस प्रकार जीवन का सर्वस्व है उसी प्रकार साहित्य एवं साहित्यकार का भी। जीवन में जिस प्रकार हम सर्वत्र सौन्दर्य के ही विभिन्न रूपों का प्रसार देखना चाहते हैं उसी प्रकार साहित्य में भी। यही कारण है कि साहित्य का एक मात्र विषय सौन्दर्य है चाहे वह प्रत्यक्ष रूप में हो अथवा परोक्ष रूप में। साहित्यकार वस्तुतः जीवन में व्याप्त हुए सौन्दर्य को वाणी देता है—अङ्कित चित्रित करता है। उसका साधन एवं माध्यम सभी कुछ सौन्दर्य है। उसका शस्त्र भी सौन्दर्य है और अस्त्र भी। सौन्दर्य द्वारा ही वह सौन्दर्य की सृष्टि करता है, संसार को उसकी ओर अभिमुख करता है उसकी महिमा का परिज्ञान कराता है और साथ ही उसके सृजन की अभीष्ट प्रेरणा देता है।

साहित्य और सौन्दर्य का अभिन्न सम्बन्ध है, बल्कि यह कहना चाहिए कि साहित्य सौन्दर्य का पर्याय है उसी का मूर्तिमान रूप है। उसके अभाव में उसका

१ पन्त—रूप निर्माण, युग-वाणी तृतीय सं० पृ० ४१।

अस्तित्व सम्भव नही। उसका बाह्य एवं आन्तरिक रूप सभी कुछ सौन्दर्य का प्रतिरूप है। उसका ताना बाना उसी के विभिन्न तत्वों से बुना जाता है। जिस प्रकार यह सृष्टि परमात्मा से उद्भूत होकर उसी में निवास करती है उसी से लालित पालित होती है उसी में पुष्ट होती है और अन्तत उसी में विलीन हो जाती है उसी प्रकार साहित्यिक संसार की सृष्टि भी सौन्दर्य से होती है, उसी से लालित-पालित एवं हृष्ट पुष्ट होती है उसी से पोषक तत्व ग्रहण करती है उसी में श्वास प्रश्वास लेती है जीवन यापन करता है और अन्तत उसी मे विलीन हो जाती है।

किन्तु यदि एक ओर सौन्दर्य साहित्य का पोषक है तो दूसरी ओर साहित्य सौन्दर्य का। एक प्रकार से दोनो का अन्योयाश्रित सम्बन्ध है। दोनों का ही अस्तित्व एक दूसरे पर निर्भर है। एक के अभाव मे दूसरा मृतप्राय है। किन्तु यह कहना भ्रामक होगा कि सौन्दर्य मात्र साहित्य अथवा साहित्यिक कृतियों पर आधारित है। उसका एक अङ्ग एक रूप साहित्य पर आधारित अवश्य है उसके एक रूप की सृष्टि उससे अवश्य होती है किन्तु उसके अन्य अनेक रूप उस पर आश्रित-आधारित नही। उसका क्षेत्र विश्व-नियन्ता के बहुविध रूपो के समान अत्यधिक व्यापक है। साहित्यिक सौन्दर्य के अतिरिक्त जीवन के बहुविध रूपो के अतिरिक्त कला जगत् के अनेकश रूप उसके रूप वैविध्य के परिचायक हैं। वास्तु मूर्ति, चित्र एवं सङ्गीत का सौन्दर्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा सकता है। फिर भी उसका साहित्यिक रूप भी कम महत्वपूर्ण नही उससे उसे जितना बल मिलता है उतना कदाचित् अन्य रूपों से नही। साहित्यिक सौन्दर्य की महत्ता का यही रहस्य है। उसके सौन्दर्य से हम जितने अभिभूत होते हैं उतने उसके अन्य उपलब्ध रूपो से नहीं। जीवन में जिनमे कभी भी सहानुभूति का आविर्भाव नही होता, परोपकार करुणा आदि भावों का जो कभी अनुभव नहीं करते वे भी साहित्य के पात्रों के दुख-दैन्य से उनकी मर्मान्तक पीडा से विह्वल हो कराह उठते है उनकी आत्मा छटपटाने लगती है और चाहती है कि उसकी करुण दशा के लिए उत्तरदायी व्यक्ति को उसके पाप कृत्यों का उचित दण्ड, धिक्कार ही सही तुरन्त मिले और वस्तुत जब ऐसा होता है तभी उनकी आत्मा को सन्तोष होता है। उसकी इसी महत्ता के कारण यह माना जाता है कि सौन्दर्य हर विकृति को सुधार सकता है। साहित्यकार इसकी स्पष्ट घोषणा करता है —

"तुम कवि हो
तुम्हें विश्वास है कि

वह शक्ति है सौन्दर्य में
कि वह हर विकृति का सुधार करता है
मुझे भी इस पर विश्वास है
मानुस और आविष्कार के द्वारा
हम दया के योग्य मूक पशुओं से
आगे बढ़ जाएंगे।[1]

वह जानता है कि संसार में जो श्रेष्ठतम है वही सौन्दर्य है। स्नेह, दया करुणा, परोपकार आदि विश्व मंगल विधायिनी वृत्तियाँ संसार की समग्र पुतात्माओं की विशेषताएं हैं। मानवात्मा के अन्तराल में स्थित यही आन्तरिक सौंदर्य विश्व का शाश्वत सत्य है और इस क्षणिक जग जीवन में केवल यह सौंदर्य ही अविनश्वर है —

'मैं विश्वास करता हूं कि जो सद्भाव
मुझ में है वह सब में होगा—
मुझ में जो श्रेष्ठतम है
वह सब में है
जो सुन्दर है
केवल वही पृथ्वी पर टिकेगा।[2]

जीवन के बाह्य सौन्दर्य की पूर्णता उसके आन्तरिक सौन्दर्य में है जिसका रहस्य कली में अन्तर्हित मधुमास के समान प्रत्येक मनुष्य की अन्तरात्मा में छिपा रहता है —

'जैसे हर बन्द कली में
मधुमास छिपा रहता है
वैसे ही हर मनुष्य की आत्मा में

---

१ विलियम कार्लोस विलियम्स 'सड़क पर पड़े एक घायल कुत्ते को देखकर', देशान्तर (सम्पादक भारती), पृ० ६० ।
२ 'कनेथ पचेन 'सुन्दर क्या है ?', देशान्तर (भारती), पृ० ४६२ ।

जीवन के पूर्ण सौन्दर्य का भेद छिपा रहता है।"[1]

कहने की आवश्यकता नहीं कि मानवात्मा में अन्तर्हित इस सौन्दर्य के रहस्योद्घाटन का उत्तरदायित्व कलाकार पर है क्योंकि उसका सर्वाधिक सफल चित्रकार वही हो सकता है। सौन्दर्य का उपासक साहित्यकार भी इसीलिए मानवात्मा के इस बहुविध सौन्दर्य का उद्घाटन करके कृतकृत्य होता है।

सौन्दर्य का प्रभाव अमोघ है। मानव ही नहीं, पशु-पक्षी एवं कीट पतंगादि तक उसके प्रभाव से अछूते नहीं रह सकते। प्राणी पर यदि एक ओर मानव सौन्दर्य का प्रभाव पड़ता है तो दूसरी ओर प्रकृति सौन्दर्य का। यदि एक ओर वानस्पतिक प्राणी एवं कीट-पतंगादि मानव सौन्दर्य के साक्षात्कार से आत्म विभोर हो उठते हैं तो दूसरी ओर प्रकृति के अमोघ सौन्दर्य में भी उन्हें उसी प्रकार आत्म-विभोर कर लेने की क्षमता है। यदि एक ओर कवि मानव सौन्दर्य के अमोघ प्रभाव की व्यंजना करता है —

हसने लगे कुसुम कानन के
देख चित्र सा एक महान्।
विकस उठीं कलियां डालों में
निरख मैथिली की मुसकान
कौन कौन से फूल खिले हैं
उन्हें गिनाने लगा समीर।
एक एक कर गुन-गुन करके
जुड़ आई भौंरों की भीड़।[2]

तो दूसरी ओर प्रकृति सौन्दर्य के अमोघ प्रभाव की—

"प्रकृति रमणीक है
जिसने इतना ही कहा—
उसने सकुल सौन्दर्य के घनीभूत सार को
आत्मा के कणों पर

---

१ जुड़ाव करे प्रार्थना (भारती) पृ० ७५।
२ [illegible]

सौन्दर्य का अस्तित्व यदि एक ओर वस्तु जगत् में है तो दूसरी ओर द्रष्टा मानव अथवा प्राणी विशेष के मन मस्तिष्क अथवा उसकी आत्मा में। यदि एक ओर वह मानव प्रकृति एवं वस्तुओं के बाह्य रूपाकार तथा अंग प्रत्यंगों की विशेषता है तो दूसरी ओर विश्व मंगल विधायक आदर्शों गुणों एवं वृत्ति व्यापारों की। यदि एक ओर हम उसे बाह्य रूपाकार में लहराता पाते हैं तो दूसरी ओर करुणा, परोपकार आदि गुणों में उसकी दिव्य छटा। यदि एक ओर वह साहित्य एवं कला जगत् का वैभव है तो दूसरी ओर साहित्येतर जगत् का।

सौन्दर्य मंगल का पर्याय है। अतः उसकी एकमात्र कसौटी 'शिव' है—'शिव' से रहित सौन्दर्य विष पूर्ण कनक घट के समान है जिसका कोई महत्व नहीं, कोई मूल्य नहीं। अतः मानव मात्र के वे वृत्ति-व्यापार जो विश्व मंगल विधायक हैं सुन्दर हैं। यही नहीं मानव मात्र की वे वृत्तियाँ भी, जिन्हें हम सामान्यतः गर्हित समझते हैं, किसी समय अथवा परिस्थिति विशेष में अपने विश्वमंगल विधायक रूप के कारण सुन्दर एवं स्पृहणीय हो जाती हैं। कवि मानव मन की इन वृत्तियों में मा ऐसे दिव्य सौन्दर्य की योजना करता है कि प्राणी उस पर मुग्ध हो कर उसे आत्मसात् करने के लिए व्याकुल हो उठता है। दुःशासन दुर्योधन तथा उनके अन्य बन्धुओं के प्रति भीम और रावण के प्रति राम का क्रोध, कृष्ण द्वारा शिशुपाल एवं कंस का वध, नरसिंह द्वारा हिरण्यकशपु और भीम द्वारा जरासन्ध का वध, किसी निरपराध अबला को बलात् पकड़ कर ले जाने वाले भीमकाय एवं दुर्धर्ष गुण्डे पर पीछे से दण्ड प्रहार, किसी नीचकर्मा प्राणी को किसी घृणित कर्म में रत देख कर उसके प्रति अपशब्द-कथन, लूट पाट, रक्त पात, नारी लज्जापहरण, देश की स्वतन्त्रता पहरण अथवा उसके किसी भू भाग को दबा लेने के उद्देश्य से अकारण आक्रमण करने वाले देश का मुँह तोड़ जवाब देने के लिए उसके सहस्रों लाखों सैनिकों की निर्मम हत्या तथा उनके प्रति दुर्व्यवहार, निरपराध कुमारियों अथवा अबलाओं को बन्दी बना कर अपनी वृत्तियों को तुष्ट करने का प्रयत्न करने वाले दुष्टात्मा शासक का निर्मम वध आदि दुर्वृत्तियाँ एवं दुष्कर्म होते हुए भी मंगलमय धर्म-कार्य एवं शोभनीय वृत्ति-व्यापार हैं जिनकी ओर मानव लालायित मन एवं नेत्रों से देखता है और जिनका श्रवण, कीर्तन एवं स्मरण करके वह अपनी वृत्तियों के परिष्कार का प्रयत्न करता है।

सौन्दर्य साहित्य का सर्वोच्च शासक है और सत्य तथा 'शिव' उसके परामर्शदाता मंत्री अथवा अधीनस्थ शासक। साहित्य में उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि उनका स्थान अथवा कार्य क्षेत्र व्यापारों से 'सुन्दर' का कोई विरोध

करुणा एवं परोपकार :—

बना स्व गाथा मिस इस्त प्यार का,
मिला घन पल्लव का हरीतिमा ।
परोपकारी जन तुल्य सबका,
मनोज्ञ का शोक सम्हार सोचता ।[1]

गुण सरलता :—

पुष्प में है अनन्त मुसकान
त्याग का है मारुत में गान
सभी में है स्वर्गीय विकास
वही कोमल कमनीय प्रकाश ।[2]

वात्सल्य एवं भगिनीत्व :—

प्रकृति ममतालु है
दूध भरी वत्सलता से सोना—
छाया का आंचल पसारती
—माता है ।
स्निग्ध रश्मि राखी के बन्धन से बाँधती
—निर्मल सहोदरा है ।[3]

अब प्रश्न उठता है कि जो सौन्दर्य साहित्य का सर्वस्व है उसकी शब्द-व्युत्पत्ति क्या है ? परिभाषा की सीमा में उसे कहां तक बांधा जा सकता है और ऐसा करना कहां तक उचित है ? निकटतम और सरलतम अनुभूति होने के कारण उसकी परिभाषा निर्धारण में क्या कठिनाइयां हैं और वस्तु जगत् की कटी छंटी सीमाओं में उसे बांधना कहां तक उचित है ?

---

१ हरिऔध प्रियप्रवास नवम सर्ग, छन्द ५०।
२ महादेवी वर्मा आधुनिक कवि (१) पृ० १३।
३ जगत का गुप्त प्रकृति रमणीय है किरण किट, प्र० सं० पृ० २६—३०।

व्युत्पत्ति :—

सौंदर्य शब्द संस्कृत के सुंदर (विशेषण) शब्द की भाववाचक संज्ञा है 'सुंदर का भाव है—सुंदरस्य भाव सौन्दर्यम्।' किन्तु सुन्दर शब्द की व्युत्पत्ति अनिश्चित है। विभिन्न दृष्टियों से उसकी व्युत्पत्ति विभिन्न प्रकार से की जा सकती है। यदि एक ओर उसकी व्युत्पत्ति 'उन्द्' धातु में 'सु' उपसर्ग तथा 'अरन्' प्रत्यय जोड़कर की जा सकती है—सु+उन्द्+अरन् से उसकी सिद्धि की जा सकती है[1] और इस प्रकार सु अर्थात् सम्यक् रूपेण, 'उन्द्' अर्थात् आर्द्र करना और 'अरन्' कर्तृवाचक प्रत्यय (करना) के आधार पर जो सम्यक्रूपेण आर्द्र अथवा द्रवीभूत करे, वही सुन्दर है माना जा सकता है तो दूसरी ओर उसकी व्युत्पत्ति 'नन्द्' धातु से मानी जा सकती है—सु अर्थात् सम्यक्रूपेण और 'नन्द्' अर्थात् प्रसन्न अथवा आनंदित करना अर्थात् जो सम्यक्रूपेण प्रसन्न अथवा आनंदित कर अथवा जिसमें सम्यक्रूपेण प्रसन्न अथवा आनंदित करने का गुण हो वही सुन्दर है। इसी प्रकार उणादि सूत्र[2] के आधार पर सुन्दर की व्युत्पत्ति सुन्द्+अर से भी की जा सकती है।[3] इनके अतिरिक्त अन्य दृष्टियों से उसकी निम्नांकित व्युत्पत्तियाँ और की जा सकती हैं —

(क) सुष्ठु उनत्ति आर्द्रीकरोति चित्तम् इति सुन्दरम् अर्थात् जो चित्त अथवा हृदय को सम्यक्रूपेण द्रवीभूत आर्द्र अथवा आत्म विभोर करने की क्षमता रखता हो, वह सुन्दर है[4]।

(ख) सुन्द' अर्थात् कतनी 'अर्थात् जो कैंची की तरह काटने वाला हो उसको जो लाता हो वह सुन्दर हुआ। सौंदर्य' हृदय पर नम्र के द्वारा, कैंची की सी काट वाला पक्का प्रभाव करता है यह कौन नहीं जानता ? ५

(ग) 'सुन्द' राति इति सुन्दरम्, तस्य भाव सौन्दर्यम्। सुन्द को जो लाता हो वह सुन्दर, और उसका भाव जहाँ हो, वह 'सौन्दर्य' कहलाता है।'[6]

---

१ वाचस्पत्य कोश सं० वि० २०१८, पृ० ५२३८।

२ उणादि सूत्र ५ १३३।

3 The Practical Sanskrit English Dictionary (Apte) Edition 1959 Page 1693

४ हलायुध कोश, प्रथम सं०, शकाब्द १८७६, पृ० ७१४।

५ डा० रामस्वरलाल खण्डेलवाल, आधुनिक हिंदी-कविता में प्रेम और सौंदर्य, प्रथम सं०, पृ० १४१।

६ वही, पृ० १४१।

उक्त व्युत्पत्तियों के अतिरिक्त 'सुन्दर' शब्द की सिद्धि असुर (प्राण) तथा आनन्द के सुनर शब्द से भी की जाती है — असुर से इसकी व्युत्पत्ति सिद्ध करते हुए उसमें प्राण, जीवन अथवा आनन्द देने के गुण का अस्तित्व व सुनर से व्युत्पत्ति मानते हुए उसमें भाषा वैज्ञानिक आगम प्रक्रिया के आधार पर द का आगम माना जाता है। किन्तु ये दोनों ही व्युत्पत्तियाँ भ्रामक एवं निराधार हैं। 'सुनर' तथा 'असुर' से सुन्दर शब्द का सम्बन्ध जोड़ना उचित नहीं।

उक्त समस्त व्युत्पत्तियों के अध्ययन से विदित होगा कि 'सुन्दर' शब्द का सम्बन्ध वस्तुतः केवल 'उन्द्' धातु से ही है। अतः जो व्युत्पत्तियाँ इसके आधार पर की जाती हैं केवल वे ही ग्राह्य हैं। अन्य व्युत्पत्तियों की कल्पना 'सुन्दर' शब्द की विभिन्न विशेषताओं के आधार पर की जाती है मूलतः 'सुन्दर' शब्द से उनका कोई सम्बन्ध नहीं। अतः अन्य सभी व्युत्पत्तियाँ भ्रामक एवं निराधार हैं यह कहने में कदाचित् कोई अनौचित्य नहीं।

परिभाषा —

प्रायः यह देखने में आता है कि जो वस्तु जितनी ही निकटवर्ती एवं चिर परिचित होती है उसकी परिभाषा निर्धारण की समस्या उतनी ही जटिल एवं दुरूह। सौन्दर्य सम्बन्धी विभिन्न परिभाषाओं को देखकर भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है। इसकी अनुभूति जितनी ही सहज सुगम, कमनीय एवं स्पृहणीय है परिभाषा निर्धारण की समस्या उतनी ही जटिल दुर्बोध असाध्य एवं दुस्साध्य। यही कारण है कि इसकी परिभाषाओं एवं स्वरूप के विषय में जितना मत-वैभिन्य है उतना कदाचित् अन्य किसी वस्तु के विषय में नहीं। विभिन्न विद्वानों ने इसकी परिभाषा विभिन्न दृष्टियों से की है। कोई इसके आत्मगत पक्ष का महत्त्व देता है तो कोई उसके वस्तुगत पक्ष को। कोई उसका अस्तित्व उसकी किसी एक विशेषता में मानता है तो कोई उसकी किसी अन्य विशेषता में। अतः इसकी कोई समुचित परिभाषा निर्धारण के पूर्व यह आवश्यक है कि विद्वानों द्वारा दी गई इसकी कतिपय महत्त्वपूर्ण परिभाषाओं पर दृष्टिपात कर लिया जाय।

पौरस्त्य विचारधारा —

पौरस्त्य विद्वानों ने सौन्दर्य विवेचन के प्रसंग को उतना महत्त्व नहीं दिया जितना कि पाश्चात्य मनीषियों ने। इस प्रसंग में विवेचित जिस सौन्दर्य की ओर संकेत किया जाता है, उसका उद्देश्य सौन्दर्य का शास्त्रीय विवेचन नहीं माना जा सकता।

रसानुभूति अलौकिक आनन्ददात्री अनुभूति अवश्य है, किन्तु सौन्दर्य रस का पर्याय नहीं कहा जा सकता। अतः रस प्रसंग में सौन्दर्य का सारगर्भित सूक्ष्म विवेचन हुआ है यह मानना असंगत है। हां रसानुभूति के निर्माणक आधार उसके आलम्बन—नायक-नायिका—के आन्तरिक एवं बाह्य सौन्दर्य का उसमें अवश्य महत्त्व है। किन्तु परिभाषा-निर्धारण के प्रसंग में यहां उससे कोई सहायता नहीं मिल सकती। इसके अतिरिक्त साहित्य के कलापक्षात्मक सौन्दर्य के अभिवर्द्धक उपकरणों के सौन्दर्य-विवेचन से भी इस विषय में अधिक योग नहीं मिलता। फिर भी साहित्य तथा साहित्येतर वाङ्मय में यत्र-तत्र सौन्दर्य की कतिपय परिभाषाएं आ गई हैं। साथ ही आधुनिक वाङ्मय में थोड़ा बहुत सौन्दर्य शास्त्रीय विवेचन भी हो गया है। अतः यहाँ भी कतिपय परिभाषाएँ देखने को मिल जाती हैं। अधोंकित परिभाषाएँ इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं —

(क) सौन्दर्यमलंकारः[1]।

(ख) क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः।[2]

(ग) अंग प्रत्यंगकानां यः सन्निवेशो यथोचितम्।
सुश्लिष्ट सन्धिबन्धः स्यात्तत्सौन्दर्य मितीर्यते।[3]

(घ) भवेत्सौन्दर्यमंगानां सन्निवेशो यथोचितम्।[4]

(ङ) अहो सर्वास्ववस्थासु रमणीयत्वमाकृति विशेषाणाम्।[5]

(च) प्रियेषु सौभाग्य फला हि चारुता।[6]

(छ) रमणीयार्थ प्रतिपादकः शब्दः काव्यम्। रमणीयता च लोकोत्तराह्लादजनक ज्ञान गोचरता।[7]

(ज) कुछ रूप रंग भी वस्तुएं ऐसी होती हैं जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिए हमारी सत्ता पर ऐसा अधिकार कर लेती हैं कि उसका ज्ञान ही हवा

१ वामन काव्यालंकार।

२ माघ शिशुपालवधम्।

३ रूप गोस्वामी उज्ज्वल नीलमणि (बम्बई काव्यमाला, ९५), पृ० २७४।

४ वही भक्तिरसामृत सिन्धु (काशी, सं० १९८८), पृ० १६५।

५ कालिदास, अभिज्ञान शाकुन्तल १।१८।

६ कालिदास, कुमारसम्भव।

७ पण्डितराज जगन्नाथ, रसगंगाधर।

हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप में ही परिणत हो जाते हैं। हमारी यह तन्मयता की दशा रसाकार-परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है।[1]

(ञ) उज्ज्वल वरदान चेतना का सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं।
जिसमें अनन्त अभिलाषा के सपने सब जगते रहते हैं।[2]

(ट) कुछ ऐसे दृश्य हैं जिनको देख कर हृदय में रस का संचार होता है। हम इन सब में जो मनोहारिता पाते हैं उसको सौन्दर्य कहते हैं।[3]

(ठ) अपनी अनुभूति प्रत्यक्ष स्मृति कल्पना आदि द्वारा आनन्द को उत्पन्न करने वाले वस्तु के गुण को सौन्दर्य और वस्तु को सुन्दर कहते हैं।[4]

(ड) प्रकृति, मानव-जीवन तथा ललित कलाओं के आनन्ददायक गुण का नाम सौन्दर्य है।[5]

(ढ) स्वप्न या सूक्ष्म जगत् में आत्मा की अभिव्यक्ति ही सौन्दर्य है।[6]

(ण) सौन्दर्य प्रकृति के कुछ दृश्यों अथवा कलाकृतियों और हमारे मन के मध्य एक विशिष्ट सम्बन्ध का द्योतक है।[7]

पाश्चात्य विचारक :—

व्यापक एवं सांगोपांग विवेचन की दृष्टि से पाश्चात्य सौन्दर्य-शास्त्रियों के प्रयास स्तुत्य हैं। किन्तु इस विषय में जितना उनमें मत-वैभिन्य है उतना पौरस्त्य मनीषियों में नहीं। परिभाषा निर्धारण के क्षेत्र में भी यही बात लागू होती है।

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि भाग १ (१९६३) पृ० १६४-१६८।

२ जयशंकर प्रसाद कामायनी (लज्जा सर्ग) पृ० १०२।

३ डा० सम्पूर्णानन्द चिद्विलास, पृ० १०६।

४ डा० हरद्वारीलाल शर्मा सौन्दर्य शास्त्र, पृ० १०।

५ डा० रामविलास शर्मा सौंदर्य की वस्तुगत सत्ता और सामाजिक विकास, समालोचक, सौन्दर्य शास्त्र विशेषांक।

६ हरिवंशसिंह सौन्दर्य विज्ञान, पृ० ५६-५७।

७ लीलाधर गुप्त पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धान्त पृ० २१३।

जहां यदि एक ओर प्लेटो मंगलमय में सौंदर्य का अस्तित्व मानते हैं[1] तो दूसरी ओर प्लाटिनस परमशक्ति के शिव रूप को सौंदर्य की सत्ता देते हैं,[2] यदि एक ओर शाफ्टसबरी संसार में जीवन के दैवी रूप की अभिव्यक्ति में सौंदर्य की अवस्थिति मानते हुए अचेतन पदार्थों में उसके अस्तित्व का निषेध करते हैं[3] तो दूसरी ओर ह्यूम आनन्दप्रद एवं संतोषदायक वस्तुओं में सौन्दर्य का अस्तित्व मानते हुए आनन्द-दायक एवं दुःखद प्रभावों को सौंदर्य तथा कुरूपता के लक्षण मानते हैं।[4]

इसी प्रकार अन्य अनेकानेक मनीषियों ने सौन्दर्य की परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं। अरस्तू प्लेटो के समान मंगल में ही सौंदर्य का अस्तित्व मानता है।[5] कांट ने निष्काम भाव से सार्वभौमिक संतोष देने वाली वस्तु में सौंदर्य को अवस्थित माना है।[6] टाल्स्टाय वस्तु एवं द्रष्टा दोनों में ही सौंदर्य की सत्ता मानते हुए आत्मगत

---

1 The principle of goodness has reduced itself to the law of beauty
—Plato Quoted from A History of Aesthetics (Bosanquet), Page 33

2 *Beauty is something supervening on the symmetry and that the symmetrical is beautiful for some other reason*
—*Carritt Philosophies of Beauty*

3 'Believing beauty to be an expression of the divine life of the world which he contrasts with dead matter in a way too much akin to Plotinus and is therefore unable to find an explanation for ugliness or evil
—A History of Aesthetics (Bosanquet) Page 177

4 'Beauty is such an order and construction of parts as either by the primary *construction of our nature* by custom or by caprice is fitted to give a pleasure and satisfaction to the soul This is the distinguishing character of beauty and forms all the difference betwixt it and deformity, whose natural tendency is to produce uneasiness
—Treatise of Human Nature (Green & Grose) Vol II page 95

5 The beautiful is that good which is pleasant because it is good"
—Quoted from A History *of Aesthetics (Bosanquet) Page 63*

6 The beautiful is that which is thought of as the object of Universal satisfaction apart from any conception '
—Quoted from Philosophies of Beauty (carritt), Page 111

हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप में ही परिणत हो जाते हैं। हमारी भावतन्मयता की यही तदाकार-परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है।[1]

(क) उज्ज्वल वरदान चेतना का सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं।
जिसमें अनन्त अभिलाषा के सपने सब जगते रहते हैं।[2]

(ख) कुछ रूप ऐसे होते हैं जिनको देख कर हृदय में रस का संचार होता है। हम इन सब में जो लक्षण पाते हैं उसको सौन्दर्य कहते हैं।[3]

(ग) हमारी अनुभूति अथवा स्मृति कल्पना आदि द्वारा आनन्द को उत्पन्न करने वाले वस्तु के गुण को सौन्दर्य और वस्तु को सुन्दर कहते हैं।[4]

(घ) प्रकृति मानव जीवन तथा ललित कलाओं के आनन्ददायक गुण का नाम सौन्दर्य है।[5]

(ङ) स्थूल या सूक्ष्म जगत् में आत्मा की अभिव्यक्ति ही सौन्दर्य है।[6]

(च) सौन्दर्य प्रकृति के कुछ रूपों अथवा कलाकृतियों और हमारे मन के मध्य एक विशिष्ट सम्बन्ध का द्योतक है।[7]

पाश्चात्य विचारक :—

व्यापक एवं सांगोपांग विवेचन की दृष्टि से पाश्चात्य सौन्दर्य-शास्त्रियों के प्रयास स्तुत्य हैं। किन्तु इस विषय में जितना उनमें मत-वैभिन्न्य है उतना पौरस्त्य मनीषियों में नहीं। परिभाषा निर्धारण के क्षेत्र में भी यही बात लागू होती है।

---

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि भाग १ (१९६३) पृ० १६४-१६५।

२ जयशंकर प्रसाद कामायनी (लज्जा सर्ग) पृ० १०२।

३ डॉ० सम्पूर्णानन्द, चिद्विलास, पृ० २०६।

४ डा० हरद्वारीलाल शर्मा सौन्दर्य शास्त्र, पृ० १०।

५ डा० रामविलास शर्मा सौन्दर्य की वस्तुगत सत्ता और सामाजिक विकास, 'समालोचक' सौन्दर्य शास्त्र विशेषांक।

६ हरिवंशसिंह सौन्दर्य विज्ञान, पृ० ५६-५७।

७ लीलाधर गुप्त पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धान्त पृ० २१३।

जहाँ यदि एक ओर प्लेटो मंगलमय में सौन्दर्य का अस्तित्व मानते हैं[1] तो दूसरी ओर प्लॉटिनस परमशक्ति के शिव रूप को सौन्दर्य की सत्ता देते हैं,[2] यदि एक ओर शैफ्टसबरी संसार में जीवन के दैवी रूप की अभिव्यक्ति में सौन्दर्य की अवस्थिति मानते हुए अचेतन पदार्थों में उसके अस्तित्व का निषेध करते हैं[3] तो दूसरी ओर ह्यूम ज्ञान, स्वरूप एवं संतोषदायक वस्तुओं में सौन्दर्य का अस्तित्व मानते हुए आनन्द-दायक एवं दुःखद प्रभावों को सौन्दर्य तथा कुरूपता के लक्षण मानते हैं।[4]

इसी प्रकार अन्य अनेकानेक मनीषियों ने सौन्दर्य की परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं। अरस्तू प्लेटो के समान मंगल में ही सौन्दर्य का अस्तित्व मानता है।[5] कांट ने निष्काम भाव से सार्वभौमिक संतोष देने वाली वस्तु में सौन्दर्य की अवस्थिति मानी है।[6] दर्शनीय वस्तु एवं द्रष्टा दोनों में ही सौन्दर्य की सत्ता मानते हुए आत्मगत

---

1 The principle of *goodness has reduced itself to the law of* beauty
—Plato Quoted from A History of Aesthetics (Bosanquet)
Page 33

2 Beauty is something supervening on the symmetry and that the symmetrical is beautiful for some other reason
—Carritt, Philosophies of Beauty

3 Believing beauty to be an expression of the divine *life of the* world which he contrasts with dead matter in a way too much akin to Plotinus and is therefore unable to find an explanation for ugliness or evil
—A History of Aesthetics (Bosanquet) Page 177

4 Beauty is such an order and construction of parts as either by the primary construction of our nature by custom or by caprice is *fitted to give* a pleasure and satisfaction to the soul This is the distinguishing character of beauty and forms all the difference betwixt it and deformity *whose natural tendency is to produce* uneasiness
—Treatise of Human Nature (Green & *Grose*) *Vol II page 95*

5 The beautiful is that good which is pleasant because it is *good.*'
—Quoted from A History of Aesthetics (*Bosanquet*) *Page 63*

6 The beautiful is that which is thought of as the object of Universal satisfaction apart from any *conception*
—Quoted from Philosophies of Beauty (*carritt*) Page III

इस प्रकार स्पष्ट है कि सभी मनीषियों ने अपने अपने विशिष्ट कोणों से देखते हुए उसकी परिभाषाएँ की हैं। किन्तु सत्यांश सभी में कुछ न कुछ अवश्य है। वस्तुतः सौंदर्य का अस्तित्व न तो केवल द्रष्टा के मन मस्तिष्क आत्मा अथवा सौंदर्य कल्पनाकर्त्री मानसिक प्रक्रिया में है और न केवल वस्तु अथवा रूप जगत् में। न तो सौंदर्यानुभूति विरहित द्रष्टा के अभाव में सौंदर्य का कोई महत्त्व अथवा अस्तित्व है और न बाह्य जगत् के सौंदर्य के अभाव में द्रष्टा अथवा अनुभूतिकर्ता के मन मस्तिष्क अथवा आत्मा में सौंदर्य का कोई अस्तित्व हो सकता है। इसके अतिरिक्त सौंदर्य केवल बाह्य रूपाकार वेश भूषा अथवा रूप चट्टादि में ही नहीं अन्तर्जगत् में भी लहराता प्रतीत होता है। कविवर श्री रवीन्द्रनाथ टगोर के शब्दों में 'मनुष्य के मुख में केवल आकृति की ही सुन्दरता नहीं होती। उसमें चेतना की दीप्ति, बुद्धि की स्फूर्ति और हृदय का लावण्य भी होता है।'

अन्त बाह्य की युगपत् क्रिया के द्वारा ही सौन्दर्य की सृष्टि होती है।[1] आन्तरिक सौंदर्य विहीन बाह्य सौंदर्य विषपूर्ण कनक घट के समान है। अतः सौंदर्य सृष्टि के लिए दोनों की मणि-कांचन संयुक्ति परम अपेक्षित है। अतः पूर्ण एवं युक्तियुक्त परिभाषा के लिए एकांगी दृष्टिकोण से काम नहीं चल सकता। अतः आन्तरिक एवं बाह्य तथा आत्मगत एवं वस्तुगत आदि सभी सौंदर्य रूपों को दृष्टि-गत रखते हुए यह कहा जा सकता है कि सौन्दर्य मन आत्मा एवं मानव, प्रकृति अथवा वस्तु जगत् के बाह्य रूपाकार की वह विशेषता है जो प्राणी को आनन्द विह्वल एवं आत्म विभोर करने की क्षमता रखती है।

सौन्दर्य के दो रूप वस्तुगत एवं आत्मगत

सौंदर्य मानव प्रकृति अथवा वस्तुओं का गुण है या द्रष्टा मानव अथवा मानवेतर प्राणी के मन मस्तिष्क की कल्पना अथवा सृष्टि इस विषय में सौंदर्य शास्त्रियों में मतभेद है। यदि एक ओर सौंदर्य शास्त्रियों का एक वर्ग वस्तु की विभिन्न विशेषताओं एवं गुणों में सौंदर्य का अस्तित्व मानता है तो दूसरी ओर उनका दूसरा वर्ग वस्तु जगत् के गुणों में माने जाने वाले सौंदर्य का निषेध करके उसका अस्तित्व द्रष्टा के मन मस्तिष्क में मानता है। एक वस्तुगत सौंदर्य का समर्थक है दूसरा आत्मगत सौंदर्य का। किन्तु सत्य क्या है अथवा औचित्य किस

---

१ डा० दास गुप्त सौंदर्य-तत्त्व पृ० २५।

का विषय हो सकेगी ? मुक्ता अथवा कुन्द पुष्पवत् श्वेत एवं दीप्तिमान् दंत पंक्ति वाली कामिनी क्या दंत विहीना होकर पोपली एवं सुमट प्रतीत न होगी ? श्वेतवर्णीया त्वचा वाली सुन्दरी चेचक के भद्दे दागों से युक्त हो कर अथवा आग से झुलस कर क्या सुन्दर प्रतीत होगी ? कल कल निनाद करने वाली श्वेत शुभ्र, आकर्षक तथा शीतलता एवं शांति प्रदायिनी सरिता के स्थान पर गन्दगी से आपूर्ण तथा कीड़ों से भरा नाली क्या मानव आकर्षण अथवा आनंद का विषय हो कर सुंदर कहला सकती ? विराट भव्य, आकर्षक तथा सुन्दर साज सज्जा से युक्त भवन की अपेक्षा कीड़ों से बजबजाता गन्दे पानी से भरी नालियों तथा मल मूत्रादि से युक्त मक्खियों से भरे आँगनों वाली झोंपड़िया का सौन्दर्य क्या मानव स्पृहा का विषय होगा ? विश्व मंगलकारी आदर्शों तथा मंगलमय धर्म कार्यों को छोड़ कर कुत्सित घृणित वृत्ति-व्यापारों के सौन्दर्य की प्रशंसा कौन करेगा ? देश तथा राष्ट्र रक्षा अथवा विश्वकल्याण के लिए मर मिटने वाले व्यक्ति की अपेक्षा क्या स्वार्थी, नीच, दुरात्मा जालसाज प्रवंचक, हत्यारा व्यक्ति अधिक स्पृहणीय प्रतीत होगा ? काले कुंचित अथवा भूरे घुंघराले, चिकने केशों की अपेक्षा क्या मोटे भद्दे, सुअर जैसे केश मानव स्पृहा के विषय होंगे ? चपटी नाक छोटे कान मोटी, छोटी कठोर एवं भद्दी अँगुलियाँ कठोर एवं वीभत्स त्वचा मुंह के बाहर निकले हुए बड़े बड़े दाँत, पृथुलाकार भद्दी नारी अथवा सींकिया जवान क्या सौंदर्य का विषय होगा ? यदि ऐसा नहीं है तो सौन्दर्य का अस्तित्व व्यक्ति वस्तु दृश्य अथवा मंगलकारी वृत्ति-व्यापारों के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं माना जा सकता।

यह कथन कि सौंदर्य मन के भीतर की वस्तु है बाहर की नहीं, निराधार है। सौन्दर्य वस्तुतः वस्तु की ही चीज है वस्तु से पृथक उसका कोई अस्तित्व नहीं। यह कहना कि द्रष्टा के अभाव में सौंदर्य का कोई महत्व नहीं अथवा सौन्दर्य के अभिव्यंजक के अभाव में सौन्दर्य का क्या अस्तित्व हो सकता है, कोई अर्थ नहीं रखता, क्योंकि द्रष्टा के अभाव में भी वस्तु व्यक्ति अथवा दृश्य का अस्तित्व रहता है, इस तथ्य से इनकार नहीं किया जा सकता। नेत्र बन्द कर लेने से सामने खड़े व्यक्ति के अस्तित्व को झुठलाया नहीं जा सकता। सूर्य के प्रकाश से दूर रहने वाला पक्षी उससे दूर भले ही रहे, पर उसके दूर रहने से सूर्य के अस्तित्व का निषेध नहीं किया जा सकता।

आत्मगत सौन्दर्य

वस्तुगत सौंदर्य के उक्त महत्व के होते हुए भी यह नहीं कहा जा सकता कि किसी वस्तु विशेष का सौंदर्य संसार के सभी व्यक्तियों अथवा प्राणियों को समान

रूप में प्रभावित करता है। एक ही व्यक्ति किसी को अधिक सुन्दर प्रतीत होता है और किसी को अपेक्षाकृत कम। कोई किसी के सौन्दर्य की अधिक प्रशंसा करता है, कोई किसी अन्य के सौन्दर्य की। यही नहीं एक ही व्यक्ति एक ही व्यक्ति को भी विभिन्न परिस्थितियों में समान रूप से प्रभावित नहीं करता। कभी उसे उसका सौन्दर्य अधिक स्पृहणीय प्रतीत होता है और कभी अपेक्षाकृत कम। इसी बात को लक्ष्य करके महाकवि बिहारी ने यह घोषणा की थी—

समै समै सुन्दर सबै रूप कुरूप न कोय।
मन की रुचि जेती जितै तित तेती रुचि होय।[1]

रंगों के चुनाव में भी प्रायः यह देखा जाता है कि किसी को कोई एक रंग प्रिय होता है किसी को कोई दूसरा। एक व्यक्ति जिस रंग के वस्त्र को त्याज्य समझकर उसका तिरस्कार करता है दूसरा उसे कमनीय समझकर उसकी प्रशंसा करते तृप्त नहीं होता। यदि ऐसा न हो तो विभिन्न रंगों तथा विभिन्न डिज़ाइनों के वस्त्रों के लिए कोई स्थान ही न रहे।

पुष्प जगत् का सौन्दर्य भी सभी दर्शकों को समान रूप से प्रभावित नहीं करता। कोई किसी पुष्प को अधिक सुन्दर मानता है तो कोई किसी को। सुगन्ध के क्षेत्र में तो यह वैभिन्न्य और भी अधिक देखने में आता है। कोई किसी एक सुगन्ध को अधिक रुचिकर मानता है तो कोई किसी दूसरी को। यही नहीं कभी कभी यह भी देखने में आता है कि कोई किसी सामान्य सी वस्तु को घृणित एवं त्याज्य समझकर उससे दूर भागता है। ऐसे भी व्यक्ति देखे गए हैं जिन्हें सरसों के तेल में बदबू आती है और मिट्टी के तेल में खुशबू। इसी प्रकार ऐसे भी व्यक्ति हैं जिन्हें सिगरेट तथा बीड़ी का धुआँ रुचिकर एवं आनन्ददायक प्रतीत होता है और अगरबत्ती का धूम्रोद्गार एवं अरुचिकर। ऐसे भी व्यक्ति हैं जो अपनी उसी पैन्ट व पेटीकोट को, जिसे वे पहनना कुत्सा एवं घृणित समझ कर तिरस्कृत करते रहे थे इसीलिए से भी अधिक स्वच्छ समझकर उससे अपना मुँह पोंछ कर कृतकृत्य होते हैं। इसी बात को लक्ष्य करके प्रायः यह कहा जाता है कि मुहब्बत में पसीना भी गुलाब होता है।

इसी प्रकार कोई किसी एक वस्तु को पसन्द करता है तो कोई किसी दूसरी को, कोई किसी एक सौन्दर्य पदार्थ को अधिक पसन्द करता है तो कोई किसी अन्य में ज्य

---

१ बिहारी (सं० आचार्य विश्वनाथप्रसाद मिश्र), तृ० सं०, पृ० २१५, दो० ६५८।

पदार्थ को, कोई किसी विशेष प्रकार के भवन की प्रशसा करता है तो कोई किसी अन्य प्रकार के भवन को कोई किसी एक प्रकार की साज सज्जा एव अलकरण को कमनीय मानता है तो कोई किसी अन्य प्रकार की साज सज्जा एव अलकरण को, किसी को किसी एक प्रकार की वेश-भूषा रुचिकर प्रतीत होती है तो किसी को किसी दूसरे अथवा तीसरे प्रकार की। भावो विचारो एव आदर्शों के क्षेत्र में भी यह वभिन्य प्राय देखने में आता है। कोई किसी भाव विचार अथवा आदर्श को अधिक रुचिकर मानता है तो कोई किसी अन्य भाव, विचार अथवा आदर्श को।

काले, कुत्सित तथा घृणित बालक को भी माँ कितना सुन्दर एव स्पृहणीय समझती है यह सभी जानते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि कभी कभी वह अन्य बालकों के सौन्दर्य को भी अपनी स्पृहा का विषय समझती है तथापि वह अपनी सतान से जितना प्रेम करती है उतना दूसरो की सतान से नही। प्रत्येक कुम्भकार अपने द्वारा निर्मित घडे की प्रशसा करता है प्रत्येक पिता अपने पुत्र को दूसरों के पुत्रों से अधिक श्रेष्ठ समझता है, प्रत्येक पति अपनी पत्नी को और प्रत्येक प्रेमी अपनी प्रेमिका को सर्वाधिक सुन्दरी मानता है भले ही वह कुरूपा ही क्यो न हो। लैला की कुरूपता जगत् विख्यात है, किन्तु मजनू की दृष्टि में उससे बढ़कर ससार में कोई अन्य सुन्दरी न थी। पद्मावती के लिए अपना सर्वस्व त्याग कर योगी का वेश धारण करके सिंहल पहुँचने वाले रत्नसेन को उसकी तुलना में अप्सरा भी स्पृहणीय प्रतीत न हुई।[1] इसी प्रकार प्रत्येक पत्नी अपने पति को सर्वाधिक कमनीय समझती है, प्रत्येक भाई अपनी भगिनी की प्रशसा करता है और प्रत्येक भगिनी अपने भाई के समक्ष दूसरे को हेय समझती है। प्रत्येक कलाकार अपनी कला कृति को सुन्दर समझता है—चित्रकार अपने चित्र को वास्तुकलाकार अपने द्वारा निर्मित भवन को मूर्तिकार अपनी मूर्ति को सगीतकार अपने सगीत को और साहित्यकार अपने साहित्य को अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर मानता है। 'निज कवित्त केहि लाग न नीका सरस होउ अथवा अति फीका।'[2] तथा 'मैं माइक के सम्मुख हूँ, माइक मेरे सम्मुख है, कोई सुनता भी होगा या नही इसी का दुख है'[3] आदि पक्तियाँ इसी तथ्य की द्योतक हैं। प्राय व वस्तुएँ

१ भलेहि रग अछरी तोर राता। मोहि दुसरे सौं भाव न बाता।

—जायसी, 'पदमावत', जायसी-ग्र० (शुक्ल), प० स०, पृ० ६१।

२ तुलसी रामचरितमानस (पोद्दार, म० सा०) गी० प्रे० स० २००६ पृ० ४०।

३ प्रभाकर माचवे।

यदि किसी प्रकार यह सम्भव हो सके कि व्यक्ति के संस्कार, साहचर्य प्रमादि भावों शारीरिक आवश्यकताओं एवं अभावों तथा परिस्थितिजन्य प्रभावोंको नापा जा सके और किसी वस्तु के सौन्दर्य के मूल्यांकन के समय मूल्यांकनकर्ता पर इनका जो प्रभाव पड़ता है उसे पृथक किया जा सके तो निश्चित रूप से मूल्यांकन की जाने वाली वस्तु व्यक्ति अथवा दृश्य के सौन्दर्य विषयक निर्णयों में मतभेद के लिए स्थान नहीं रहेगा। यों भी सौन्दर्य के सामान्य मानदण्ड प्रत्येक देश एवं काल में निश्चित रहते हैं और सामान्यतः उनमें कोई विरोध नहीं होता। यही नहीं एक देश की सुन्दर वस्तु अन्य देशों में भी प्रायः उतनी ही सुन्दर मानी जाती है। प्रकृति के जो उपकरण अथवा दृश्य रूप में स्वतः ही सुन्दर माने जाते हैं उनके सौन्दर्य का निषेध विदेशी भी नहीं करते यह बात दूसरी है कि संस्कार एवं साहचर्य के कारण इस देश में सौन्दर्य के जिन उपकरणों का विशेष मान है अन्यत्र उनका उतना न हो। उदाहरणार्थ योरोपीय देशों में नीली आंखों तथा भूरे घुँघराले केशों का विशेष मान है पर यहां काले कुंचित केशों एवं कमलवत् नेत्रों का। किन्तु सामान्यतः जिन नेत्रों तथा केशों को योरोपीय सुन्दर मानता है भारतवासी भी उनमें प्रायः सौन्दर्य का निषेध नहीं करता। विश्व सुन्दरी की प्रतियोगिता में विभिन्न देशों की सुन्दरियाँ भाग लेती हैं और उनके सौन्दर्य का मूल्यांकन जिन मापदण्डों के आधार पर किया जाता है वह इस बात के प्रमाण हैं कि सौन्दर्य के देश काल निरपेक्ष सार्वभौमिक मापदण्डों का अस्तित्व सदैव रहता है। अतः यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि सौन्दर्य मन मस्तिष्क की वस्तु नहीं उसका अस्तित्व वस्तु व्यक्ति अथवा दृश्य के गुण धर्मों में होता है यद्यपि उसके मूल्यांकन में मूल्यांकनकर्ता के व्यक्तित्व संस्कार एवं परिस्थितियों का प्रभाव एवं हाथ रहता है और ये सभी उसके सौन्दर्य निर्णय विषयक मतभिन्नता के कारण हैं। किन्तु यदि मनुष्य के व्यक्तित्व, परिस्थितियों एवं संस्कारादि का कोई पृथक अस्तित्व न माना जाय तो सौन्दर्य के आत्मगत रूप को भी थोड़ा बहुत स्वीकार किया जा सकता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रधानता वस्तुगत सौन्दर्य को ही दी जायगी। आग से झुलस हुए व्यक्ति को प्रायः की दृष्टि में भले ही वह उसका कितना ही सम्मान क्यों न करती हो उसमें वह सौन्दर्य नहीं रहता जो उसके पूर्व था इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता। सम्मान वह उसका अपने प्रेम कर्तव्य एवं संस्कारादि के कारण करती है उसके सौन्दर्य का वस्तुपरकता के कारण नहीं। इसी प्रकार माता पिता द्वारा अपना सन्तान को अधिक कमनीय समझने का कारण भी उनकी आत्मीयता, संस्कार से युक्त प्रेम एवं संकुचित वृत्ति ही है सौन्दर्य का अस्तित्व नहीं।

अफलातून (Plato) प्लॉटिनस (Plotinus) सन्त आगस्टाइन (St Augustine), बाम गार्टेन (Baum Garten) फादर एन्ड्रे (Pere Andre),

शैफ्ट्सबरी (Shaftesbury) रीड (Reade) शिलर (Schiller), ओडेन (Odgen), हरबर्ट (Herbert), विशर (Vischer) कान्ट (Kant), हीगल (Hegel) शॉपेन हावर (Schopenhauer) बर्कले (Berkley), शेलिंग (Schelling) हचसन (Hutcheson) ऑस्कर वाइल्ड (Oscar Wilde) क्रोचे (Croce) रस्किन (Ruskin) शैली (Shelley) कीट्स (Keats) आदि की यह धारणा कि सौन्दर्य द्रष्टा के मन मस्तिष्क अथवा आत्मा की वस्तु है, बाह्य जगत् में उसका अस्तित्व नहीं भले ही वह कितनी ही महत्वपूर्ण अथवा कल्पना की वस्तु क्यों न समझी जाती हो, भ्रामक है।

इसी प्रकार यह मान्यता कि रस आनन्दस्वरूप है उससे हमें अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है अतः रस ही सौन्दर्य है भी भ्रामक एवं निराधार है। रस आनन्द की अनुभूति है सौन्दर्य की नहीं। सौन्दर्य का गुण आनन्द देना है और रस आनन्द देता है अतः रस भी सौन्दर्य है यह तर्क उचित नहीं क्योंकि आनन्ददान सौन्दर्य की ही नहीं और भी बहुत सी वस्तुओं की विशेषता है। अतः रस

---

1 The subjective theory of beauty is very widely professed today by thinking men and by practising artists and critics though usually accompanied by a tendency to claim preference for their own aesthetic judgments. It is the popular and fashionable view of the moment. *Most recent writings in aesthetics* and criticism which have reached a wide public have been obsessed by the importance of emotional response to works of art—a heritage of the Romantic Age—and are therefore naturally subjective in tendency. And the breakdown of an established if narrow line of artistic development by the sudden revelation of the artistic heritage from peoples and ages widely separated from us has tended to a chaotic diversity of taste and appreciation to which a subjective theory of beauty seems to some people the proper intellectual counterpart and *to others a cry of despair*.

The matter is important because if we accept a subjective theory we are bound to recognize that there is no science or philosophy of aesthetics other than history of taste and the psychology of emotions.

—H Osborne Theory Of Beauty London '52 P 74

सौन्दर्य का पर्याय नहीं हो सकता। अत उन सभी विचारकों की धारणाएँ जो रस को सौन्दर्य मानते हैं, उचित नहीं। श्री आनन्दकुमार स्वामी का निम्नांकित कथन इसी प्रकार का है —

> And yet there philosophers firmly convinced that an absolute beauty (rasa) exists just as others maintain the conceptions of absolute goodness and absolute Truth [1]

पुन यह मान्यता कि सौन्दर्य की जो मूर्ति हमारे मन चक्षुओं के समक्ष कल्पना शक्ति की सहायता से प्रस्तुत होती है वही सौन्दर्य है अथवा उसी में सौन्दर्य है भ्रामक है क्योंकि इस स्थिति में भी सौन्दर्य मानस मूर्ति की विशेषता अथवा उसके गुण धर्मों की वस्तु होगा भले ही उसका सृजन मन द्वारा क्यों न हो। प्रश्न सौन्दर्य स्रष्टा का नहीं, सौन्दर्य का है। साथ ही यह धारणा भी कि अभिव्यक्ति ही सौन्दर्य है भ्रामक है। अभिव्यक्ति सुन्दर हो सकती है, किन्तु सौन्दर्य का पर्याय नहीं क्योंकि सौन्दर्य अभिव्यक्ति की विशेषता अथवा उसके गुण धर्मों में है। पुरुष सुन्दर होते हैं, यह कहना तो युक्तियुक्त है पर पुरुष ही सौन्दर्य हैं, यह कथन जिस प्रकार उचित नहीं उसी प्रकार यह कहना भी कि अभिव्यक्ति ही सौन्दर्य है उचित नहीं।

वस्तु जगत् के अस्तित्व का निषेध करने वाले अद्वैतवादी दार्शनिक भले ही यह मानते रहें कि सौन्दर्य मानव चेतना का वस्तु है पर व्यावहारिक भौतिकवादी दृष्टि से यह दृष्टिकोण भ्रामक है। सौन्दर्य बाह्य जगत् में मानसिक जगत् का प्रक्षेपण है अथवा बाह्य वस्तु जगत् अथवा सृष्टि का कोई अस्तित्व नहीं अस्तित्व केवल आत्मा का है और वह आत्मा ही ब्रह्म एवं सुन्दर है यह मान्यता बाहर से सुन्दर एवं आकर्षक प्रतीत होते हुए भी भ्रामक है। बाह्य जगत् का भी अपना उसी प्रकार अस्तित्व है जिस प्रकार अन्तजगत् अथवा आत्मा का। उसका अस्तित्व झुठलाया नहीं जा सकता। अत विशर की यह मान्यता कि सौन्दर्य की सम्यक् मीमांसा अद्वैत भूमि पर पहुँच कर ही हो सकती है अथवा रीड का यह धारणा कि सौन्दर्य वस्तुगत नहीं होता अथवा क्रोचे की यह धारणा कि अभिव्यक्ति ही सौन्दर्य है और अभिव्यक्ति मानसिक ही होती है उसकी बाह्य अभिव्यक्ति कृत्रिम उपकरणों पर आधारित होने के कारण सौन्दर्य विहीन होती है, भ्रामक है।

रस का आधार आलम्बन आश्रय, उद्दीपन तथा अभिव्यक्ति का सौन्दर्य है, अत रसानुभूति (आनन्दानुभूति) भी वस्तु अथवा कला के सौन्दर्य पर आश्रित है।

1—Anand Coomarswamy The Dance of Shiva' P 62

अलंकार वक्रोक्ति रीति एवं औचित्यवादी आचार्य भी सौंदर्य को एक प्रकार से वस्तुगत ही मानते हैं। समन्वयवादी सौन्दर्य शास्त्री भी वस्तुगत सौंदर्य की ओर ही अधिक झुके प्रतीत होते हैं।

समन्वयवादी दृष्टिकोण के समर्थन में प्रस्तुत किये जाने वाले निम्नांकित कथन वस्तुतः वस्तुगत सौन्दर्य की सत्ता के ही समर्थक हैं —

(क) मनुष्य के मन में केवल प्रकृति की ही शून्यता नहीं होती। उसमें चेतना की दीप्ति, बुद्धि की स्फूर्ति और हृदय का आवेग भी होता है[1]।

(ख) अन्तर बाह्य की पुकार, क्रिया और प्रतिक्रिया द्वारा ही सौन्दर्य की सृष्टि होती है इस बात में हमें तनिक भी संशय नहीं है[2]।

इसके अतिरिक्त सौन्दर्य शास्त्रियों द्वारा माने जाने वाले सौन्दर्य के तत्त्व— रूप तत्त्व, भोग तत्त्व एवं आत्म प्रतीति तत्त्व—भी सौन्दर्य की वस्तुगत सत्ता के ही समर्थक हैं।

निष्कर्ष यह कि सौन्दर्य के निर्धारक मन का महत्त्व होते हुए भी सौन्दर्य की सत्ता प्रमुखतः वस्तुगत ही है, उसका अस्तित्व प्रमुख रूप से वस्तु जगत् के गुण धर्मों पर ही है। आन्तरिक सौन्दर्य भी मानव भावों, विचारों, आदर्शों एवं व्यापारों का सौंदर्य होने के कारण वस्तुगत ही माना जाएगा। चेतना की स्फूर्ति अथवा प्राणी के अन्तःकरण की सात्त्विक प्रक्रिया भी सौन्दर्य की वस्तुगत सत्ता के ही परिचायक हैं।

---

१ रवीन्द्रनाथ टैगोर, साहित्य (अनु० ध० ध० विद्यालंकार, सन् १९२९ ई०), पृ० ४४।

२ डा० सुरेन्द्रनाथ दास गुप्त, सौन्दर्य तत्त्व (अनु० डा० दीक्षित, सं० २०१३ वि०) पृ० १५३।

मझन का सौन्दर्य-दर्शन

मानव सौन्दर्योपासक प्राणी है। वह सौन्दय से जितना अभिभूत होता है उतना अन्य किसी वस्तु से नहीं। सौन्दय के प्रति सहज आकर्षण एवं कुरूपता के प्रति विकर्षण मानव-मात्र की जन्म-जात प्रवृत्ति है। कन्फ्यूशियस का यह कथन उसके सौन्दय के प्रति आकर्षण का ही परिचायक है— मुझे आज तक ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं मिला जो धर्म को भी उतना ही चाहता हो जितना कि वह सौन्दय को चाहता है।

सौन्दय का प्रभाव अमोघ है। कवि के लिए मानव ही नहीं, प्रकृति के जड़-चेतन रूप भी सौन्दय का साक्षात्कार कर धन्य हो उठते हैं। उसके लिए जहाँ एक ओर मानव जगत् सौन्दय का विराट आलय है वहां दूसरी ओर प्रकृति जगत् भी जहाँ एक ओर मानव जगत् में नारी पुरुष एवं बाल-वृद्ध में सौन्दय के विविध रूपों के दर्शन होते हैं वहां दूसरी ओर प्रकृति जगत् में भी यदि एक ओर मानव जगत् में कामिनी के केश, ललाट, भ्रू-युग्म नासिका, अधर, चिबुक, कर्ण कण्ठ कुच, त्रिवली कटि जघाएं एवं चरण द्वय सौन्दय के साक्षात् प्रतिरूप हैं तो दूसरी ओर प्रकृति जगत् के विभिन्न नारी रूप एवं उनके अंग भी जहाँ एक ओर वस्तुगत सौन्दय है वहां दूसरी ओर आत्मगत एवं उभयगत सौन्दय भी जहां एक ओर साहित्यिक सौन्दय है वहां दूसरी ओर साहित्येतर सौन्दय भी यदि एक ओर नैसर्गिक सौन्दय है तो दूसरी ओर अलकृत एवं कृत्रिम सौन्दय भी, यदि एक ओर आभ्यन्तर सौन्दय है तो दूसरी ओर बाह्य सौन्दय भी, यदि एक ओर आनुभूतिक

सौन्दर्य है तो दूसरा और आन्तरिक व्यक्तित्व सौंदर्य भी। सच्चा कवि सौन्दर्य के इन सभी रूपों में लीन होता है और अपने हृदय के योग द्वारा कल्पना एवं यथार्थ के ताने बाने से साहित्यिक सौन्दर्य का वह दिव्य पट बुनता है जिसका साक्षात्कार कर मानव अपनी पृथक सत्ता की प्रतीति का विसर्जन कर अपना जीवन सार्थक समझता है।

कवि सर्वाधिक भावुक प्राणी है। वह सौन्दर्य से जितना प्रभावित होता है उतना सम्भवतः अन्य कोई नहीं। किन्तु वह कृपण के धन के समान अपने अनुभूत सौन्दर्य रत्नों को अपनी हृदय मंजूषा में छिपाकर नहीं रखता प्रत्युत उन्हें निकाल निकाल कर सजा सँवार कर समाज के समक्ष रखकर उनसे उसे प्रभावित करने का प्रयत्न करता है उनकी महत्ता से अभिभूत करके उसके हृदय पर उनका सिक्का जमा देता है, उनकी ओर आकृष्ट करके उनके मोहक इन्द्रजाल में बाँध देता है उनके आदर्शानुसार उससे कार्य कराता है उसके हृदय के मल को दूर कर उसके विकारों का निराकरण कर उसमें सात्विकता उत्पन्न करता है। सौन्दर्य के प्रति आकर्षण मानव-हृदय का एक प्रबल स्थायी भाव है जो उसके दर्शन से उद्बुद्ध जाग्रत एवं उद्दीप्त होकर उसकी ओर उन्मत्त के समान दौड़ पड़ता है।

प्रेम के अमर कवि मंझन का समग्र काव्य भी सौन्दर्य पर ही अवलम्बित है। उनके प्रेम का मूल उद्गम सौन्दर्य में है—वही उनका प्रेरक जनक एवं नियामक है। उनकी कृति 'मधुमालती' सौन्दर्य के विभिन्न रूपों का भण्डार है—उसमें जहाँ एक ओर मानव सौन्दर्य है वहीं दूसरी ओर प्रकृति एवं वस्तु सौन्दर्य भी, जहाँ एक ओर आभ्यन्तर सौन्दर्य है वहाँ दूसरी ओर बाह्य सौन्दर्य भी जहाँ एक ओर भाव-पक्षात्मक सौन्दर्य है वहाँ दूसरी ओर कलात्मक सौन्दर्य भी। सौन्दर्य के इन विविध रूपों के चित्रण में मंझन कितने सिद्धहस्त हैं यह देखने के लिए अब हम इन पर पृथक पृथक विचार करेंगे।

स्थूल रूप से सौन्दर्य के दो रूप देखने में आते हैं—साहित्यिक तथा साहित्येतर। साहित्यिक सौन्दर्य साहित्यिक कृतियों में प्राप्त सौन्दर्य है और साहित्येतर

साहित्य से पर जगत् का जिसमें साहित्यिक सौंदय समाहित नहीं। मझन को मधुमालती में व्यक्त सौंदय साहित्यिक है और संसार के जिस यथार्थ सौंदय ने उन्हें इस काव्य ग्रन्थ के प्रणयन तथा इसमें व्यक्त सौंदय के सृजन के लिए प्रेरित किया वह साहित्येतर। कहने की आवश्यकता नहीं कि कवि अपनी सौंदय सृष्टि में जिस यथार्थ सौन्दय से प्रेरित होता है उसे अपनी कल्पना की रंगीनियों से रंग कर तथा उसके विभिन्न रूपों में अभीष्ट परिवतन करके अधिकाधिक आकर्षक एवं रमणीय रूप प्रदान करता है। मझन ने लोक-प्रचलित कथा[1] के रूप में मधुमालती की वस्तु लेकर सूफी सिद्धान्तों के अनुसार उसमें अभीष्ट परिवतन कर लिए हैं। कथा के ऐतिहासिक न होने के कारण उसके सौन्दय सृजन में कितना श्रेय मझन की कल्पना को है और कितना यथार्थ जीवन के सौंदय को यह कहना कठिन है। फिर भी उनके द्वारा निर्मित इस कृति की सौन्दय-सृष्टि का समग्र श्रेय उनके कवि हृदय को—उनकी सौंदयानुभूति एवं भावुकता को—है इसमें सन्देह नहीं।

साहित्यिक सौंदय के स्थूलतः दो वग किये जा सकते हैं—आनुभूतिक एवं आभिव्यक्तिक। आनुभूतिक सौंदय कवि की अनुभूति का विषय है और आभिव्यक्तिक उस अनुभूति की अभिव्यक्ति अथवा कला का। आनुभूतिक सौन्दय के स्थूलतः दो वग किये जा सकते हैं—बाह्य एवं आन्तरिक। बाह्य एवं आन्तरिक सौन्दय पुनः तीन-तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—मानव प्रकृति एवं वस्तु। मानव-सौंदय को पुनः नारी, पुरुष एवं बाल और प्रकृति सौंदय को जड एवं चेतन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। आभिव्यक्तिक अथवा कलागत सौंदय के आठ वग किये जा सकते हैं—रसगत सौंदय आलंकारिक सौंदय, अप्रस्तुत विधानिक सौंदय, कल्पनागत अथवा कल्पना वैधानिक सौंदय, चित्र विधानिक सौन्दय, छन्द विधानिक सौंदय, शैली एवं विधागत सौन्दय तथा भाषागत सौन्दय। अग्रांकित वंश वृक्ष द्वारा इस समस्त वर्गीकरण को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है —

---

१ 'आदि कथा द्वापर चलि आई। कलिजुग महं भाषा कै गाई।"

—मधुमालती स० डा० गुप्त पृ० ३७।

सौन्दर्य है तो दूसरा और अभिव्यक्ति सौन्दर्य भी। सच्चा कवि सौन्दर्य के इन सभी रूपों में लीन होता है और अपने हृदय के योग द्वारा कल्पना एवं यथार्थ के ताने बाने से साहित्यिक सौन्दर्य का वह दिव्य पट बुनता है जिसका साक्षात्कार कर मानव अपनी पृथक् सत्ता की प्रतीति का विसर्जन कर अपना जीवन सार्थक समझता है।

कवि सर्वाधिक भावुक प्राणी है। वह सौन्दर्य से जितना प्रभावित होता है उतना सम्भवतः अन्य कोई नहीं। किन्तु वह कृपण के धन के समान प्राप्त अनुभूत सौन्दर्य रत्नों को अपनी हृदय मंजूषा में छिपाकर नहीं रखता प्रत्युत उन्हें निखार निखार कर सजा सँवार कर समाज के समक्ष रखकर उनसे उसे प्रभावित करने का प्रयत्न करता है उनकी महत्ता से अभिभूत करके उसके हृदय पर उनका सिक्का जमा देता है, उनकी ओर आकृष्ट करके उन्हें मोहक इन्द्रजाल में बाँध देता है उनके आदेशानुसार उनसे काम कराता है उसके हृदय के भय को दूर कर उसके विकारों का निराकरण कर उसमें सात्विकता उत्पन्न करता है। सौन्दर्य के प्रति आकर्षण मानव-हृदय का एक प्रबल स्थायी भाव है जो उसके अन्तर में उद्बुद्ध जाग्रत एवं उद्दीप्त होकर उसकी ओर उन्मत्त के समान दौड़ पड़ता है।

प्रेम के अमर कवि मझन का प्रेम भी सौन्दर्य पर ही अवलंबित है। उनके प्रेम का मूलोद्गम सौन्दर्य में है—वही उसका प्रेरक जनक एवं नियामक है। उनकी कृति 'मधुमालती' सौन्दर्य के विभिन्न रूपों का भण्डार है—उसमें जहाँ एक ओर मानव सौन्दर्य है वहाँ दूसरी ओर प्रकृति एवं वस्तु सौन्दर्य भी, जहाँ एक ओर आभ्यन्तर सौन्दर्य है वहाँ दूसरी ओर बाह्य सौन्दर्य भी जहाँ एक ओर भाव-पक्षात्मक सौन्दर्य है वहाँ दूसरी ओर कलात्मक सौन्दर्य भी। सौन्दर्य के इन विविध रूपों के चित्रण में मझन कितने सिद्धहस्त हैं यह देखने के लिए अब हम इन पर पृथक् पृथक् विचार करेंगे।

स्थूल रूप से सौन्दर्य के दो रूप देखने में आते हैं—साहित्यिक तथा साहित्येतर। साहित्यिक सौन्दर्य साहित्यिक कृतियों में व्यक्त सौन्दर्य है और साहित्येतर

साहित्य स पर जगत् का जिसमें साहित्यिक सौन्दय समाहित नहीं। मझन की मधुमालती में व्यक्त सौन्दय साहित्यिक है और ससार के जिस यथाथ सौन्दय न उन्हें इस काव्य ग्रन्थ के प्रणयन तथा इसमें व्यक्त सौन्दय के सृजन के लिए प्रेरित किया वह साहित्येतर। कहने की आवश्यकता नहीं कि कवि अपनी सौन्दय सृष्टि मे जिस यथाथ सौन्दय से प्रेरित होता है उसे अपनी कल्पना की रगीनियों से रग कर तथा उसके विभिन्न रूपों में अभीष्ट परिवतन करके अधिकाधिक आकषक एव रमणीय रूप प्रदान करता है। मझन ने लोक प्रचलित कथा[1] के रूप मे मधुमालती की वस्तु लेकर सूफी सिद्धान्तों के अनुसार उसमे अभीष्ट परिवतन कर लिए हैं। कथा के ऐतिहासिक न होने के कारण उसके सौन्दय सृजन मे कितना श्रेय मझन की कल्पना को है और कितना यथाथ जीवन के सौन्दय को यह कहना कठिन है। फिर भी उनके द्वारा निर्मित इस कृति की सौन्दय-सृष्टि का समग्र श्रेय उनके कवि हृदय को—उनकी सौन्दर्यानुभूति एव भावुकता को—है इसमे सन्देह नहीं।

साहित्यिक सौन्दय के स्थूलत दो वग किये जा सकते हैं—आनुभूतिक एव आभिव्यक्तिक। आनुभूतिक सौन्दय कवि की अनुभूति का विषय है और आभिव्यक्तिक उस अनुभूति की अभिव्यक्ति अथवा कला का। आनुभूतिक सौन्दय के स्थूलत दो वग किय जा सकते हैं—बाह्य एव आन्तरिक। बाह्य एव आन्तरिक सौन्दय पुन तीन-तीन वर्गों म विभक्त किया जा सकता है—मानव प्रकृति एव वस्तु। मानव-सौन्दय को पुन नारी, पुरुष एव बाल और प्रकृति सौन्दय को जड एव चेतन वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है। आभिव्यक्तिक अथवा कलागत सौन्दय के आठ वग किय जा सकते हैं—रसगत सौन्दय आलकारिक सौन्दय, अप्रस्तुत वधानिक सौन्दय कल्पनागत अथवा कल्पना वैधानिक सौन्दय चित्र वैधानिक सौन्दय, छन्द-वधानिक सौन्दय, शली एव विधागत सौन्दय तथा भाषागत सौन्दय। अधाकित वग वृक्ष द्वारा इस समस्त वर्गीकरण को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है —

---

१ "आदि कथा द्वापर चलि आई। कलिजुग मह भाषा क गाई।"

—मधुमालती स० डा० गुप्त पृ० २१।

अत मंझन के सौन्दर्य दर्शन के निरूपण के लिए उनके इन समस्त वर्गों के सौंदर्य का पृथक सविस्तर उद्घाटन आवश्यक है। अगले पृष्ठों में उनके इन सभी रूपों के सौंदर्य पर पृथक्-पृथक विचार किया जायगा।

आनुभूतिक सौन्दर्य

आनुभूतिक सौदय, जैसा कि कहा जा चुका है, दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—बाह्य एव आतरिक। बाह्य तथा आतरिक दोनों ही वर्गों के सौदय का अपना विशिष्ट स्थान है। अत सम्यक विवेचन के लिए दोनों पर पृथक-पृथक रूप से दृष्टिपात करना होगा।

बाह्य सौन्दर्य –

बाह्य सौदय आतरिक सौदय के समान महत्त्वपूर्ण भले ही न हो, पर उसका अपना पृथक महत्त्व है। जहा बाह्य सौदय है वहा आन्तरिक सौदय भी होगा अथवा बाह्य सौन्य आन्तरिक सौदय के अस्तित्व का सकेतक है "यत्र आकृति तत्र गुणा वसन्ति वाली लोकोक्ति इस तथ्य की परिचायक है। बाह्य सौदय के अभाव मे आतरिक सौन्दय की ओर प्राय ध्यान ही नहीं जाता। साहित्य मे भी प्राय बाह्य सौदय विहीन आतरिक सौदय कम देखने में आता है। उत्कृष्ट साहित्यकार अपने उत्कृष्ट पात्र में बाह्य एव आतरिक सौन्दय के समन्वय द्वारा ही उसके महत्त्व की प्रतिष्ठा करता है। अत दोनो का पर्याप्त महत्त्व है। अस्तु।

जसा कि कहा जा चुका है, बाह्य सौन्दय को स्थूलत तीन वर्गों म विभक्त किया जा सकता है—मानव प्रकृति तथा वस्तु। अत स्पष्टता एव सुविधाथ इन तीनो का पृथक पृथक विवेचन करना होगा।

मानव-सौन्दर्य :—

ससार में मनुष्य से श्रेष्ठ अन्य प्राणी नही— नहि मानुषात् श्रेष्ठतर हि किंचित्'। उसके सौदय के समक्ष ससार का सौदय तुच्छ है निष्कलुष प्रकृति का पावन सौदय भी हेय है। उसकी सृष्टि करके प्रकृति स्वय उसके समक्ष नतशिर हो उठती है —

हार गई तुम प्रकृति!
रच निरुपम

१ व्यास, महाभारत।

अतः अंकन के सौन्दर्य दर्शन के निमित्त के लिए उनके इन समस्त वर्गों के सौन्दर्य का पृथक सविस्तर उद्घाटन आवश्यक है। अगले पृष्ठों में उनके इन सभी रूपों के सौन्दर्य पर पृथक्-पृथक विचार किया जायगा।

आनुभूतिक सौन्दर्य

आनुभूतिक सौदय जैसा कि कहा जा चुका है, दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—बाह्य एव आतरिक। बाह्य तथा आतरिक दोनों ही वर्गों के सौदय का अपना विशिष्ट स्थान है। अत सम्यक विवेचन के लिए दोनों पर पृथक-पृथक रूप से दृष्टिपात करना होगा।

बाह्य सौन्दर्य –

बाह्य सौन्दय आन्तरिक सौदय के समान महत्त्वपूर्ण भल ही न हो, पर उसका अपना पृथक महत्त्व है। जहा बाह्य सौदय है वहा आन्तरिक सौदर्य भी होगा अथवा बाह्य सौदय आन्तरिक सौदय के अस्तित्व का सकेतक है, 'यत्र आकृति तत्र गुणा वसति' वाली लोकोक्ति इस तथ्य की परिचायक है। बाह्य सौदय के अभाव म आतरिक सौन्दय की ओर प्राय ध्यान ही नहीं जाता। साहित्य में भी प्राय बाह्य सौदय विहीन आतरिक सौदय कम देखने में आता है। उत्कृष्ट साहित्यकार अपने उत्कृष्ट पात्र में बाह्य एव आन्तरिक सौन्दय के समन्वय द्वारा ही उसके महत्त्व की प्रतिष्ठा करता है। अत दोनो का पर्याप्त महत्त्व है। अस्तु।

जसा कि कहा जा चुका है, बाह्य सौन्दय को स्थूलत तीन वर्गों म विभक्त किया जा सकता है—मानव प्रकृति तथा वस्तु। अत स्पष्टता एव सुविधाथ इन तीनों का पृथक पृथक विवेचन करना होगा।

मानव-सौन्दर्य :—

ससार में मनुष्य से श्रेष्ठ अन्य प्राणी नहीं— नहि मानुषात् श्रेष्ठतर हि किंचित्'[1]। उसके सौदय के समक्ष ससार का सौदय तुच्छ है, निष्कलुष प्रकृति का पावन सौदय भी हेय है। उसकी सृष्टि करके प्रकृति स्वय उसके समक्ष नतशिर हो उठती है —

हार गई तुम प्रकृति!
रच निरुपम

---

१ व्यास, महाभारत।

मानव-कृति !
निखिल रूप रंग स्वर
हुए निछावर
मानव के तन मन पर।[1]

उसके सौन्दर्य पर मुग्ध कवि की दृष्टि में प्रकृति-सौन्दर्य भी मानव-सौन्दर्य में ही पूर्णता प्राप्त करता है।[2] उसमें यदि एक ओर नारी का कोमल-कमनीय रूप है तो दूसरी ओर पुरुष का भव्य ओजस्वी रूप। यदि एक ओर बाल समुदाय का चित्ताकर्षक रम्य रूप है तो दूसरी ओर यौवन के उन्मद-चंचल की रंगीनियों में विचरण करने वाले तरुण-वृन्द का मादक आकर्षक रूप। उसके इसी महत्त्व के कारण कवि को उसे कहने में कोई संकोच नहीं होता —

'सुन्दर हैं विहग सुमन सुन्दर,
मानव ! तुम सब से सुन्दरतम
निर्मित सबकी मधु सुषमा से,
तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम।
यौवन ज्वाला से वेष्टित तन
मृदु त्वच सौन्दर्य प्ररोह अंग
न्यौछावर जिन पर निखिल प्रकृति
छाया प्रकाश के रूप रंग।[3]

उसका शरीर उसकी आत्मा उसका मन, उसके कर्म उसकी वाणी सभी राशि राशि सौन्दर्य के आलय हैं। उसके शरीर, आत्मा, मन अथवा कर्म का ही नहीं वाणी के सौन्दर्य का प्रभाव भी अमोघ है। जड़-चेतन सृष्टि का कोई भी पदार्थ उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। प्राचीन कवि ही नहीं नया कवि भी इस विषय में कोई सन्देह नहीं करता। उसके अमोघ प्रभाव का वर्णन करते हुए वह स्पष्ट कहता है —

---

१ पंत युगपथ पृ० ५०।
२ पंत प्रकृति के प्रति युगवाणी पृ० ६०।
३ सुमित्रानन्दन पंत मानव युगपथ पृ० ३०।

"मेरी पत्नी

+ +

वह जब जब भी गाने लगती

हँसने लगते बर्फ शैल व

जिनकी ठंडी चोटी पर वह नीलकण्ठ सा बैठा

नभ भी गाने लगता

सन्यासी ध्रुव की गोदी म

गीत फूल स भर भर जाते ।'[1]

इसी प्रकार पुरुष एव बाल जगत् का सौन्दय भी अपनी महिमा म अप्रतिम है। कवि उसका गुण गान करके तृप्त नहीं होता। यही कारण है कि अनादि काल से वह काव्य साहित्य एव जीवन सभी की स्पृहा का विषय रहा है। साहित्य म उसकी महत्ता आदि काल स ल कर अद्यपयन्त अक्षुण्ण है। उसका अकन चित्रण किए बिना कवि के लिए आत्मपर लाभ कर सकना सम्भव नही।

प्रेमाख्यानक सूफ़ी कवियों की दृष्टि म सौन्दय से बढ कर अन्य कोई वस्तु नही। उनको नारी सृष्टि सौन्दय का मूलाधार है। उसक समक्ष प्रकृति ही नहीं, पुरुष एव बाल जगत् के सौन्दय की भी एक प्रकार से उन्होंने उपेक्षा की है। अत मभन के बाह्य मानव सौन्दय क विवचन क लिए सव प्रथम उनके नारी सौन्दय का उद्घाटन आवश्यक है।

नारी सौन्दर्य —

नारी सृष्टि के रम्यतम उपकरणो के सौन्दय का निचोड है विधाता की बहुमूल्य उपलब्धि है। कवि की दृष्टि में उसकी स्वर्गीय प्रतिमा का निर्माण शत-सहस्र उषा सध्याओं जसे प्रकृति क उपकरणों स होता है उसका दिव्य म य रूप समग्र सृष्टि की स्पृहा का विषय है। यही कारण है कि कवि उसे कल्पना लोक की परी समझकर उसके सौन्दय का चित्रण करता है। मभन भी इसके अपवाद नही। उनकी मधुमालती क रूप सौन्दय म सृष्टि के समस्त सौन्दय का सार सन्निहित है। उसका सानी सृष्टि म दूसरा कोई नहा। वह विधाता की महान् सृष्टि है। उसका सौन्दर्यांकन अधिकतर परम्परायुक्त होते हुए भी बहुत कुछ मौलिक है।

---

१ नरेश मेहता, समय देवता मरा समर्पित एकान्त पृ० ४४।

सूफी प्रेमाख्यानक कवियों के सिद्धांतों के अनुसार उसे परमात्मा का प्रतीक माना जा सकता है। वही जीवात्मा का अंतिम लक्ष्य है, वही उसका प्राप्तव्य है। उसकी प्राप्ति के अभाव में मानव जीवन व्यर्थ है। प्रेम मार्ग में सर्वस्व न्योछावर करके कठोर साधना द्वारा उसे प्राप्त करना जिस मनुष्य ने नहीं सीखा उसने अपना जीवन व्यर्थ ही नष्ट कर दिया। राजकुमार मनोहर द्वारा अंतत उसकी प्राप्ति जीवात्मा द्वारा परमात्मा की प्राप्ति का द्योतक है। अत उसके सौन्दर्य के सम्बन्ध में मंझन की विभिन्न प्रकार की कल्पना अतिशयोक्तिपूर्ण होते हुए भी अनुचित नहीं कही जा सकती। उसके अभाव में वे उसकी अभिष्ट सौम्य मूर्ति की प्रतिष्ठा कर ही सकने में समर्थ न होते इसमें संदेह नहीं। उसका रूप-लावण्य साहित्य जगत् की वस्तु होकर भी बहुत कुछ यथार्थ है। सुन्दरी एवं कुरूपा नारी के अंतर से इस तथ्य पर प्रकाश पड़ सकता है। अस्तु।

मंझन की मधुमालती सौन्दर्य एवं कामलता की साक्षात् प्रतिमूर्ति है। उसके रूप में कवि सृष्टि के रम्यतम उपकरणों के सार को साकार होते अनुभूत करता है। उसका सौन्दर्य चित्र कितना ही परम्परामुक्त क्यों न हो पर उसमें आकर्षण अथवा रसात्मकता की कमी नहीं। उसके रूप वैभव को देखकर अप्सरायें आश्चर्य स्तब्ध हो उठती हैं। लज्जा से नत शिर होकर वे उसके विषय में कुछ कह नहीं पातीं। मनोहर के साथ उसे देखकर उन्हें लगता है कि वे दोनों एक-दूसरे से बढ़कर हैं कोई किसी से कम नहीं। उनका रूप संसार में अनुपम है। उसके अप्रतिम रूपोत्कर्ष को लखकर नायक मनोहर कभी मूर्छित हो जाता है, कभी चेतना लाभ करता है। उसे देखकर उसका चित्त चकराने लगता है और उसके विकल प्राण पत्तों की भाँति उड़ जाते हैं। उसकी माँग को देख कर उसे लगता है कि वह मानों स्वर्ग पथ का विकट चढ़ाव हो अथवा खड्ग की विकट धार हो जो रक्त से सुवासित हो अथवा सूर्य की सुहावनी किरण हो जो जगत् को जीत कर आकाश पर आई हुई हो अथवा वह माँग न होकर आकाश की हाट और सूर्य चन्द्र के उदय एवं अस्त की बाट हो अथवा बहकर आई हुई यमुना की नदी हो। उसके अभूतपूर्व सौन्दर्य को देखकर उसके प्राण विकल हो उठते हैं, लगता है मानों पतंग दीपक की ज्योति पर आ पड़ा हो। उसे देखकर ऐसा लगता है मानों श्यामल रजनी में श्यामल घन पटल के मध्य दामिनी द्युतिमान हो उठी हो और स्वर्ग से छिटक कर मधुमालती के सिर पर आकर शोभायमान हो गई हो —

> सूर किरिन सिर माँग सोहाई। सब जग जीति गगन पर आई।
>
> माँग न आहि गगन क हाटा। रवि ससि उद अस्त क बाटा।

कै जनु अमिय नदी बहि आई। बदन चाद नहि अमिय सिराई।
माँग सरूप देखि जिउ हरा। दीप पतग जोनि जनु परा।
सिर पर ठाउँ दीन्ह बिधि नाहीं। केहि पटतर लै लावौं ताही।
स्याम रैनि जस दामिनि स्याम जलद मह दीस।
मरग हुते जनु छिटकी आइ परी प्रिय सीस।[1]

कहने की आवश्यकता नहीं कि मझन की मधुमालती का यह सौन्दय चित्र पर्याप्त मार्मिक है। गगन की हाट तथा सूय चन्द्र के उदय की बाट जैसे कथनों से वर्णन की स्वाभाविकता म किंचित् व्याघात अवश्य उत्पन्न होता है किन्तु इसका कारण कवि का सिद्धान्त है—लौकिक द्वारा अलौकिक की व्यजना। अत इसमे कोई अनौचित्य नहीं। जायसी ने "खाड धार रुहिर जनु भरा 'तथा' करवत तपा लेहि होइ चूरू ' कहकर पद्मावती की माग के वर्णन को वीभत्स बना दिया है किन्तु मझन का यह सौन्दय चित्र इस दोष से सवथा मुक्त है। साथ ही इसमें स्वाभाविकता एव बिम्ब निर्माण क्षमता भी अपेक्षाकृत अधिक है।

नारी रूप सौन्दर्यानुभूति से आकुल कवि जब उसे अभिव्यक्ति का जामा पहनाता है तो प्राय उसका वर्णन एक क्रम से करता है—कभी माग से लेकर चरण-द्वय तक क्रमश उसके समस्त अग प्रत्यगों के रूप-वभव की झाकी प्रस्तुत करता है और कभी चरणतल से लेकर माग तक समस्त अगो के क्रमिक रूपोत्कर्ष की। अत साहित्य में उसके इस रूप वर्णन की प्रणाली स्थनत नख-शिख कहलाती है यद्यपि प्रथम को शिख-नख और द्वितीय को नख-शिख कहना अधिक उपयुक्त होगा।

मझन ने भी अपनी नायिका मधुमालती का सौदर्योद्घाटन नख-शिख (वस्तुत शिख नख) की पद्धति से किया है, माग से लेकर जघाओं तक उसके समस्त अगो का रूप वभव कवि की कुशल कलम कूचिका स मूर्तिमान् हो उठा है। अत उसके विभिन्न अगो के आनुभूतिक सौन्दय के उद्घाटन के लिए उन पर क्रमिक दृष्टिपात अपेक्षित है।

केश नारी रूप के महत्त्वपूर्ण अग हैं। उनके सौन्दय के प्रतिमान देश काल सापेक्ष होकर भी एक प्रकार से सामान्यत शाश्वत हैं। ससार में काले कुचित तथा भूरे घुघराले कशों का समान महत्त्व है भले ही पौरस्त्य साहित्य में एक प्रकार

१ मधुमालती (डा० गुप्त) राज सस्करण, पृ० ६४।

के और पाश्चात्य में दूसरे प्रकार के केश अधिक स्पृहणीय समझे जाते हों। मधुमालती के केश भी भारतीय प्रतिमानों के अनुसार काले, कुंचित, दीप्तिमान् एवं सुरभि सम्पन्न हैं। मंझन के शब्दों में 'उसके केश विषपूर्ण विषधर हैं जो शय्या पर सहज ही उसने के लिए लोट रहे हैं वे मणिधर प्रत्यक्ष हो चौकन्ने हो रहे हैं। रात्रि में जब उस चन्द्रमुखी मधुमालती के मुख खोलने से प्रकाश होता है उसी प्रकार दिन में उसके केशों के खोलने से अंधकार हो जाता है।'' उन्हें देखकर कवि को ऐसा लगता है कि मानों उनके रूप में वियोगियों का सम्पूर्ण दुख ही उसके सिर पर जाकर शृंगार हो गया हो। वे ऐसे लगते हैं मानों वियोगियों के वध के लिए कामदेव ने अपना जाल फैलाया हो —

> कच न होहिं विरही दुख सारा। भयउ आइ मधु सीस सिंगारा।
> भूली देखो दसा निज ताही। विहुर बिहारि मर्म जग जाही।
> छिटके बिहुर सोहागिनि जगत भयउ अंधकाल।
> जनु बिरही जन जिय बध कारन मनमथ रोपा जाल।

उसका ललाट द्वितीया का कलंकहीन शशि है जो नव खण्डों और तीनों भुवनों में प्रकाशित है। उसके मुख के चारों ओर जो प्रस्वेद बिन्दु झलक रहे हैं उन्हें देखकर लगता है कि मानो कृत्तिका की नक्षत्रमाला ने चन्द्रमा को ग्रस लिया हो। उसके ललाट पर लगा हुआ मृगमद का तिलक ऐसा प्रतीत होता है मानो चन्द्रमा राहु के वशीभूत हो गया हो। उसके ललाट के सौन्दर्य से लज्जित होकर चन्द्रमा आकाश में चला जाता है। जगत् के ऊपर जगमगाने वाला उसका ललाट सोलहों कलाओं के साथ प्रकाशमान होता है। उसके ललाट रूपी द्वितीया के चन्द्र के ऊपर बेंदा की पट्टिका को देखकर लगता है कि मानों शशि और निशा में परस्पर विपरीत रति हुई हो। उसकी भौंहों की वक्रता को देखकर कभी तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानों कामदेव ने हठपूर्वक धनुष को हाथ में लेकर उसके दो टुकड़े करके पुनः बिना जोड़ने वाले रस के दोनों को मिला लिया हो और उस धनुष को पुनः बना कर मधुमालती की भौंह सँवारी हो और कभी यह कि मानो कामदेव ने अपना धनुष उतार कर रख दिया हो। उन्हें देखकर कवि को ऐसा लगता है कि यदि उस श्रेष्ठ नारी के चक्षुओं पर भौंह चढ़ जायें तो इन्द्र अपने धनुष की प्रत्यंचा डाल दे[1]। उसके नेत्र-बाण जो श्याम श्वेत और रक्तवर्ण के सूत्रों से युक्त हैं हृदय में लगते ही दूसरी ओर बाहर निकल जाते हैं। उन्हें देखकर कवि को ऐसा लगता है कि मानों वे चंचल

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त) पृ० ६५।

विशाल, तीसे और अति वक्र खजन हैं जो पलक-पखो से ढके हुए हैं अथवा वे मानो असख्य जीव हरणकर्ता वधिक हैं जो अपने सिर के नीचे धनुष (भौंहों) को रख कर लेटे हुए हैं। वे ऐसे लगते हैं मानों सामने ही दो मीन क्रीडा कर रहे हों अथवा दो खजन उड़कर लड रहे हो अथवा मृग (नेत्र) धनुष (भौंहें) के नीचे विश्राम लेते हों—

'पारिध जनु अगनित जिउ हरे। पौढ़े धनुष सीस तर धरे।

\+ + + +

अचिजु एकु का बरनो, बरनत बरनि न जाइ।
जनु मारग मारग तर, निमरम पौढ़े आइ।[1]

उसकी बरौनियां विष के बुझे हुए वे बाण हैं जो मटक के पड़ते ही हृदय में व्याप्त हो जाते हैं। उसकी बरौनियों के वे बाण जिस किसी के भी सम्मुख होते हैं उसके रोम रोम को जर्जरित कर देते हैं। वह अपनी एक बरौनी को जब दूसरी से मिलाती है तो लगता है कि मानो छुरी को छुरी से तेज करती है —

"बरुनि बनावरि बिसह बुझाई। मटकि परत उर जाँहि समाई।
बरुनि बान सनमुख भे जाही। रोव रोव तन झाझर ताही।

\+ + + +

जबहीं बरुनि बरुनि सो मरव। जानहु छुरी छुरी सो टेवं।[2]

उसकी नासिका ससार में अपनी उपमा नहीं रखती—तोते की चोंच, खड्ग की धार तथा तिल के पुष्प से उसकी उपमा नही दी जा सकती क्योंकि वे उसकी समता नहीं कर सकते। यदि उसे उदयगिरि कहा जाय तो वह भी उचित नहीं क्योंकि शशि और सूर्य (चन्द्र और सूर्य नाम की नाडियाँ) उसके लिए झगड़ते हैं। उसके निकट कोई सचरण करने नहीं पाता और रात दिन वह सुगंध के आधार पर जीती है। देवताओं को भी तमोभिभूत करने की सामर्थ्य वाले उसके कपोलों की भी कोई उपमा नहीं। उन्हें देखकर देवता, मुनि और गन्धर्वों की तो बात ही क्या महेश का भी ध्यान भग हो जायगा, ऐसा कवि का विश्वास है —

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त) राज स पृ० ६८।
२ वही पृ० ६६।

उसकी ग्रीवा स्वयं विश्वकर्मा ने चाक पर फेर कर बनाई है। उसकी भुजाएं इतनी सुन्दर हैं कि कवि को उनकी कोई उपमा नहीं मिलती। उन सुरम्य एवं बलिष्ठ भुजाओं को देखकर वीर और निर्बल दोनों ही हार जाते हैं। उसकी कलाइयों को देखकर लगता है मानो कामदेव रूपी कारीगर ने उन्हें खराद पर चढ़ा कर बनाया हो। उसकी निर्मल हथेलियां ऐसी प्रतीत होती हैं मानो स्फटिक शिलाएं ईंगुर से पूरित हों। उसके दोनों कुच सुडौल तथा त्रिभुवन को चंचल करने वाले हैं। वे दोनों ही कुच अनुपम एवं नवीन श्रीफल (बेल) हैं जिन्हें उसके तारुण्य ने भेंट के रूप में लाकर दिया है। कठोर और काले सिरों वे वे कुच गर्व के कारण किसी के सामने नहीं झुकते, सिर पर श्याम बाना धारण किए हुए वे कुच त्रिभुवन में महावीर प्रसिद्ध हैं। कवि कहता है कि दोनों ही सीमा पर पहुंच कर लड़ना चाहते थे कि बचाव करने के लिए दोनों के बीच हार आ पड़ा —

'दुवौ सीव पर चाहहिं लरा। हार आइ तब अंतर परा।'[1]

उसकी रोमावली विष भरी नागिन है जो कि कटि से निकल कर नाभि कुंड में गिर गई है, प्रयत्न करने पर भी बाहर निकल नहीं सकी। उसका सुन्दर एवं सुडौल पेट ऐसा लगता है मानो विधाता ने उसे बिना अंतड़ियों के निर्मित किया हो। उसकी क्षीण कटि को देखकर जी में इस बात से डर होता है कि कहीं नितम्बों के भार से वह टूट न पड़े। वह इतनी सूक्ष्म है कि कितना ही हाथ फैलाइए छूने में नहीं आती। उसे छूने में इस बात का भय भी है कि कहीं वह हत्यारी छूने ही टूट न जाय। कवि कहता है कि उसकी सूक्ष्म कटि नितम्बों के भार से टूट पड़ती यदि उसका आधार त्रिवली उसे दृढ़ रूप से बांधे न होती। उसकी जंघाओं को देखकर कवि का मन कम्पायमान हो उठता है और जी ऐसा चंचल हो जाता है कि कुछ कहते नहीं बनता। उसके पैर उलट कर रखे हुए कनक कदली और गज शुण्ड के आकार के हैं यह उपमा देने में कवि को लज्जानुभूति होती है —

'बिपरित कनक कैदली औ गज सुण्ड सुभाउ।
उपमा देत लजानेउ सुनहु कहौं सति भाउ।"[2]

मझन की उपनायिका प्रेमा भी अनिन्द्य सुन्दरी है। उसकी मांग मानों वह श्रेष्ठ तलवार है जो उसके सिर पर नग्न रखी हुई है अथवा मानों वह दीपक की

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त) राज स०, पृ० ७६।
२ मधुमालती (डा० गुप्त) राज स० पृ० ८१।

"हस गौनीं मृग ननी वाला । अधर अमी रस भर रसाला ।
सभ मुकुवारि लता जिमि होलहिं । बचन मुरस कोकिल जिमि बोलहिं ।
देखत लक भरम जिउ हरई । बिधि यह छुवत टूटि जनि परइ ।
अमिय कुंड नाभी बस बारी । बनी सीस नाग रखवारी ।"[1]

पुरुष-सौन्दर्य –

जायसी आदि अन्य सूफ़ी कवियों की भांति ही मझन ने भी पुरुष के बाह्य सौंदर्य को उतना महत्त्व नहीं दिया जितना कि नारी के बाह्य सौंदर्य को। सूफी सिद्धान्तों के अनुसार नारी परमात्मा और पुरुष जीवात्मा का प्रतीक है अत नारी को पुरुष की अपेक्षा अधिक महत्त्व देना सूफ़ी कवियों के लिए स्वाभाविक ही है। किंतु गहराई में जाकर देखने से विदित होता है कि इस प्रश्न का उत्तर मनोविज्ञान में है। पुरुष कवियों को विषम लिंगीय नारी सौंदर्य जितना प्रभावित कर सकता है, जितना आकर्षक एवं अभिनंदनीय प्रतीत होता है उतना सम लिंगीय पुरुष सौंदर्य नहीं। जिस प्रकार नारी नारी के रूप लावण्य पर मुग्ध नहीं हो सकती— मोह न नारि नारि के रूपा —उसी प्रकार पुरुष को सम लिंगीय पुरुष सौंदर्य अभिभूत नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त नारी का बाह्य सौन्दर्य अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है और पुरुष का आन्तरिक सौंदर्य। नारी पुरुष के आन्तरिक सौन्दर्य पर अधिक मुग्ध होती है और पुरुष नारी के बाह्य सौंदर्य पर। यही कारण है कि पुरुष कवियों ने प्राय नारी के बाह्य और पुरुष के आन्तरिक सौंदर्य का ही चित्रण अधिक किया है। हा, परब्रह्म के अवतार राम कृष्ण तथा कतिपय अन्य महापुरुष अवश्य इसके अपवाद हैं। इस विषय में यहाँ यह कहा जा सकता है कि नारी कवयित्रियों को फिर पुरुष सौंदर्य का ही चित्रण करना चाहिए। बात ठीक है और नारी कवयित्रियों ने प्राय ऐसा किया भी है। पर नारी चूंकि स्वभाव से ही पुरुष की अपेक्षा अधिक लज्जाशीला होती है—कहा भी है लज्जा नारी का आभूषण है अत वह पुरुष सौंदर्य से प्रभावित होकर भी उसे नारी की अपेक्षा उत्कृष्ट समझकर भी उसका वर्णन प्राय कम करती है। अस्तु।

मझन के हृदय मे सम लिंगी पुरुष के बाह्य सौंदर्य के प्रति वह आकर्षण या अनुराग नहीं जो विषम-लिंगी नारी के बाह्य सौंदर्य के प्रति है। यही कारण है कि उन्होंने नायक मनोहर और उप-नायक ताराचंद के बाह्य सौन्दर्य का वैसा विशद एवं प्रभावोत्पादक चित्रण नहीं किया जैसा कि नायिका मधुमालती और उप नायिका

१ मधुमालती, डा० गुप्त, पाठ स० पृ० १३०।

प्रेमा के बाह्य सौन्दर्य का। हां कतिपय स्थलों पर उनके बाह्य सौन्दर्य की महत्ता का संक्षिप्त उद्घाटन अवश्य किया है।

सुपुत्र नायक मनोहर का गंधर्व सदृश अमूल्य मूर्ति को देखकर अप्सराओं का चित्त चलायमान हो जाता है और वे कह उठती हैं— यह मनुष्य है हम अप्सरायें हैं और कोई काम हमारा इससे नहीं हो सकता है किन्तु यह तो हो ही सकता है कि हम प्रयत्न करें कि उत्तर से अस्त तक जितना विधाता का राज्य है उसमें से यह सर्वश्रेष्ठ कामिनी का वरण करे। तदनन्तर वे गुजरात, सौराष्ट्र एवं सिंहल में उसके योग्य नारी की खोज करती हैं और वहां से निराश होकर तीनों भुवनों में अपनी दृष्टि दौड़ाती हैं। अन्ततः उनमें से एक का ध्यान महारस नगर के राजा विक्रमराज की कन्या मधुमालती की ओर जाता है और वह यह बात अन्य अप्सराओं से कहती है जो सबको बहुत अच्छी लगती है। फिर भी उन्हें इस बात में सन्देह ही बना रहता है कि दोनों में से कौन अधिक सुन्दर है—एक कहती है कि कुमार में रूप की अधिकता है। किंतु अन्त में वे सभी विचार करके इस निश्चय पर पहुँचती हैं कि दोनों में रूप की समतुल्यता है। तदुपरान्त कुमार के पलंग को ले जाकर जब वे मधुमालती की शय्या के पार्श्व में बिछाती हैं तो दोनों के रूप को देखकर सुध-बुध-विभोर होकर कुछ कह नहीं पातीं। कवि कहता है कि उन दोनों के रूप के आगे सूर्य और चन्द्र दोनों ही छिप गये। अप्सरायें उन्हें देखकर आश्चर्य स्तब्ध एवं लज्जित हो गई। जिस पर दृष्टि डालती हैं वही अधिक सुन्दर प्रतीत होता है। अपनी अपनी कला में दोनों सम्पूर्ण हैं, कोई भी दूसरे से रंचमात्र भी हीन नहीं है। तीनों भुवनों में विधाता ने दोनों को अनुपम सृजा है—

देखिन सो जा न जाइ बखाना। दिन सूरुज निसि चांद छपाना।
अचकि रही किछु कहा न जाई। देखि रूप सब रहीं लजाई।
एहि देखहिं तौ अधिक लोनाई। ओहि परखहिं तौ रूप सवाई।
अपनी अपनी कला सपूनी। दुइ महं कोउ न पाव बिहूनी।

जेउं जेउं निरखि निहारें तेउं तेउं अधिक सरूप।
तीनि भुवन महं बिधनै एइ दोउ सिर अनूप।[1]

नायक के अतिरिक्त ममन का उप-नायक ताराचंद भी रूप सौन्दर्य सम्पन्न है। वह सुन्दर रूपवान् तथा काम का मूर्ति है। नायक मनोहर के ही समान रूप
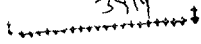
---

1 मधुमालती, सं० डा० माताप्रसाद गुप्त, राज सं० पृ० ५६।

वैभव सम्पन्न होने के कारण पक्षी रूपिणी मधुमालती भी उसके ध्यान में लीन हो जाती है —

> 'अति सुन्दर रुपवन्त सरेखा । सत्री बली अभाहृत बेखा ।
> लखन सपूरन विद्या मूरति मदन कुलीन ।
> बहुत उन्हारि मनोहर कै तेहि दखि मई मधु लीन ।'[१]

बाह्य प्रकृति-सौन्दर्य :—

बाह्य प्रकृति सौन्दर्य के चित्रण म मझन की वृत्ति नहीं रमती। उनके हृदय मे प्रकृति के प्रति कोई अनुराग है ऐसा उनकी कृति मधुमालती से कही लक्षित नहीं होता। इसके अतिरिक्त उनका उद्देश्य भी भिन्न है। यही कारण है कि प्रकृति के स्वतन्त्र रूप चित्रण का उनमे प्राय अभाव है। मानव रूप-व्यापारो तथा घटनाओं की पृष्ठभूमि के रूप मे भी उसका चित्रण प्राय नही के बराबर है। सारी कृति में ऐसे स्थल इने गिने ही हैं। विवाह के कुछ दिन पश्चात् मनोहर एव तारा-चन्द के अपने श्वसुर राजा विक्रमराज एव चित्रसेन स विदा की आज्ञा माँगने के पूव शरद् क सौन्दय का वणन मानव व्यापारों की पृष्ठभूमि के रूप में ही किया गया है—

> पावस गा दुहु भोग बेरासा । रात कुवार सोहिल परगासा ।
> मएउ अगास सुभर निरमला । सूर सहस ससि सोरह कला ।
> सिमिटे मेघ गगन जेत आहे । थाह भए जल हर औगाहे ।'[२]

इसी प्रकार आखेट के पूव जलते हुए वन के विभिन्न वन्य पशुओं की विकलता का यह चित्र भी द्रष्टव्य है —

> 'सब धनुकहू करि काड बिसारे । मार भोंस भए बिकरारे ।
> कतहू गैंड धाए बौराने । कतहूँ रोझ लोटहिं महुरान ।
> मरहि भालु घायल बिकराला । परे महिख ढारहिं खुरधारा ।

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त), राज स०, पृ० ३०६।
२ वही पृ० ४४०।

प्रेमा के वाह्य सौन्दर्य का। हाँ कतिपय स्थलों पर उनके वाह्य सौन्दर्य की महत्ता का संक्षिप्त उद्घाटन अवश्य किया है।

सुपुष्ट नायक मनोहर का गन्धर्व सदृश अमूल्य मूर्ति को देखकर अप्सराओं का चित्त चलायमान हो जाता है और वे कह उठती हैं— यह मनुष्य है हम अप्सरायें हैं और कोई काय हमारा इससे नहीं हो सकता है किन्तु यह तो हो ही सकता है कि हम प्रयत्न कर कि उन्य स अग्रत तक जितना विधाता का राज्य है उसमें से यह सर्वश्रेष्ठ कामिनी का वरण कर। 'तत्पर वे गुजरात, सौराष्ट्र एवं सिंहल में उसके योग्य नारी की खोज करती हैं और वहाँ से निराश होकर तीनों भुवनों में अपनी दृष्टि दौड़ाती हैं। अन्तत उनमें से एक का ध्यान महारस नगर के राजा विक्रमराज की कन्या मधुमालती की ओर जाता है और वह यह बात अन्य अप्सराओं से कहती है जो सबको बहुत अच्छी लगती है। फिर भी उन्हें इस बात से सन्देह हो बना रहता है कि दोनों में से कौन अधिक सुन्दर है—एक कहती है कि कुमार में रूप की अधिकता है। किन्तु अन्त में वे सभी विचार करके रूप निश्चय पर पहुँचती हैं कि दोनों में रूप की समतुल्यता है। तदुपरान्त कुमार को पलंग को ले जाकर जब वे मधुमालती की शय्या के पार्श्व में बिठाती हैं तो दोनों के रूप को देखकर मुग्ध-बुद्ध-विभोर होकर कुछ कह नहीं पातीं। कवि कहता है कि उन दोनों के रूप के आगे सूर्य और चन्द्र दोनों ही छिप गये। अप्सरायें उन्हें देखकर आश्चर्य स्तब्ध तब चकित हो गईं। जिस पर दृष्टि डालती हैं वही अधिक सुन्दर प्रतीत होता है। अपनी अपनी कला में दोनों सम्पूर्ण हैं, कोई भी दूसरे से रत्तीमात्र भी हीन नहीं है। तीनों भुवनों में विधाता ने दोनों को अनुपम सृजा है—

> दर्पन सो जो न जाइ बखाना। दिन सूरज निसि चांद छपाना।
> अधरि रहीं किछु कहा न जाई। दवि रूप सब रहीं लजाई।
> एहि दर्साहि तो अधिक लोनाई। आहि परसाहि तो रूप सवाई।
> अपनी अपनी कला सपूनी। दुइ मह काउ न घाट किन्नी।
>
> > जेउँ जउ निरखि निहारें तउँ तउँ अधिक सरूप।
> > तीनि भुवन मह बिधन एइ दोउ सिर अनूप।[1]

नायक के अतिरिक्त मदन का उप-नायक ताराचन्द भी रूप सौन्दर्य सम्पन्न है। वह सुन्दर रूपवान् तथा काम की मूर्ति है। नायक मनोहर के ही समान रूप-

---

१ मधुमालती, स० डा० माताप्रसाद गुप्त राज म० पृ० ४६।

वैभव सम्पन्न होने के कारण पक्षी रूपिणी मधुमालती भी उसके ध्यान में लीन हो जाती है —

> 'अति सुन्दर रूपवन्त सरूपा । सब्री बली अमाहृत वेखा ।
> लखन सपूरन विद्या मूरति मदन कुलीन ।
> बहुत उन्हारि मनोहर कै तेहि देखि भई मधु लीन ।'[1]

वाह्य प्रकृति-सौन्दर्य :—

वाह्य प्रकृति सौन्दर्य के चित्रण में मंझन की वृत्ति नहीं रमती । उनके हृदय मे प्रकृति के प्रति कोई अनुराग है, ऐसा उनकी कृति मधुमालती से कहीं लक्षित नहीं होता । इसके अतिरिक्त उनका उद्देश्य भी भिन्न है । यही कारण है कि प्रकृति के स्वतन्त्र रूप चित्रण का उनमे प्रायः अभाव है । मानव रूप-व्यापारो तथा घटनाओं की पृष्ठभूमि के रूप म भी उसका चित्रण प्रायः नही के बराबर है । सारी कृति में ऐसे स्थल इने गिने ही हैं । विवाह के कुछ दिन पश्चात् मनोहर एव ताराचन्द के अपने श्वसुर राजा विक्रमराज एव चित्रसेन स विदा की आज्ञा मागने के पूर्व शरद् के सौन्दर्य का वर्णन मानव व्यापारों की पृष्ठभूमि के रूप में ही किया गया है—

> पावस गा दुहु भोग बरासा । रात कुवार सोहिल परगासा ।
> मएउ अगास सुभर निरमला । सूर सहस ससि सोरह कला ।
> सिमिटे मेघ गगन जेत आहे । थाह भए जल हर औगाहे ।'[2]

इसी प्रकार आखेट य पूर्व जलते हुए वन के विभिन्न वन्य पशुओं की विरलता का यह चित्र भी द्रष्टव्य है —

> "सब धनुक्क हृ धरि काढ बिसारे । मारे भाँस भए बिकरारे ।
> कतहूँ गैंड धाए बौराने । कतहुँ रोझ लोटहि मुरझान ।
> मर्वहि मालु घायल बिकराला । परे महि डारहि कुरमारा ।

1 मधुमालती (डा० गुप्त), राज स०, पृ०
2 वही पृ० ४४० ।

(ग) सुनु बैसाख सखी दुख भारी । बन हरियर मोहि तन दौ जारी ।
जिन मुख सेज सखी है कन्तू । तिन्ह आनन्द बैसाख बसन्तू ।
पहिरैं पुहुप चाह बन बारी । मोहि बसन्त पिय बाझु उजारी ।[1]

वाह्य वस्तु-सौन्दर्य :—

वस्तु सौन्दर्य चित्रण भी मंझन ने प्रायः कम ही किया है । मधुमालती के आदि से अन्त तक मंझन का यही प्रयत्न रहा है कि कथानक निर्बाध रूप से गतिशील रहे—वस्तु-वर्णन का अनावश्यक विस्तार उसमें व्यवधान उत्पन्न न करे । यही कारण है कि उन्होंने केवल अत्यावश्यक वस्तु वर्णनों को ही अपने ग्रन्थ में स्थान दिया है और उन्हें भी अनावश्यक विस्तार के दुर्वह भार से बचाये रखने का सतत प्रयत्न किया है ।

ग्रन्थ में मंझन चार दुर्गों एवं नगरों के सौन्दर्य का विस्तृत चित्रण कर सकते थे किन्तु उनमें से उन्होंने केवल दो के ही सौन्दर्य का संक्षिप्त उद्घाटन किया है । चरणाद्रि दुर्ग का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि वह लङ्का से भी अधिक दुर्जेय है । गढ़ के पूर्व की दिशा में नदी घूम कर आई हुई है और गढ़ के उत्तर और पश्चिम में खाई (परिखा) के रूप में गङ्गा है । गढ़ के भीतर जाकर जो गङ्गा बही हुई है वह देखते ही बनती है कही नहीं जा सकती । यदि एक सहस्र सम्राट उस गढ़ को आ घेरें तो वे भी हार कर और सिर पर ठेंगा (लट्ठ) खाकर चले जायँगे । ऊपर गढ़ का छज्जा अद्भुत ढङ्ग का है और नीचे सुरसरि सरसाती हुई (जल से परिपूरित) बहती है । उस गढ़ की प्रशंसा नहीं की जा सकती । वह तो ऐसा है मानों स्वर्ग ही भूमि पर आकर शोभायमान हो —

'गढ़ अनूप बसि नगरि चनारी । कलिजुग महँ लङ्का सो गाढ़ो ।
पुब्ब दिसा जरगी फिरि आई । उत्तर पछिम गङ्ग गढ़ खाई ।
देखे बनै जाइ नहिं कही । गढ़ भीतर गङ्गा चलि बही ।
साहि सहस जौ लागहिं आई । जाहिं हारि सिर ठेंगा खाई ।
ऊपर छाजा अनबन भाँती । हेठ बही सुरसरि सरसाती ।

\+ \+ \+ \+

माहि अस्तुति मुह कही न जाइ । जानु सरग भुइं छावा आई ।

---

1 मधुमालती डा० गुप्त राज स०, पृ० ३५६ ।

खोरि खोरि सम घर घर नगर अनन्द हुलास ।
कलिजुग महँ जस त्रिदिमीं उतरि बसी कविलास ॥ [१]

राजकुमारी मधुमालती का राजभवन चारों ओर रेशमी वस्त्रों से मढ़ा हुआ है। उसके समस्त खम्भे स्वर्ण के हैं और रत्नों से जटित हैं। कवि कहता है कि वह भवन मानों स्वर्ग (आकाश) है जिसमें शशि उस नारी का मुख है, उसमें तारे माना व रत्न हैं जो उस महल में जटित हैं। उस महल (आकाश) में कृत्तिका की नक्षत्र माला मानों दासियों की टोली है और वह पलङ्ग मानो आकाश-खटोला (स्वर्ग-विमान) है —

चहुँ दिसि मन्दिल पटोर मढ़ावा । हेम खम्भ सब गगन जड़ावा ।
मंदिल सरग ससि बदन (सो) नारी । तारे रतन घरे जनु तारी ।
कचपचिया भइ चेरि ह टोरा । पलक जानु अकास खटोला । [२]

इसी प्रकार बारात वर्णन के अन्तर्गत कागज के खिलौनों—वृक्षों घरों कोठियों, खेड़ों ऊपरी भाग में नृत्य करती हुई नर्तकियों (पातरों) से युक्त कुसुम्भी वस्त्रों से मढ़ी हुई नावों, सजाय सँवार गये फलित वृक्षों—पाचों खम्भों, संसार भर में सूर्य का सा प्रकाश करने वाली मशालों, महताबियों हवाई चरखियों, दीप यष्टियों तथा हीरक एवं मुक्ता मालाओं दहेज की सामग्री के अन्तर्गत अश्व समुदाय की स्वर्ण वर्ण की पाखरों रत्न जटित आभरणों की सहस्रों पिटारियों रजत स्वर्ण, रत्न एवं मणि मुक्ताओं, बारातियों को दिये गये स्वर्ण पात्रों रेशमी वस्त्रों तथा विभिन्न सुन्दर रंगों के रेशम से बुने एवं रत्नों से जड़े फूलों के उठाव वाले पलङ्गों और सहस्रों बानों पर लाद कर दिये गये अगरु, कपूर मृगमद आदि सुगंधित द्रव्यों तथा नारियल द्राक्षा, बादाम एवं छुहारा और कनक गिरि का वर्णन के अन्तर्गत स्वर्ण पत्रों की पताकाओं से शोभायमान एवं वाहन सहस्र रत्नजटित कंगूरों से युक्त राज प्रासादों दस योजन तक दिखाई देने वाली उनकी मशालों स्वर्ण जटित अम्बारियों में कस गज-समुदाय और नई सफेदी से पुन तथा चन्दन से सुगंधित किये गये महलों (जिनके बाहरी एवं भीतरी भाग प्रतोली द्वार एवं प्राकार (परकोटा) सभी रेशमी वस्त्रों से रतनार किये गये थे) के सौन्दर्य का सुन्दर उद्घाटन किया गया है —

---

१ मधुमालती डा० गुप्त राज स० पृ० ३०।
२ वही, वही पृ० ६१।

(क) 'बहु कौतुक किए नागर केर । तरु निहाल कोठो औ सेरे ।
नावइ बहुत कुमुभी मढी । तिहि पर नाचहिं पतुरी चढीं ।

\+ + + +

बहुत बिरिखि किए फर फर । ठाउ ठाउ किए आडे खर ।
महतावी चरखीक हवाई । औ दीयटि अनगिनतिन आई ।'[1]

(ख) 'पीठि बाहि पाखर सोनवानी । आए हय सै सहस पलानी ।
औ मैमत गज मेघ समाना । दायज दीन्ह जगत सम जाना ।
अमरन सम जराय न्ह जरा । भाविन्ह सहस साज कै धरा ।
सोन रूप बहु नादि चलावा । मनि मुकुताहल गनत न आवा ।

\+ + + +

बरियाती जेत गाहने आए । भागा मल मल तिन्ह सब पाए ।
भाजन सान रूप के भए । पाट पटम्बर बरनि न गए ।
पालक आठौं टूक जराई । सुरङ्ग पाट बिनि फूल उठाई ।
अगर कपूर औ म्रिगमद परिमल साख जो आदि ।
नरियर दाख बदाम छोहारी बसट् सहस दस लादि ।।'[2]

(ग) कुजल साजे राजदुमारी । कनक जरित सो कसे अबारी ।
साजे तुर जो नाखन्ह लहही । पौन बेगि अपमै जनु चहहीं ।

\+ + + +

नई कलीं सम महन्न पोनाए । घसि चदन सम महल धुपाए ।
बाहेर भीतर पौरि पगारा । सुरङ्ग पटोर सम रतनारा ।
कनक जरावँ कीन्ह जेत महल मनोहर पास ।
तिन्हसम आपि सुफरकिए राजकुँवर कहँ बास '[3]

---

१ मधुमालती डा० गुप्त राज स०, पृ० ३८६, ३८७ ३८८ ।
२ मधुमालती (डा० गुप्त), राज स० पृ० ४००-४०१ ।
३ वही पृ० ४७१ ।

आन्तरिक-सौन्दर्य —

संसार में आन्तरिक सौन्दर्य जितना महत्वपूर्ण है बाह्य सौन्दर्य उतना नहीं। आन्तरिक सौन्दर्य हृदय, अन्तःकरण अथवा आत्मा का आकर्षण है जिसके अभाव में विश्व स्थिति सम्भव नहीं। वैयक्तिक कौटुम्बिक जातीय राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय जिस किसी भी दृष्टि से देखा जाय आन्तरिक सौन्दर्य का महत्त्व अपरिमेय है उससे रहित बाह्य सौन्दर्य विषपूर्ण कनक घट के समान है जिससे सृष्टि का कभी कल्याण नहीं हो सकता। इस प्रकार से वस्तुतः आन्तरिक सौन्दर्य ही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष एवं स्वर्ग का विधाता है—जहाँ उसकी स्थिति है वहीं स्वर्ग है क्योंकि स्वर्ग उसके समष्टि रूप के अतिरिक्त और कुछ नहीं। आधुनिक हिन्दी-साहित्य के लब्ध-प्रतिष्ठ कवि स्वर्गीय श्री जयशङ्कर प्रसाद ने स्पष्ट लिखा है —

> 'स्वर्ग है नहीं दूसरा और।
> सज्जन हृदय परम करुणामय यही एक है ठौर।
> सुधा सलिल से मानस जिसका पूरित प्रेम विहार।
> नित्य कुसुममय कल्पद्रुम की छाया है इस पार।'[1]

आन्तरिक एवं बाह्य सौन्दर्य परस्पर पूरक हैं—यदि आन्तरिक सौन्दर्य आत्मा अथवा हृदय है तो बाह्य सौन्दर्य शरीर। जिस प्रकार आत्मा अथवा हृदय के अभाव में शरीर का अस्तित्व नहीं हो सकता उसी प्रकार आन्तरिक सौन्दर्य के अभाव में बाह्य सौन्दर्य निष्प्राण शव सदृश है। यही कारण है कि कुशल कवि अपनी सौन्दर्य मूर्ति के प्रणयन में दोनों के समुचित सन्तुलन एवं समन्वय पर बल देते हैं। सौन्दर्य के कुशल पारखी मझन ने भी अपनी कृति में दोनों का समुचित सामञ्जस्य प्रस्तुत किया है। उनके पात्र जिस प्रकार अपने बाह्य सौन्दर्य में महान् हैं उसी प्रकार आन्तरिक सौन्दर्य में भी। यदि एक ओर उनका नायक मनोहर अनेक गुणों का आगार है तो दूसरी ओर उप-नायक ताराचन्द, यदि एक ओर उनकी नायिका मधुमालती के आन्तरिक सौन्दर्य में अनेक गुण साकार हो उठे हैं तो दूसरी ओर उप-नायिका प्रेमा में, यदि एक ओर राजा सूर्यभानु और उनकी रानी कमला वात्सल्य सेवा, सहिष्णुता एवं त्याग के उत्कृष्ट उदाहरण हैं तो दूसरी ओर राजा विक्रमराय एवं चित्रसेन तथा उनकी धर्मपत्नियाँ रूपमंजरी एवं मधुरा।

---

१ अजातशत्रु, सोलहवाँ संस्करण सं० २०१३ वि० पृ० १२२।

कवि भावुक प्राणी है। वह न केवल मानव अथवा जड़ चेतन प्रकृति के विभिन्न रूपों में ही आंतरिक सौन्दर्य के निर्माणक विविध गुणों का साक्षात्कार एवं उनकी योजना करता है प्रत्युत वस्तु जगत् के विभिन्न रूपों में भी उनका साक्षात्कार एवं विधान करता है। अतः आंतरिक सौंदर्य के अंतर्गत जहाँ एक ओर मानव-जगत् के विभिन्न गुणों, आदर्शों एवं वृत्ति व्यापारों का बहु-विध सौंदर्य आता है वहाँ दूसरी ओर प्रकृति एवं वस्तु जगत् के गुणादर्शों एवं वृत्ति व्यापारों का। अतः मधन के आंतरिक सौंदर्य के दिग्दर्शन के लिए उनका पृथक सविस्तर उद्घाटन आवश्यक है।

मानव-सौन्दर्य —

मानवीय आंतरिक सौंदर्य के अंतर्गत नारी पुरुष एवं बाल जगत् का सौंदर्य आता है। किन्तु मझन द्वारा बाल समुदाय का कोई उल्लेख न किए जाने के कारण यहाँ केवल नारी एवं पुरुष के आंतरिक सौंदर्य का उद्घाटन किया जायगा।

नारी सौन्दर्य —

नारी स्वर्ग एवं नरक दोनों की ही निर्मात्री है। वह यदि एक ओर अपने विभिन्न गुणादर्शों एवं वृत्ति व्यापारों से स्वर्ग का निर्माण कर सकती है तो दूसरी ओर अपने अवगुणों एवं गर्हित वृत्ति व्यापारों से स्वर्ग को भी नरक में परिणत कर सकती है।[१] अतः विश्व मांगल्य की दृष्टि से उसके आंतरिक सौंदर्य की कहीं अधिक

१ यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर, तो वह नारी उर के भीतर,
दल पर दल खोल हृदय के स्तर
जब बिठलाती प्रसन्न होकर
वह अमर प्रणय के शतदल पर।

+ + + +

यदि कहीं नरक है इस भू पर तो वह भी नारी के अन्दर
वासनावर्त में डाल प्रखर
वह अंध गर्त में चिर दुस्तर
नर को ढकेल सकती सत्वर।

—पंत, स्त्री, ग्राम्या पंचम सं०, पृ० ८२।

अपेक्षा है। कवि का यह पुनीत कर्तव्य है कि वह उनके आन्तरिक एवं बाह्य सौन्दर्य की वह मणिकांचन संयुक्ति प्रस्तुत करे जो नारी समाज को आकृष्ट करके उसका पथ प्रदर्शन करे। विश्व मंगलकारी गुणादर्शों एवं वृत्ति व्यापारों की प्रेरणा देकर इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने में योग दे। भारतीय कवियों ने सीता, अनसूया, सावित्री आदि नारियों के बाह्य एवं आन्तरिक सौन्दर्य के मणिकांचन संयोग उनके दिव्य भव्य रूप की योजना करके विश्व मांगल्य में योग दिया है यद्यपि बहुत से कवियों ने अपने रूप वर्णन में की उपेक्षा भी की है।

सूफी प्रेमाख्यानक कवियों ने यद्यपि आन्तरिक सौन्दर्य विधान की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया है तथापि उन्होंने उसकी एकदम उपेक्षा की हो ऐसा भी नहीं कहा जा सकता। मंझन इस दृष्टि से पर्याप्त जागरूक हैं। मधुमालती में आन्तरिक एवं बाह्य सौन्दर्य दोनों पर ही उनकी समुचित दृष्टि रही है और यही कारण है कि उसमें दोनों का समुचित सामंजस्य है। उनकी नारियाँ केवल बाह्य रूप-सौन्दर्य की ही प्रतिमूर्ति नहीं आन्तरिक रूप सौन्दर्य की भी दिव्य प्रभा को विकीर्ण करने वाली हैं। मधुमालती प्रेमा मधुरा रूपमंजरी कमला जौना मालिन तथा मधुमालती एवं प्रेमा की सखियाँ सभी अपने विभिन्न गुणादर्शों एवं विश्वमंगलकारी वृत्ति व्यापारों के दिव्य रूप-सौन्दर्य के कारण स्पृहणीय हैं।

मधुमालती जहाँ अपने बाह्य रूप सौन्दर्य के कारण अभिनन्दनीय है वहीं अपने विभिन्न गुणों आदर्शों एवं विश्वकल्याणकारी वृत्ति-व्यापारों के सौन्दर्य के कारण भी। वह अनन्य प्रेमिका परोपकारशीला मातृ वत्सला लज्जाशीला कष्ट सहिष्णु बुद्धिमती एवं कृतज्ञ हृदया है। मनोहर के प्रेम में वह सहस्रों कष्ट सहन करके भी अपने पथ से विचलित नहीं होती। उससे वियुक्त होकर वह हाहाकार मार कर रोती है उसके नैना से बरसा सावन की सी जल धारा छूटकर उसकी समग्र शय्या को सराबोर कर देती है उसके अश्रु राग से वर्षा काल उपस्थित हो जाता है और लोगों को दो वर्षा कालों के होने का भ्रम होने लगता है। उसकी श्वास उष्णित होने लगती है स्वर्णवत् शरीर मिट्टी में मिल जाता है अपनी विधु-वदनिका को वह धो डालती है चोली को तार-तार फाड़ डालती है रात रात उसके नेत्र लाल हो जाते हैं और वह अपने सिर पर धूल डाल डाल कर रोती है, माँ के समझाने पर कुछ समझ नहीं पाती उलट पछाड़ खा कर पृथ्वी पर गिर पड़ती है। माँ का कहा हुआ बुरा भला कुछ भी उसकी समझ में नहीं आता क्योंकि उसका मन एवं शरीर कुछ भी उसके वश में नहीं रहता। उसकी दशा विक्षिप्त से भी बढ़कर हो जाती है।

उसके त्याग, अध्यवसाय तथा कष्ट-सहिष्णुता आदि गुणों का सौंदय कितना स्पृहणीय है, यह कदाचित् कहने की आवश्यकता नहीं। रूपमंजरी द्वारा जल के छिड़के जाने पर पक्षी रूप को प्राप्त होते ही वह 'प्रियतम', प्रियतम' की रटलगाती हुई परिवार छोड़कर निकल भागती है। प्रिय वियोग में वह अपनी सखियों को छोड़ कर हृद उत्साह एवं सुख केलि छोड़ कर, भोग और भोजन की आशा छोड़कर, माता पिता का घर और निवास छोड़ कर, अर्थ द्रव्य और प्रदेश छोड़कर स्वजन भृत्यादि तथा सभी साथियों को छोड़कर, राज सिंहासन सुख शय्या, भूख-प्यास एवं निद्रादि छोड़कर वृक्ष पर बसेरा लेती है और बिच्छू के मारे हुए बावरे के समान व्याकुल होकर अपने प्रिय को खोजती हुई अशान्त भ्रमण करता है। ग्राम नगर, वन पर्वत सरिता-समुद्र गिरि कन्दरा सभी में जाकर वह अपने प्रियतम को खोजती है वृक्ष वृक्ष घर घर देश विदेश जन जन रंक नरेश सभी के बीच उसे ढूंढने का प्रयत्न करती है कदली वन, गोदावरी मथुरा गया, प्रयाग, जगन्नाथ पुरी, द्वारका तथा अन्य समस्त तीर्थों में घूम घूम कर अपना खोया हुआ सौभाग्य मांगती है और अंतत अपने प्रिय के रूपाकार से मिलते जुलते रूपाकार वाले राजकुमार ताराचन्द को देखकर प्रिय का कोई संकेत पाने की आशा में उसके जाल में बंधकर अपने प्राणों के उत्सर्ग का निश्चय करती है —

(क) पीतम पीतम मधु जिय भजा मधुमालति सब पंथा तजा।
छाडेउ मया मोह संसारा छाडेउ कुटुंब लोग परिवारा।
छाडी सखी सब जो खेली छाडेउ रहस चाउ सुख केली।
छाडेउ भोग भुगुति जिय आसा, छाडेउ मता पिता घर बासा।
छाडेउ अरथ दरब सब आथी छाडेउ जन परिजन सब साथी।

छाडेउ राजपाट सुख सेज्या रैनि नींदि दिन भूख।
छाडेउ चित्त चाउ सुख कीह बसेरा रूख॥[1]

(ख) मधुमालति सब छाड़ उदासी जोवत खोज करत है रानी।
व्याकुलि भई भवँ बिकरारी, जस बाउर हो बीछु क मारी।
गिरि सायेर बन फिरि फिरि हेरा कतहुँ न खोज पाउ पिउ केरा।
रन पट्टन जग भवँ उदासा, प बोहि की ना पूजी आसा।
तरु तरु घर घर दस दिसा जन जन ढूंढेउ रौंक नरेसा।

---

१ मधुमालती डा० गुप्त राजसंस्करण, १९६१, पृ० ३०७।

कन्नौजन गागावली मथुरा बनारसि प्रयाग ।
गढ द्वारिका यो सब तीरथ फिरि फिर माँग सोहाग ॥[1]

(ग) तब मधुमालति मन गुना पथ पथ जिउ गउ ।
आपु पनार जाल एहि करे यह मनोहर लउ ॥

(घ) अब हौं बांझि मरम नहि कऊ यो फुनि मरम जीय कर कऊ ।
मधु पावौं बिनु प्रीतम चाग मरौं त सही पथ पथ लाहा ।
यह मनमा कै पथ दौर मह परी वेगि हाइ प्रान ।
चांपे पाँव मधु मरमानो रही निरसि नहि जान ।[2]

लज्जा एवं कुल कानि का उसे इतना ध्यान रहता है कि वह अपने प्रेम की बात अपनी अन्तरङ्ग सखी प्रेमा का भी नहीं बताती। कुल मर्यादा की रक्षा के लिए वह विष खाकर अपने प्राण देना अधिक श्रेयस्कर समझती है। अपनी अन्तरङ्ग सखी से वह स्पष्ट कहती है —

बिरह दगध भो कुल क लाजा बना आइ दुन्ह जिय मों बाजा ।
कठिन पीर सखि बिरह क मा मुँह कही न जाय ।
किन्तु उपचार करहि जो पा हु तो मरिहूँ बिष खाय ॥[4]

प्रेमा को वह फटकारती हुई कहती है— मैं राजकुमारी हूँ और पिता के घर में रहती हूँ। अत पर पुरुष से मेरी पहचान कैसी ? यदि मेरे माता पिता ऐसा सुन पावें तो वे मुझे जीता जी सदा गड़वा दें। तू इस प्रकार का अपयश मुझे क्यों लगा रही है ? मेरे लाभ और क्षति से तेरा भी लाभ और क्षति है। तू जानकार चतुर और सुजान है ऐसी बात कहते तू लज्जित नहीं हुई ? मैं पूरी शक्ति के साथ तुझे यह उपदेश दे रही हूँ कि बात वह कहनी चाहिए जिसका कोई आधार हो। मैं कुलीना और राजगृह की कन्या हूँ फिर भी ऐसी लज्जा की बात कहते मुझे विरहणी की अनुभूति नहीं हुई[5]। हे सखी बात समझ कर कहनी चाहिए

---

१ मधुमालती, डा० शिवगोपाल मिश्र, द्वितीय सं० पृ० ११५–११६ ।
२ मधुमालती डा० गुप्त, राज संस्करण, पृ० २१४ ।
३ मधुमालती डा० गुप्त राज संस्करण १९६१, पृ० १८ ।
४ वही पृ० ११८ ।

ऐसी बात मे स्त्री का पानी उतर जाता है। ऐसो निराधार कोई बात कहता है ?[१]

उसकी बुद्धिमत्ता, धर्मपरायणता एवं व्यवहारपटुता का सौंदर्य भी कम स्पृहणीय नही। वह जानती है कि स्त्री थोड़े से अपकर्म से भी जग में अपकीर्ति प्राप्त करती है। वह यदि पाप करना चाहती है तो वह व्यर्थ का कार्य करके अपने को नष्ट करती है। स्त्री जाति पाप का घर होती है, उसके साथ यदि कुल हो तो वही उसे पाप से रोक सकता है। कुल ही उसे अपकर्मों से मना करने वाला होता है। पाप कर्म करके स्त्री अपने समस्त जन्मा के किए कराए को नष्ट कर डालती है। निर्मल कर्म करके दसों दिशाओ मे स्त्री को अपना मुख उज्ज्वल रखना चाहिए। पाप की कोठरी मे प्रवेश करके स्वयं को नष्ट करना उचित नही। राजकुमार मनोहर से उसका स्पष्ट कथन है —

> सुनो कुँवर एक बचन हमारा। धरम पंथ दुहुँ जग उजियारा।
> जाके हियें धरम गा जागी सो कस परं पाप क आगी।
> कुल औ धरम दुवौ रखवारी मता पितहि दै जाइ न गारी।
> निमिख लागि जो आपुहि नौसा ता कहँ नरक माहिं भा बासा।
> पाप पंथ चढि जेइ सत राखा, सरग अमिय फल तेइँ पै चाखा।
>
> जग जीवन जक परिहरहिं जिन्हे सत ऊपर चाउ।
> सरबस तजहिं सत नहिं छाडहिं सुनहु कुँवर सतिभाउ॥[२]

उसके मातृ पितृ प्रेम का सौंदर्य भी देखते ही बनता है। उसकी माता रूपमंजरी यद्यपि उसे बुरा भला कह कर पानी छिड़क कर पक्षी बना देती है, किंतु उसके मन मे उसके प्रति कोई विकार नहीं उत्पन्न होता। उसकी विनम्रता कितनी अभिनन्दनीय है, यह कहने की आवश्यकता नही। विदा होते समय वह केवल अपनी जननी के ही पैरों नही गिरती प्रत्युत मधुरा के भी पैरों मे लगकर उससे विदा मांगती है —

> 'फुनि गै कुँवरि औ राज सभागी, दौरि रोइ मधुरा पा लागी।
> कहेसि समदु मोहि माँ गल लाई मै परदेसिनि आजु पराई।
> मोहि मा सउ मोहि परम निहोरा, त प्रतिपार कीन्ह सभ मोरा।[३]

---

१ मधुमालती (गुप्त) पृ० २४७–२४९।
२ मधुमालती, डा० गुप्त राज संस्करण १९६१, पृ० १२७।
३ मधुमालती डा० गुप्त, राज सं० १९६१ पृ० ४६०।

ममत्व एवं स्नेह की वह साकार प्रतिमूर्ति है। वह केवल अपनी सखी सहेलियों से ही प्रेम नहीं करती प्रत्युत घर की एक एक वस्तु के प्रति उसके हृदय में वही स्नेह एवं ममत्व है जो माँ के हृदय में अपनी सन्तान के प्रति होता है। विवाह के अनन्तर विदा होते समय वह अपनी घर की एक एक वस्तु से विदा लेती है एक एक वस्तु से गले मिलती है—

समदै सब परिजन परिवारा, समदै फिर फिर पौरि केवारा।
समदै पालक सेज तुराई समदै राज मन्दिर कर ठाईं।
समदै सब पाटन पटसारा समदै राम राइ पौरि पगारा।
निसि माझ जहँ राजकुमारी समदै पालन परि चित्रसारी।
निरख औड पाइके सुख सोना ग समदै पिय माइ हिंडारा।

सब घर बार समदि कै तो समदै परिवार।
पुनि समदै जन परिजन जस किछु जग ब्यवहार॥ [1]

उसकी कष्ट सहिष्णुता का सौन्दर्य अनिर्वच है। पक्षिणी रूप में प्रिय मनोहर को खोजती हुई वह बारह मास किस प्रकार व्यतीत करती है यह जान कर पत्थर का हृदय भी पसीज जाता है। जायसी की नागमती का वियोग-दुःख उसके समक्ष कुछ भी नहीं प्रतीत होता क्योंकि वह कम से कम अपने नारी रूप से तो वंचित नहीं होती। भूख प्यास जाड़ा-पाला की चिन्ता न करके गिन गिन वृक्षों पर बसेरा करना कितना दुःखद है इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

मधुमालती की कृतज्ञता भी उसके आन्तरिक सौन्दर्य को चार चाँद लगाने वाला है। अपने उद्धारकर्ता कुमार ताराचन्द की वह अत्यन्त कृतज्ञ है, उसका आभार वह जीवनपर्यन्त भुला नहीं सकती। उसे मूर्च्छितावस्था में पाकर वह उसका सिर अपनी गोद में रखकर करुण क्रन्दन करती हुई उसके जीवन लाभ के लिए परमात्मा से प्रार्थना करती है उस पर पानी बार बार कर अपना सिर पीटती है उसके उपकारों का स्मरण करके उसकी सेवा न कर पाने की अपनी असमर्थता पर पश्चात्ताप करती है और उसके लिए यदि आवश्यक हो तो गुरुजनों को भी त्यागने के लिए वचन देती है —

सुनतहि मधुमालति उठि धाई बौर बौर कै रोवति आई।

\+ + + +

प्रान निछावरि करि तुहि मारी, मैं सदा बधु कीन्हि न तोरा।

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त रा० स०) पृ० ४५४-४५५।

राज पाट तजि मोहि लै आएहु, अनमिल रहा सो आ न मिलाएहु।
पछि रूप क जननि निसारी, लै मानुस क हो निस्तारी।
जननि मोहि गुन काटि बहाएउ तैं मोहि बीर तीर ल लाएउ।
दुख समुन्द जेहि वार न पारा, बही जात थ्यू थाक्रु अधारा।

बहा जात मोर बेरा बिनु गुन बिनु कडहार।
ता मझधार महँ बूडत तुम्हँ मोहि दीत अधार॥ [3]

प्रेमा से वह उसका विवाह कराती है और अपने कुटुम्ब स विदा होकर ताराचन्द और मनोहर के बेडों के पृथक-पृथक् मार्ग ग्रहण का समय आने की स्थिति में ताराचन्द से वियुक्त होने के दुःख से विह्वल होकर वह उसके द्वारा किए गए उपकारों का पुनः स्मरण करके उसके पैरों पर गिर कर कहती है —

'मधुमालती रोइ रोइ कह बाता, तै मोर जनम जीउ कर दाता।
माइ बाप हौं जनमि अहारी, बीर मोहि लै तुइ प्रतिपारी।
मिलइ कै जिय महँ हुती न आसा, तुम्हँ मोहि मर दी ह घर बासा।

राजपाट सम छाडा तुम्हे मोरे जिय लागि।
कहाँ के नीर बुझाइहि जरत हिएँ उर आगि॥

कैसे मैं जमु मरिहौं मारी, तुम्ह अब नगर चलहु जिय मारी।
जौं पाँख भए मोहि आई मरतिउँ कतहुँ जाइ बौराई।
फुनि बत माइ बाप घर औतिउ, कतहुँ जाइ क जीउ गवाँतिउँ।
मोहि घर बास बीर तुम्ह दी हो, पखि रूप सेउँ मानुस की हौं।
घट जिउ रहत बीर तोहि देखें आजु उजार जगत मोहि लेखें।

परिहरि सभ परिवार आपना बीरन पर भुइँ जाहि।
अब बिछुरन हुत मोहि तोहि आस मिलन क नाहि॥

+ + + +

---

१ मधुमालती, डा० गुप्त राज स० १९६१ पृ० ४१८-४१९।

रोइ रोइ फिरि पकरसि ताराचंद के पाइ ।
कुँवर लाइ गियें समना जस समनें बहिनि कहँ भाइ ॥'[1]

एक बाक्य में परमात्मा का प्रतीक रूपा यह युवती जिस प्रकार अपने बाह्य सौन्दर्य में महान् है उसी प्रकार अपने आन्तरिक सौंदर्य में भी—लज्जा उसका आभूषण है मिष्ट भाषण उसका स्वभाव है कष्ट सहिष्णुता उस अमोघ वरदान के रूप में मिली है लोक लाज, कुल मर्यादा, धर्म रक्षा, विनम्रता भ्रातृ-वत्सलता स्नेह शीलता एवं मातृ पितृ प्रेम की वह साकार प्रतिमूर्ति है और इन्हीं सब गुणों ने उस मानवी से देवी बना दिया है।

राजकुमारी प्रेमा भी अपने बाह्य रूपोत्कर्ष के समान ही आन्तरिक सौन्दर्य में भी महान् है। वह कुलीना करुणामयी परोपकारशीला, कृतज्ञ हृदया, बुद्धिमती एवं आज्ञाकारिणी है। अपने स्वयं के लिए वह राजकुमार का जीवन संकट में डालना नहीं चाहती। अपनी मुक्ति के लिए आकुल होकर भी जीवन में आठ आठ आँसू रोते हुए भी वह यह नहीं चाहती कि राजकुमार का जीवन संकट में पड़े। मधुमालती से मिलने का उपाय बताकर वह राजकुमार मनोहर से चित्तविश्राम नगर जाने का आग्रह करती है —

निसंसट कहिसि उठि न सोमा छाड़हु कुंवर मोरि तुम आसा।
मोहि लागि जनि आपु अपाना, जा मिस रहुँ आइ कर बाना।
जो मिस दएउ सो आगें लेहू जनि मोहि लागि अप्रिय जिउ देहु।
मोहि जियत बिय सपनें मुकुति न सूझहि काउ।
तैं जनि अ बिरथा मोहि लगि कुंवर अपान नसाउ॥
मोरी चिन्त कुँवर जनि लागहु, आपन पहर आइ तुम्ह जागहु।
मैं तौ अहिउँ मुए मारे ताएँ, तुइ जनि मरसि कुँवर मोहि ताएँ।
तेहि राकस बस परी सो बारा, बिनु हरि मुकुति को का पारा।
जौ मैं सहस कोस चलि जावौं औ धरती महँ पैठि छिपावौं।
पलक परत मोंहि उपर आव मार तार जग मउँ नाउँ नसाव।
एक अपने दुख दुखिया अहा सहा जिउ मार।
दूजें आइ के तुम पर दुख ना सुनत कुंवर दुख तोर॥

1 मधुमालती, डा० गुप्त राज सं०, १९६१, पृ० १६३-१६८।

राक्षस को मारने में वह ताराचन्द की प्रत्येक प्रकार से सहायता करती है उसकी विजय के लिए परमात्मा से प्रार्थना करती है अस्त्र शस्त्र देती है और राक्षस को मारने की युक्ति बताकर अमृत फल के वृक्ष को काटने का आग्रह करके उसे कटवा फेंकती है। अपने घर पहुँच कर वह उसका मधुमालती से मिलाप कराती है, रूपमंजरी की गालियाँ खाकर भी उसकी बातों का बुरा नहीं मानती। मधुमालती की पत्रिका को पढ़कर वह करुणामयी रोते रात अपने श्याम चक्षुओं को श्वेत कर डालती है। बारी से बात करते समय वह अपने प्राणों को शरीर से निकाल कर रोती है' और सखी से कुमार के आने का समाचार पाकर तुरन्त द्वार पर पहुँचकर उसके गले से लिपट जाती है और उसके अस्थि शेष शरीर को देखकर करुणाविह्वल हो उठती है। राक्षस से अपना उद्धार करने के लिए वह राजकुमार की चिर कृतज्ञ रहती है और मधुमालती से उसका पाणिग्रहण संस्कार कराने मे सफल होकर संतोष की सांस लेती है। ताराचन्द के साथ सपुराल के लिए प्रस्थान करते हुए मनोहर से वियुक्त होते समय उसके उपकारों का स्मरण करके वह विह्वल हो उठती है और उससे कहती है —

कहसि समुझि तोहि बिछुरन पोरा। कसें जनम निबाहब बीरा।
जो तुम्ह रूपमजरी डारा। तहि दिन रोइ गँवाइउँ सारा।
प जिय आहि मिलन कै आसा। मिलै आई माहि घट छुति सासा।
अब बिछुरन हुत आस न माही। जीयत बहुरि मिलन नहिं होही।

कुटुम्ब बियाग न जानिउँ जो देखेउँ तोहि पास।
अब तोहि बिछुर बीरन म मुठि भई निरास॥

\+ \+ \+ \+

लोग कुटुम्ब सब बिछुरा माही। बीरन रहिउँ लाइ जिउ तोही।
तुम्हहुँ चलहु अब मोहि परिहरी। जिउ घट रहत न देखौं घरी।
धीरज करत जीउ तोहि देखि पासा। आजु बीर तजि भएउ निरासा।

बिछुरन तिल तिल मरन है जग जान सब लोग।
ऐ बिधि काहु न देहि जग जीवन सब वियोग॥[1]

---

१ मधुमालती डा० गुप्त राज स०, पृ० ४७०–४ १।

तथा

स दानी ही तहि बन हारी । अति असूझ देवस अँधियारी ।
मोहि लागि सहस सीस सननारा । मारहु ओस राकस बरियारा ।
मारि निसाचर मोहि ले आएहु । बिछुरा सब परिवार मराएहु ।
अब तुम्ह आहु बार मोहि हारी । जीवन जनम मोहि अब भारी ।
भएउ बिछोह मोहि तोहि बीरा । मैं कहि तम्हि करब मनु धीरा ।[1]

अपने माता पिता की वह आज्ञाकारिणी पुत्री है। बिना उनकी आज्ञा के चित्रसारी भी नहीं जाती। चित्रसारी जाने की अतीव अभिलाषा होते हुए भी वह अपनी मा की आज्ञा की प्रतीक्षा करती है। हाँ बाल चापल्यवश वह उसके लिए हठ अवश्य करती है।

मधुरा रूपमंजरी तथा रानी कमलावती सभी वात्सल्य की साकार प्रतिमा हैं। रूपमंजरी यद्यपि अपने कर्त्तव्य भाव से प्रेरित होकर मधुमालती को बुरा भला कहती है तथापि उसका वह कार्य भी उसके अन्तर्तम वात्सल्य का ही परिचायक है। अपनी संतान के प्रति उसके हृदय में अगाध प्रेम है। मधुमालती को पक्षी रूप में परिणत करने का उसे अपार दुःख होता है—उसके वियोग में वह अन्न-पानी छोड़ देती है रो-रो कर अपने नेत्रों की ज्योति क्षीण कर डालती है संसार भर में उसकी खोज करवाती है और जैसे मालिन से उसके आगमन का समाचार पाकर उसके पैरों पर गिर पड़ता है और पगली हो चलकर दौड़ती हुई हुई उसके पास पहुँचता है —

(क) तहि दिन हुत राजा औ रानी । बिसरी तजा दूध अन पानी ।
नैन निसिदिन तस रोइ बहाए । जगत हेरि हार नहिं पाए ।
राजघरहि जो बिसमौ होइ । हरखवंत तेहि नगर न कोइ ।[2]

(ख) सुनि रानी मालिनि पग परा । कहसि दई विधि होइहि घरी ।
कब होइहि सो दिवस बिधाता । जेहि देखिहि दुहिता मुख माता ।[3]

(ग) सुनत बात रानी उठि धाई । पायें चली मालिनि घर आई ।[4]

---

१ मधुमालती, डा० गुप्त राज स०, पृ० ४३१ ।
२ मधुमालती डा० गुप्त राज मुम्ब० पृ० [illegible]३ ।
३ वही पृ० [illegible]२६ ।
४ वही पृ० ३२८ ।

अपन अगाध वात्सल्य के कारण ही वह मधुमालती के गौने की बात सुनकर अचेत हो जाती है और चेतना प्राप्त करने पर विक्रमराज के समझाने बुझाने पर नेत्रों में आँसू भरे हुए उदास चित्त से मधुमालती के पास जाती है —

'सुनतहि बात रूप मंजरी, भइ अचेत मुरुछित भुइ परी।
बिक्रम राय बैसि समुझावै, धिय कि रहै जमु नहर पाव।
ससुरें धिय कर होइ निरबाहा, मैके काज न धिय कहँ आहा।
नन भरे जल चित्त उदासा गइ रानी मधुमालति पासा।'[1]

रानी कमलावती और मधुरा भी अपने अनुपम वात्सल्य के कारण अविस्म रणीय हैं। मधुरा के हृदय म केवल अपनी पुत्री प्रेमा क लिए ही नहीं, उसकी सहेलियों के लिए भी पर्याप्त स्नेह एव ममत्व है। चित्रसारी जाने की आज्ञा देकर वह प्रेमा की सभी सखियों का फूला स शृगार करती है और किसी अनिष्ट की आशका के कारण बहुत कठिनता स बहुत थोडे समय के लिए ही उन्हें चित्रसारी जाने की आज्ञा देती है —

"और कहिहि तुइ बारि कुमारी मात पिता क प्रान अघारी।
नन ओट तोहि तिल न कराऊ नित जाइब छाडहि लखराऊ।
पुनि अस कहिनि बार जनि लावहु तिल एक खेलि वगि घर आवहु।'[2]

रानी कमलावती निश्छल, निमल एव सरल हृदया जननी हैं। मधुमालती के वियोग दु ख से विह्वल पुत्र मनोहर की दशा देखकर उनका हृदय विदीर्ण होने लगता है और वे उसके चरण पकड कर कहती हैं—'हे पुत्र तुम क्या निराधार हो गये ? हे पुत्र, तुम मुझे निराश न करो, दोनों लोकों में मुझे तुम्हारी ही आशा है। माता बलिहार जाती है, किस अपराध से तुम भिखारी बन बैठे ? वह कौन सी अग्नि है जिससे (मेरे लिए) त्रिभुवन (मेरा सुख) जल रहा है वह कौन सी शक्ति है जो इस प्रकार मेरे प्राण हर रही है —

"कवला आइ परी लै पाऊ, कहेसि पूत का भएउ बिपाऊ।
मोहि पूत जनि करहु निरासा, दुहुँ जग मह मोहि तोरी आसा।

---

१ मधुमालती, स० डा० गुप्त, राज सस्क०, पृ० ४४५।
२ वही, पृ० १६६।

पार कछु माता बलिहारी कहि ग्रोगुन तुम्ह मयउ भिगारी।
कौनि ग्रगिनि जेहि त्रिभुवन जरई, कौन सकति मार ग्रब जिउ हरई। [1]

पुन कुमार द्वारा मधुमालती का खोजने के लिए जाने की ग्राज्ञा माँगने पर उनका हृदय मर ग्राता है ग्रौर राजा तथा रानी दोनों ही उनके पैरों पर गिर कर उनसे घर छोड़कर ग्रयत्र न जाने के लिए विनय करते हुए कहते हैं कि नल ही वह उन्हें मारकर उनके प्राण ले ले पर घर छोड़कर न जाय। मधुमालती को लेकर उसके ग्राने का समाचार सुनकर रानी रात भर सोती नहीं समस्त रात जाग कर बिताती हैं ग्रौर दूसर दिन पुत्र को पाकर प्रत्येक प्रकार से कृतकृत्य हो कर फूली नहीं समाती। उस समय मे लगाकर व ऐसी प्रतीत होती हैं मानों जल की कमी से संतप्त मछली ने पानी पा लिया हो—

'रही जाइ गिय कुँवरहिं रानी, तपत मीन जस पावा पानी।
जब ले कठ ल लावै रानी राजकुमार।
तब कौना के मिनुन सऊँ निकस दूध क धार।। [2]

इसी प्रकार कौना मालिन सहजा धात्री तथा राजकुमारी मधुमालती एव प्रेमा की सखियाँ सहेलियाँ भी ग्रपने ग्रान्तरिक सौन्दय के कारण ही स्पृहणीय हैं। कौना की राज भक्ति स्नेहमय व्यक्तित्व तथा राजकुमारी के प्रति ग्रनुराग सहजा का वात्सल्य एव मातृ हृदय ग्रौर सखियों का ग्रनुराग ग्रभिनन्दनीय है। मधुमालती की विदा की बात सुनकर उसकी सखियाँ जसी थीं वसी ही दौड़ पड़ती हैं, रो रोकर *उसका ग्रालिंगन करती हैं बाल्य जीवन की मुखद क्रीडाग्रों का स्मरण करके* ग्रत्यधिक विह्वल होती हैं उसके वियोग में ग्रपने प्राणों के रहने में संदेह करती हैं उसकी विदाई की बात सुनकर भी शरीर में बने रहने वाले प्राणों के तथा वियोग दुख के मूल कारण यौवन की भर्त्सना करती हैं ग्रौर बाल्यकाल के सुखद जीवन तथा सखियों के साहचय में की जाने वाली विभिन्न क्रीडाग्रों के ग्रानन्द का सौभाग्य प्रदान करने वाले शैशव की प्रशंसा करके उसकी स्पृहा करती हैं। मधुमालती की स्नेहपूर्ण बातों को सुनकर कतिपय उसके पैरा पर पड़कर रोती है, कतिपय उसके गले से लिपट जाती हैं ग्रौर कतिपय पृथ्वी पर पड़ी-पड़ी ममत्व एव ग्रनुराग की ज्वाला से झुलस कर रोती हैं —

(क) *सुना सखि हु मधुमालति चली सुनतहिं माइ ग्रगिनि डर बली।*
जो जसिहि सो तसिहि धाईं, रोइ सबौं सभ ग्रकम लाई।

[1] मधुमालती डा० गुप्त, राज संस्करण पृ० १४१।
[2] मधुमालती डा० गुप्त राज संस्क०, पृ० ४८०।

रावहिं सम गल लागि महली, सँवरि सँवरि सँघ साथ जो मली।'[1]

(ख) तुम्हें बिदेस कहँ गौनब हम इहि जियत रहाहिं।
पेम नजावन पापि जिउ जौ निसरतहू नाहिं॥'[2]

(ग) जा बिधि जोबन बदलि कै बहुरि बालपन देइ।
स जोबन दे बाला बाल प्रवस्था लेइ॥'[3]

(घ) 'बहुत रोवहि पाय परि भी बहुतै गियँ लागि।
काई रोवै पुहुमि परि मया मोह व भागि॥''[4]

पुरुष-सौन्दर्य —

पुरुष का श्रान्तरिक सौन्दर्य नारी की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। समाज उसके बाह्य सौंदर्य पर नहीं, श्रन्त सौंदर्य पर मुग्ध होता है। नारी भी उसके अन्त सौंदर्य पर अपने को न्योछावर कर देती है। उसकी महत्ता उसकी वीरता, निर्भीकता, शक्ति पराक्रमशीलता, दृढ़ता, तेजस्विता एव उत्साहशीलता आदि गुणों में है। उसके अवगुणों से उद्भूत वैरूप्य किसी भी स्थिति में कमनीय नहीं। निम्नाकित काव्य-पंक्तियाँ इसी तथ्य की अभिव्यजक हैं —

(क) भल्ला हुआ जु मारिया बहिणि महारा कतु।
लज्जेज तु वयसिअहु जइ भग्गा घर एतु।''[5]

(हे बहन ! अच्छा हुआ जो हमारा पति मारा गया। यदि वह (रणक्षेत्र से) भाग कर घर आता तो मैं अपनी समवयस्काओं से लज्जित होती।)

(ख) बारह बरस लौं कूकर जीवैं श्रौ तेरह लौं जियै सियार।
बरस अठारह क्षत्रिय जीव आगे जीवन को धिक्कार।[6]

---

१ मधुमालती डा० गुप्त, राज सस्क० पृ० ४५०।
२ वही पृ० ४५१।
३ वही पृ० ४५२।
४ वही, पृ० ४५३।
५ हेमचन्द्र, सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन।
६ जगनिक आल्हखण्ड।

मदन भी पुरुष के आन्तरिक सौन्दर्य के महत्त्व से परिचित है। उनकी मधुमालती में उनके आन्तरिक सौन्दर्य का कहीं अभाव नहीं। उनके विभिन्न आकर्षक रूप उनमें अपने अभिनन्दनीय रूप में विद्यमान हैं। उनके पात्र मनोहर ताराचन्द, भूपभानु, विक्रमराज चित्रसेन तथा ताराचन्द का मित्र सभी आन्तरिक सौन्दर्य की दिव्याभा से आपूर्ण हैं। मनोहर पंडित कुलीन, त्यागी, कृतज्ञ, प्रियवर, विनम्र, साहसी, निर्भीक, सत्यनिष्ठ, दृढ़प्रतिज्ञ, कष्टसहिष्णु, मित्रवत्सल, पितृभक्त, परोपकारी, ज्ञानी, रण-कुशल, उत्साहपूर्ण एवं वीर है। प्रेम की अनन्यता उसके चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता है। मधुमालती के प्रेम में वह सहस्रों कष्ट सहन करके भी उफ नहीं करता—राजसिंहासन, ऐश्वर्य-वैभव, माता-पिता, स्वजन-परिजन, इष्ट मित्र तथा जन्म भूमि आदि सभी का परित्याग करके राजसी वेश-भूषा को तिलांजलि देकर योगियों के समान दण्ड एवं अधारी लेकर, सिर पर चक्र रखकर, मुख पर भस्म रमाकर, श्रवणों में स्फटिक की मुद्रा धारण कर सिर पर जटा बनाकर, कटि कौपीन बाँधकर और उपानह तजि किंगरा, कथा, मेखली और चिरकुटा सँभालकर योगियों का वेश बनाता है, माया मोह त्याग कर घर से निकल कर, वन पर्वत सरिता-सरोवर गिरि-कन्दरा तथा दुर्गम भयावह स्थानों में सिंहों, शार्दूलों एवं जंगली हाथियों के प्राण घातक शब्दों तथा हिंसक वृत्ति ... की चिन्ता न करके अन्धकारमय बीहड़ वनों में टटोलता एवं रेंगता हुआ यात्रा करता है, प्राणों की चिन्ता नहीं करता क्योंकि उसका यह प्रण है कि या तो उसकी प्रेमिका मधुमालती की भुजाएँ उसके गले में अर्पित होंगी या उसके हाथ में उसकी कटी हुई ग्रीवा होगा—

(क) कुँवर आस प्रिय के परिहरी। दहुरि ध्यान कै सुमिरसि हरी।

+ + +

देहि अन्तर विधि अथा बनाई, कुँवर टेक बूड़त मँह पाई।[1]

(ख) राज साज सब गा जेहि भएऊ, मधुमालति कर दुख सब रहा।

जेहु निसि दिन दम काई नाहीं रही एक वह सब परिछाहीं।

जेहि बन कबहुँ न मानुस आवा तेहि बन निधरक कुँवर सहावा।

+ + +

---

१ मधुमालती सं० डा० गुप्त, रा० सं०, पृ० १५०।

चला जाइ वन माहँ अकेला, अगम पथ अति कठिन दुहेला ।
सीह सेंदूर चिधरहिं हाथी, एकसर कोउ न दोसर साथी ।
चलत न खिन मान बिसराऊँ, जपत जीभि जा प्रीतम नाऊँ ।
पुनि कजलीवन केर पसारा, परी साँझ औ भा अँधियारा ।
अति प्रसून जहँ रेंगि न जाई बसि कुँवर तहँ रनि बिहाई ।

आसन मारि लाइ लौ गुरु सेउँ बसउ पकरि धियान ।
जुग सम रनि बियोग क जागत मायँ सुजान ।।[1]

(ग) एहि दुख माह एक होइ मैं निजु जानां जीय ।
कै हम मुअ वल तुम्ह गरें क तुम्ह हथ हम गीय ।।[2]

महता द्वारा स्त्री निन्दा किए जाने पर भी उस पर उसका रचमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ता उसके अनन्य प्रेम में कोई कमी नहीं आती । परिणामत दुःख समुद्र में डूब कर अन्तत वह उस महान् चिन्तामणि को प्राप्त कर ही लेता है जिसके साक्षात्कार को व अपने महान् पूर्व-पुण्यो का फल बताता है और जिसे प्राप्त करके उसका जीवन धन्य हो जाता है ।

उसका व्यक्तित्व केवल अनन्य प्रेम, कष्ट सहिष्णुता साधना एव अध्यवसाय आदि गुणों की दिव्याभा से ही मंडित नहीं वीरता शक्ति, साहस एव बुद्धिमत्ता की सौन्दय रश्मियों से भी दीप्तिमान है । धनुर्विद्या तथा ससार के अन्य समस्त शस्त्रास्त्रों का अभ्यास करके वह उनमे पटु हो जाता है, खाडा, फरी कटार, बर्छी और मालसरी को वह अत्यन्त कुशलतापूर्वक चलाता है धनुर्विद्या म वह इतना दक्ष हो जाता है कि कवि को उसकी उपमा नही मिलती, सिर पर बालों में बंधे मोतियों को वह फोड देता था । कवि के शब्दो में वह शूर वीर विद्या एव गुणा मे परिपूर्ण बुद्धिमान ज्ञान गुरु एव चतुदश विद्याओ का निधान था —

खाँड फरी औ कुन्त कटारा, माल सरीं अति सुघर कुमारा ।
धनुक वान लावौ केहि जोरा, वार वाँधि मोती सिर फोरा ।
ऐस कुँवर सारग कर साजा, सरग धनुक देखत छपि लाजा ।

१ मधुमालती (गुप्त) पृ० १५१–१५२ ।
२ मधुमालती स० डा० गुप्त, राम सस्क०, पृ० २७४ ।

रन पूरा बिद्या गुन पूरा दस श्री नारि निधान।
मालिकन बुधिवन्ता मन्न मूरति गुर (१) ग्यान॥[१]

उसकी शक्तिमता वीरता एवं साहसशीलता भी कम स्पृहणीय नहीं। राक्षस-वध का प्रसङ्ग इसका उत्कृष्ट उदाहरण है। उसकी कृतज्ञता अभिनन्दनीय है। मधुमालती का समाचार देने वाली प्रमा की रक्षा वह अपने प्राणों को हथेली पर रखकर इसीलिए करता है क्योंकि वह उसका अपनी प्रेमिका का समाचार देने के लिए कृतज्ञ है। ताराचन्द पर वह अपने प्राणों को न्योछावर करने के लिए इसीलिए प्रस्तुत है क्योंकि उसने उसका मधुमालती से मिलाप करवाया है। इस विषय में वह अपनी प्रेमिका-पत्नी मधुमालती से कहता है —

पूछेसि कौन महल तोर भाई, हम सब नैनु दखावहु जाई।
य आपन जिउ श्रोहि पर वारौं चरन रेनु बरनिन्ह झैं मारौं।
सीस पायें आहि पाँव लगाई चरननि लेउ दुइ माँथ चढ़ाई।
श्रोहि मोहि लागि सहा दुख भारी मैं न करों जीउ बलिहारी।

मोजि रहेउ रिपु नाहीं जो भारति ल जाउ।
जिउ भति किंचित भाग भारति करत लजाउ॥

ताराचन्द से मिलते ही वह उसके पैरों पर गिर पड़ता है और उसके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करते हुए कहता है —

ताराचन्द अति भा मरा, धाइ मनोहर पौ लै परा।
जो जो ताराचन्द उचाव, धाइ धाइ सिर पाँवहि लाव।
कहेसि का हु तुम्हें मा लगि जमा कलिजुग को क पार एसा।
छाडेहु राज पाट मोहि लागी जरत सिराएहु मा हिय आगी।

तुम्ह मार जिउ न पाएहु परिहरि आपन राज।
जो मैं जिउ न करौ तोरि आरति पुनि यह जिव कहि काज॥[३]

इसके अतिरिक्त उसकी विनम्रता बुद्धिमत्ता आदि अन्य गुणों का सौन्दर्य भी मानव-स्पृहा का विषय है। राजा चित्रसेन से स्वदेश जाने की आज्ञा माँगने का उसका

१ मधुमालती, डा० गुप्त राज सं० पृ० ४८।
२ मधुमालती डा० गुप्त, राज सं० पृ० ४०२।
३ मधुमालती, डा० गुप्त राज सं० पृ० ४०३।

ढग, राजकुमारियो की विदा वेला मे अपन श्वसुरके पैरो पर उसका पडना तथा श्वसुर की विनम्रतापूण बातों रा सुनकर अपने कानो पर हाथ रखकर दिया गया उसका उत्तर उसकी विनम्रता का उत्कृष्ट उदाहरण है —

(क) दुवौ कुँवर कर जोरि कै बिनती ठाढ कराहिं ।
कहैं हि देहु जो अग्यां देस अपन कहँ जाहिं ।।[१]

(ख) फुनि दुवौ निरिप जहा हुत खरे दुवौ कुँवर म पाइन्ह परे ।[२]

(ग) सुनि कुँवर ह सवननि कर गहा, पिता अइस तुम्हैं बूझिय कहा ।
मोन्ह मता पित हम जनमे बार, माइ बाप तुम्हैं जेइँ पतिपारे ।
एहि परिवार गोसाइँनि रानी पितर तरहिं इ ह अँजुरिन्ह पानी ।
इ ह ससि सेउँ हम कुल उजियारे, येइ मनि हम इन्ह सेउँ मनियारे ।
कसत कसौटी कचन लाका तस एइ हम कुल माथें टीका ।

न ह कर सोच करहु जनि जियँ आपन नरेस ।
अग्यां देहु गोसाई गोनहि अपन देस ।।[३]

ताराचन्द कुलीन उदार दयालु सत्यनिष्ठ, विनम्र, करुणावान, परोपकारा बुद्धिमान शक्तिशाली मित्र वत्सल एव अनन्य प्रमी है । पक्षी रूपिणी मधुमालती को देखकर वह उस पर लुब्ध हो जाता है उसे पकडने के लिए तन मन धन से प्रयत्न करके उसे सोने के पिंजडे म रखता है उसे खान के लिए मणि मुक्तादि दता है उसके कुछ न खाने पर उसके साथ तीन दिन तक उपवास करता है, उसकी मर्मान्तिक कहानी से करुणाभिभूत होकर उसके उद्धार के लिए राज्य वैभव छोड़कर असम्भव को भी सम्भव कर दिखाने की प्रतिज्ञा करता है और अन्त म उसे नारी रूप म परिवर्तित करवा कर उसके प्रिय मनोहर से उसका पाणि—ग्रहण करवाता है —

(क) निमिख न पिंजरा परिहर औ न काहु पतियाइ ।
हियें ऊपर निसि बासर पिंजरा लिहं रहाइ ।।[४]

---

१ मधुमालती डा० गुप्त, राज स०, पृ० ४४० ।
२ मधुमालती, डा० गुप्त, राज स०, पृ० ४६१ ।
३ मधुमालती, डा० गुप्त, राज स० पृ० ४६२ ।
४ वही, पृ० ३१६ ।

(ख) तीनि देवस बीत एहि भावा कुँवर पहिं दुइ लियो न खावा।
पुनि उपजेउ बाला मन माहँ यह मोहि लागि मर कहिं लाहँ।[1]

(ग) सुना राय पछी दुख बती, मया प्रानु मरि आए नती।
कुँवर कहा सुनि रे जिउ त्यागी तोर दुख सुनें उठ उर आगी।

जनि विछु कछ चिन्ता चित माहीं, आटवीं सोइ उद्धारति आहीं।
मगम गहौं बाला तोहि लागी जिमि बुभाइ तो हिय उर आगी।
मोर बोसाउ भाग तोर बारा, मरउन हार एक करतारा।

राजपाट मन परिहरि दुख भ ग तैं तोहि लागि।
मकु साहस मउँ हौं मिधि पावउँ बुझ हिय तोहि पागि ॥[2]

तथा

मिलहि न जो लहि प्रीतम तोहीं, तो लहि साति नाहिं उर मोहीं।
जो लहि पहिल रूप नहिं पावति, तो लहि कुँवर काज नहिं आवति।

नगर महारस जाइ क पहिल रूप सुख देइ।
खोजि कुँवर ताहि मरवौं जो बिधि आउ न लेइ ॥[3]

राजा सूयभानु के व्यक्तित्व म वात्सल्य, विनम्रता, सेवाशीलता त्याग एव कष्ट सहिष्णुता आदि गुणों का पु जीभूत आतरिक सौन्दर्य द्रष्टव्य है। पुत्र प्राप्ति के लिए व जिस प्रकार समाधिस्थ तपस्वी की सेवा करत हैं क्षुधा तृषा एव निद्रादि का परित्याग करके १२ वर्ष तक दिन रात उसकी सेवा के लिए खड़े रहते हैं, वह एक एश्वय वभव सम्पन्न राजा क लिए सामान्य बात नहीं। उनक इन वृत्ति व्यापारों का प्रेरक यद्यपि उनक अतराल में स्थित उनका अगाध वात्सल्य है तथापि वह स्वय में चूकि अपन विश्वकल्याणकारी रूप के कारण मानव जगत् की स्पृहा का विषय है अत उसम प्रेरित गुणात्मक एव वृत्ति-व्यापार भी मङ्गलमय एव अभिनन्दनीय हैं —

तपा एक आवा तेहि ठाऊ लागेउ आइ क पकर पाऊ।
तेहि पाछें राजा चलि आवा, पाउ धोइ क सिरहि चढ़ावा।

---

१ मधुमालती डा० गुप्त राज स० पृ ४१६।
२ मधुमालती डा० गुप्त राज स० पृष्ठ ३२३-३२४।
३ वही पृष्ठ ३२४।

\+ + + +

तपै समाधि लगाई लोग बहुरि घर प्राउ ।
एक सरराजा वन महँ सेव तपा कर पाउ ।।

रात्ति दवम सेवइ वह जागा, देवस न सून रनि सव जागा ।
भूँख पियास नाद सुख छाडा तपा प्रागें निस दिन रहा ठाढा ।
बारह बरिस सेव जो कीन्हों, तपा समाधि छूटि तव चीन्हीं ।[1]

उनका वात्सल्य अनुपम है । पुत्र मनोहर के लिए वे सब कुछ न्योछावर करने के लिए सन्नद्ध रहते हैं शिशु मनोहर को देख कर प्रसन्नता से फूले नही समाते—क्षण क्षण पर उसका आलिंगन करके आनन्द विह्वल होकर उसकी न्योछावर में बहुत सा द्रव्य लुटाते हैं, ५ वर्ष की अवस्था में उसे पढाने के लिए पण्डित को सौंप कर, उसके चरण पकड कर अच्छी से अच्छी शिक्षा देने के लिए उससे प्रार्थना करते हैं और उसके बदले मे उसकी निरन्तर सेवा करते रहने का वचन देते हैं । उसके मधुमालती के वियोग में दुखी होने पर उसके लिए अपना समस्त राज्य वैभव ही नहीं अपने प्राण तक देने के लिए तत्पर रहते हैं ——

कहै राउ मैं जिउ धन त्यागा जीउ मोर तेहि के जिउ लागा ।
अरथ दरब जेत लागु सो लावहु, कुँवर जीउ कसहु बहुरावहु ।
क उपगार सुतहि पलटावहु मोर जिउ लागै तौ लाइ जिम्रावहु ।[2]

तथा

सुत बियोग जसरथ क नाईं हम फुनि मरब पत तुम्ह ताईं ।
हम दनौं पहिलेहि जिउ मारहु, तौ तुम्ह पूत बिदेस सिधारहु ।

मोरें जियत न बिछुरहु मोरें और न कोइ ।
हिया फाटिररि मरिहौं सँवरि सँवरि गुन गोइ ।।[3]

उसके चल जाने पर व कान्त वपद धारण करके शोक मनाते हैं, राजकाय का परित्याग करके उसे महामात्या पर छोड देते हैं, उसके पुनरागमन की सूचना

१ मधुमालती, डा० गुप्त, राज स०, पृ० २६ ।
२ मधुमालती (डा० गुप्त रा० सस्क० १९५१) पृ० १२६ ।
३ वही पृ० १४८ ।

पाकर उसके दर्शनों की आशा में रात्रि इस प्रकार व्यतीत करते हैं जैसे प्यासा पानी का आसरा देखता हो, उसके पैरों पड़ने पर उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता है मानों अन्धे ने नेत्रों की ज्योति प्राप्त कर ली हो —

(क) राजैं कापर पहिर कारे जन परिजन सब रहे मन मार ।
सगरौ नगर रहे बिसमाना, सुनिय न अनहत नाद क साना ।
जेहि दिन सेउ तुम्ह गौनेहु राजा नगर न कतहूँ बाजन बाजा ।

महिमा सेउ परगन कहँ गौनेहु राजकुमार ।
तब सेउँ राज चत सब छाड़े सून्नमान भुवार ।[1]

(ख) सुन्दर मान सुत दरसन आसा जस पानी अमरत पियासा ।[2]

(ग) कुँवर मिला पा न गउ धाई नैन जोति अधर जनु पाई ।[3]

इसी प्रकार राजा विक्रमराज के वात्सल्य, विनम्रता एवं तेजस्विता आदि तथा राजा चित्रसेन के वात्सल्य, कृतज्ञता आदि गुणों का सौन्दर्य भी संसार की स्पृहा का विषय होने के कारण कमनीय है। साथ ही ताराचन्द के मित्र के निम्नांकित कथन में वर्णित उसके विभिन्न गुणों का आन्तरिक सौन्दर्य भी विश्वकल्याणकारी होने के कारण स्पृहणीय एवं अभिनन्दनीय है —

कुँवर सुहिरदी सुनि यह बाता फिर पाँ छुवत काँपत सब गाता ।
कहसि होहि जो सो जिय माहँ रउ उमै नेउछावरि जाहँ ।
जौ न आजु बार सब जइहू, पुनि कवि काज कान्ह मैं अहूँ ।
जौ जिउ संग न लागिहि तोरें सो जिउ बहुरि कास कहि मोरें ।
तुम्ह सब जौ न जाउ पहि बरा ... रहौं मैं सै कहि कहा ।

तुम्ह बिनु कत गौनहु छाड़ि राज कलुसार ।
मैं जो रहौं तुम्ह परिहरि का सब मानि कहार ॥[4]

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त राजमहल १९६१) पृ० ६३६ ।
२ वही, ४७८ ।
३ वही ४८० ।
४ मधुमालती (डा० गुप्त रा० म० १९६१) पृ० ५८ ।

आन्तरिक प्रकृति-सौन्दर्य :—

प्रकृति का जो भाग जड है वह तो जड है ही, पर जो चेतन है उसमें भी विवेक के दर्शन प्राय नहीं होते। किन्तु कवि भावुक प्राणी है। जड चेतन प्रकृति के विभिन्न रूपों में विवेक एव चेतना का आरोप उसकी विशेषता है। चेतन प्रकृति ही नहीं, जड प्रकृति भी उसे सोती-जागती, उठती-बैठती, खाती पीती, हँसती रोती, योजनाएँ बनाती तथा प्रेम क्रोध करुणा परोपकार, सेवा त्याग एव बलिदान आदि भाव, गुण एव व्यापारो से युक्त प्रतीत होती है। मझन की प्रकृति भी इसका अपवाद नहीं। उनकी प्रकृति में भी सहानुभूति करुणा एव द्रवणशीलता आदि गुण उसी प्रकार विद्यमान हैं जिस प्रकार अन्य भावुक कवियो की प्रकृति में। उनकी प्रेमा की दुःख-गाथा एव करुण क्रन्दन से अभिभूत द्रवीभूत प्रकृति अपनी व्यापक सहानुभूतिशीलता एव करुणा मे मानव जगत् को भी बहुत पीछे छोड जाती है। उसके दुःख से सूय, चन्द्र, नक्षत्र, वासुकि, इन्द्र कुबेर, पृथ्वी आकाश एव सुमेरु पवत सभी द्रवीभूत हो रो पडते हैं। तोता उसके दुःख के रक्ताश्रुओ से मुँह धो लेता है कोकिल और काग उसकी दुःख दावाग्नि म जलकर कृष्ण वण हो जाते हैं, वृक्ष उसके दुःख दाह स जलकर पत्ते झाड देते हैं, कमल एव गुलाल उसके दुःख से लाल हो जाते हैं, कलियाँ द्रवीभूत हो कर पखुडियों रूपी अपने शरीर के वस्त्रो को फाड डालती हैं, अनार का हृदय उसकी दशा देख कर फट जाता है तुरज नीबू डाल म ही पीला हो जाता है, नारगी उसके रक्ताश्रुओं की घूँट पीकर लाल हो जाती है खजूर की छाती उस दुःख से आहत होकर विदीर्ण हो जाती है आम बावले (बौरे) हो जाते हैं और महुए तथा करील बिना पत्तो के हो जाते हैं। बडहर उसके दुःख म पीला पड गया, इमली टेढी पड गई महूनी उसके रक्ताश्रु की घूँट पीकर रक्त वर्ण हो गई, रूही क्षीण हो गई, टेसू ने उस दुःख के कारण अपने सिर पर आग लगा ली (अङ्गारो जैसे फूल धारण कर लिए) कलियों ने बन्द होकर उस दुःख को सम्पुटो मे ग्रहण किया, तरुओ की फली हुई डालियाँ उस दुःख से नमित हो गई, कुई तथा कमल जल म डूब गये, जामुन डाल में ही काला हो गया, कटहल ने काटे की साडी पहन ली, घुघुची रक्ताश्रुओ से रो रो कर अपना मुँह काला करके बन में चली गई वृक्षो ने पृथ्वी को दाँतों म पकड लिया, कल्पतरु पृथ्वी को छोडकर चला गया। हारिल उस दुःख से विह्वल होकर भूमि पर आ गया, चमगादड ने स्वय को वृक्ष में लटका लिया, लता उस दुःख स भयभीत एव निस्तेज होकर वृक्ष से लिपट गई चील आतङ्कित होकर कभी पुरुष और कभी स्त्री होने लगी, भृङ्गराज दो भाषाओ की आड मे अपनी जिह्वा बदलकर छिप गया और उसके दुःख से दग्ध होकर कोयला जैसा काला हो गया —

‘और भुजङ्ग दुनौ दौ जरे, और करील पात परिहरे।
मेंहदी रकत रती घट भोनी, जूही दुखहि भई तन छीनी।
टेसू आगि लाइ सिर रहा, कलिन बंद दुख सम्पुट गहा।
फरी डार तरुवर दुख नए, कौल कुमुद जल बूड़न गए।
जामुनि भई डार दुख कारी, कटहर पहिर कांट की सारी।

रकत राइ बन घुघुची रही जो राती होइ।
मुहुँ काला के बन गई, जग जान सब कोइ॥

दुख दाधे बड़हर बियरान अम्बिली टेढ़ि भई जग जाने।
रूख ठ दुखन्ह दाँत भुइँ धरे, कलपब्रिच्छ पुहुमी परिहरे।
हारिल दुखहि हार भुइ आवा, गादुर दुख त रूख टँगावा।
दुख के डार जो बौरि हेरानी, म, निस्तेज रूप लपटानी।
चील्ह जो दुख के म तें डरी कबहि पुरुस कब ी इसतिरी।

दुह माखा के ओट लुकाना जीभ फरि मिगराज।
तबहीं भो दहि कोइला पेमा नहि दुख क ज॥’

कहने की आवश्यकता नहीं कि मझन द्वारा प्रदर्शित उनकी प्रकृति का यह गुण—उसका यह आन्तरिक सौन्दर्य—एक दृष्टि से हृत्वाभास (Pathetic Fallacy) अथवा हेतूत्प्रेक्षा की आलङ्कारिक शैली की देन होकर भी मानव जगत् की भी स्पृहा का विषय है और संसार के लिए एक ऐसी सुरम्य सौन्दर्य मूर्ति की प्रतिष्ठा करता है जो उसे अपनी ओर आकृष्ट करके अपनी महत्ता का परिज्ञान कराती है आत्मसात् करने की प्रेरणा देती है—इस क्षेत्र में इस प्रकार के सौन्दर्य की योजना के लिए प्रोत्साहित करती है—और इस प्रकार उस ओर मङ्गली मुख करके विश्व कल्याण में योग देती है।

किन्तु यह सब होते हुए भी यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि मझन में उस व्यापक प्रकृति दृष्टि एवं आन्तरिक प्रकृति सौन्दर्य-सृजनकारी कल्पना का अभाव है जो

१ मधुमालती (सं० डा० शिवगोपाल मिश्र) द्वितीय सं० १९६५, पृ० ७३-७४।

उसम अन्य गुणादर्शों एव विश्व-मङ्गल-विधायक वृत्ति-व्यापारो का साक्षात्कार अथवा आरोप करके उसकी विराट मार्मिक सौदय मूर्ति की प्रतिष्ठा करती।

आन्तरिक वस्तु-सौन्दर्य :—

वस्तु जगत् तत्वत जड है। उसमे चेतन मानव के गुणादर्शों एव वृत्ति-व्यापारों की योजना अथवा आरोप कवि कर्म की विशेषता है। कवि जड वस्तुओं मे भी कभी कभी ऐसे दिव्य आन्तरिक सौदय का विधान करता है विश्व माङ्गल्य की दृष्टि से जिनका महत्त्व अप्रतिम होता है। किन्तु मभन ने वस्तु-जगत् की इस सौन्दय सृष्टि की ओर कोई ध्यान नही दिया। कारण कुछ भी हो, पर उनकी सौदय सृष्टि का यह अभाव उनकी सौदय सृजन-कर्त्री क्षमता में एक प्रश्न चिह्न सा लगा देता है—उनकी सौदय दृष्टि की व्यापकता में सन्देह उत्पन्न करता है।

आभिव्यक्तिक अथवा कलागत सौन्दर्य

आभिव्यक्तिक सौंदर्य की योजना के लिए प्रयत्नशील कवि उसका विधान दो प्रकार से करते हैं—आभिव्यक्तिक गुणों के विधान तथा अभिव्यक्तिगत दोषों के निवारण द्वारा। अतः मंझन के आभिव्यक्तिक सौन्दर्य के निदर्शन के लिए उनकी इन दोनों ही प्रकार की क्षमताओं पर दृष्टिपात करना होगा। काव्य-ग्रन्थ में आभिव्यक्तिक गुणों का साक्षात्कार कविता-कामिनी के आन्तरिक एवं बाह्य सौन्दर्य के विभिन्न रूपों में किया जा सकता है। सौन्दर्य की एक प्रमुख विशेषता प्राणी को अपने में तल्लीन कर लेने की उसकी क्षमता है। 'जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से तदाकार परिणति जितनी ही अधिक"[1] होती है वह वस्तु उतनी ही सुन्दर होती है। अतः कलागत अथवा आभिव्यक्तिक सौन्दर्य भी पाठक अथवा श्रोता को तन्मय करने की जितनी ही क्षमता रखता है, उतना ही वह श्रेष्ठ होता है। साथ ही इस सौन्दर्यानुभूति को ग्रहण करने में जहाँ-कहीं भी कोई व्यवधान आता है, वहीं उसमें कुरूपता आ जाती है। मंझन का आभिव्यक्तिक सौन्दर्य भी इसका अपवाद नहीं। अतः देखना यह है कि मंझन का यह सौन्दर्य उनकी कविता-कामिनी के आन्तरिक एवं बाह्य रूप के किन किन अवयवों में और किस-किस प्रकार का है।

काव्य की आत्मा रस है समीक्षा क्षेत्र में अब यह सिद्धान्त निश्चित एवं निर्विवाद रूप से स्वीकृत हो चुका है। मंझन भी कदाचित् इस तथ्य से अवगत थे। उन्होंने अपने काव्य में रस की जो अखंड एवं अविरल धारा प्रवहमान की है, उसमें अवगाहन कर सहृदय मानव निष्कलुष हो जाता है। उनका शृंगार वह चिन्ता रत्न है जो पाठक श्रोता की इच्छा करते ही उसको अभीष्ट फल प्रदान कर संतुष्ट कर देता है। उनकी मधुमालती फ़ारसी की मसनवी पद्धति पर लिखी हुई वह प्रेम कहानी है जो प्रेमी में अनन्यता, त्याग, कष्ट-सहिष्णुता, धैर्य, साहस, शौर्य, भक्ति, कृतज्ञता एवं बुद्धिमत्ता आदि अनेक गुणों की स्वतः सृष्टि कर देती है। प्रारम्भ में ही कवि ने वचन की महत्ता की व्यंजना करके आभिव्यक्तिक सौन्दर्य की महिमा में अपनी

---

[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, कविता क्या है चिन्तामणि भाग १ पृ० १८५।

व्याख्या -पस्त की है। उसके अनुसार वचन की महिमा अपरिमय है। यदि विधाता वचन का निर्माण न करता तो कोई रस-वार्ता कहा तक सुनता ? प्रथम ही और आदि सृष्टि के परे भी हरि मुख मे वचन ने अवतार लिया। वह एक (प्रथम) वचन आदि ओंकार था जो कि भला और बुरा होकर ससार म व्याप्त हो गया। विधाता ने वचन को जगत् में बड़ा बनाया क्योंकि वचन से ही पशु और मनुष्य पहचाना जाता है। वचन की बात सभी कोई जानता है क्योंकि वह ब्रह्म भी वचन से ही प्रकट हुआ —

> 'वचन जो नहि निरमवत विधाता। केत सुनत कोई रस बाता।
> प्रथमहि आदि सिस्टिहु के पारा। हरिमुख बचन लो ह औतारा।
> एकै बचन आदि उ कारा। भल मंदहोइ व्यापा समसारा।
> विधन जगत वचन बड कीहा। वचन हुतें पसु मानुम चीहा।
> बचन कै बात जान सभ कोई। बचन हुतें परगत भा सोई।"[१]

रसगत सौन्दर्य :—

जसा कि कहा जा चुका है मझन की कृति मधुमालती फारसी की मसनवी शली पर लिखी गई है जिसमें प्रेम का महत्त्व सर्वोपरि है। यही कारण है कि मधुमालती में आरम्भ से लेकर अ त तक प्रेम का जो दिव्य भव्य रूप प्रस्तुत किया गया है वह प्राय अन्यत्र प्राप्त नहीं होता। प्रेम के इस वर्णन में शृ गार रस का जो उत्कृष्ट परिपाक हुआ है वही मधुमालती के रसगत सौन्दर्य की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है। अप्सरायें सुप्त मनोहर की शय्या उठाकर मधुमालती के शयनागार मे उसके पलग के पास रखकर आम्रवाटिका को चली जाती हैं। मनोहर अगड़ाई लेकर जागता है तो अपने पास ही बिछी हुई शय्या पर एक अनिंद्य सुन्दरी राजकुमारी को सोते हुए देखकर आश्चर्य स्तब्ध हो उसपर मुग्ध हो जाता है—

> "चकित चित्त दहुँ दिसि फिरि हेरा। बिधि यह नगर मदिल केहि केरा।
> औ यह कौन सोव बिकरारी। धनि जेहि लगि बिधनै औतारी।
> देखत हिय समानो स्यामा। कुँवर जीउ करिग परनामा।
> सूती सुखी सेज देखि बाला। नव सिख उठी कुँवर के ज्वाला।

---

[१] मधुमालती सपादक डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० २२।

बारम्बार मूर्च्छित होना तथा दैन्य भाव से मूर्च्छित होकर उसके चरणों पर गिरना, राजकुमारी का उस पर अमृत-जल छिड़कना, पखा करना दया एवं ममत्व से भर कर अत्यन्त प्रबल से उसके नेत्र-जल का पोंछना तथा उसके सिर को पकड़ कर अपने चरणों से उठाना, राजकुमार का चेतनायुक्त होकर उठ बैठना, शरीर का काँपना तथा उसके प्रति अपने प्रेम की पूर्व कथा कहना आदि संयोग शृंगार की सुन्दर सामग्री प्रस्तुत करते हैं। मनोहर मधुमालती से अपने प्रेम की पूर्व कहानी इस प्रकार कहता है—

तू मैं दुवौ सदा सघ बासी। औ सतत एक गृह नेवासी।
औ मैं तुइ दुइ एक सरीरा। दुइ माटी सानी एक नीरा।
एक बारी दुइ बहु पनारी। एक दिया दुइ घर उजियारी।
एक जीउ दुइ घर सचारा। एक अगिनि दुइ ठाएँ बारा।
एक हम दु क औतारे। एक मंदिल दुइ किए दुवारे।

\+ \+ \+ \+

अब लहि बिनु जिय जीवन सारा। आजु देखि तोहि जीउ सभारा।
देखत छिन पहिचाना तोही। इहै रूप जेइ छन्रा माही।'[1]

इस प्रकार राजकुमार से अपने पूर्व प्रेम की कहानी सुन कर राजकुमारी मधुमालती पूर्व प्रीति का स्मरण कर प्रेमोन्मत्त हो गई और अन्त में अपने स्त्री रूप, मर्यादा एवं कुल कानि की रक्षा का ध्यान कर के, राजकुमार से प्रेम निवाह की शपथ लेकर, उसके प्रति अपने प्रेम निवाह की स्वयं शपथ ली और अनन्तर दोनों एक दूसरे के प्रेम में विभोर हो गये।

इसके अनन्तर दोनों के निद्राग्रस्त हो जाने पर जब अप्सरायें पुनः उन दोनों को पृथक कर देती हैं—राजकुमार का पर्यंक पुनः उसके महल में ले आती हैं, तो जाग्रतावस्था में आने पर दोनों ही वियोग विह्वल हो उठते हैं। राजकुमार राजकुमारी के वियोग में व्यथित हो राजमहल छोड़ कर वन-पर्वत, सरिता समुद्र आदि को पार करता हुआ बीहड़ वन में पहुँचता है और वहाँ प्रेमा से परिचय होने पर, दुर्दमनीय राक्षस को मारकर, उसको मुक्त कर के मधुमालती से मिलन की आशा में

---

१ मधुमालती सं० डा० माताप्रसाद गुप्त, पृ० ६८–६९।

उसर मार उसके महल में पहुँचता है। मधुमालती अपनी माता के साथ वहाँ आती है और प्रेमा राजकुमार से उसकी भेंट अपनी चित्रसारी में कराती है। तदनन्तर दोनों पुनः वियुक्त होते हैं। मधुमालती की माँ उसे मंत्र बल से पक्षी बना देती है और वह अपने प्रिय राजकुमार को खोज में उड़ती फिरती है। मंझन ने इस अवसर पर बारह मास की योजना करके पक्षी रूपिणी मधुमालती की वियोग-व्यथा का बड़ा ही सुन्दर एवं स्वाभाविक वर्णन किया है। इसी प्रकार मधुमालती के वियोग में राजकुमार मनोहर की विरहावस्था का बड़ा ही मार्मिक एवं करुणोत्पादक चित्रण किया गया है। तदुपरान्त दोनों के पुनर्मिलन के समय पुनः संयोग शृंगार के चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। इसी प्रकार प्रेमा एवं ताराचन्द के संयोग शृंगार के चित्र भी पर्याप्त आकर्षक मार्मिक एवं रसात्मक हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि मधुमालती संयोग एवं विप्रलम्भ शृंगार के मनोहर चित्रों का ही आगार है। अन्य रसों की व्यंजना की ओर कवि का ध्यान प्रायः नहीं गया है। कथा-प्रवाह में कहीं कहीं वीर भयानक आदि रसों की योजना हो गई है। पर सौम्य के सुकुमार कवि मंझन वीभत्स एवं करुण रसों से विरक्त से रहे हैं, अन्य प्रेम काव्य कवियों के विपरीत मधुमालती में वीभत्स आदि सौन्दर्य विहीन रसों के लिए प्रायः कोई स्थान नहीं दिखाई देता। मंझन के अनुसार प्रेम का संसार में अपरिमित महत्त्व है और उनका यह प्रेम आत्मा एवं परमात्मा के प्रेम का प्रतीक है—नायक 'साधक, आत्मा' और नायिका 'ईश्वर' का प्रति रूप है जिसकी प्राप्ति साधक दुःख के महत्त्व को समझकर, दुःखाम्बुधि में डूबकर ही करता है। गुरु जीव को परमात्मा की ओर उन्मुख करता है, अतः उसका महत्त्व भी अन्य भक्त एवं प्रेमाख्यानक कवियों के समान ही मंझन की दृष्टि में भी पर्याप्त है। 'मधुमालती' की अप्सराएँ गुरु का काम करके जीवात्मा एवं परमात्मा के प्रेम-योग में योग देती हैं।

आलंकारिक सौन्दर्य —

कविता कामिनी के लिए आलंकारिक एवं उपमान-योजनागत सौन्दर्य का वही महत्त्व है जो कामिनी के लिए वस्त्राभरणों एवं रत्नादि का होता है। अतः उनकी आवश्यकता के विषय में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। यद्यपि यह सत्य है कि सुन्दरी नारी बिना अलंकारों के भी सुन्दर प्रतीत होती है तथापि इसके साथ ही यह भी सत्य है कि वस्त्राभरणों के बिना नग्न कामिनी उतनी स्पृहणीय प्रतीत नहीं होती जितनी कि वह उनसे संयुक्त होकर होती है। अतः जिस प्रकार वस्त्राभरणों का उचित उपयोग नारी के लिए आवश्यक है उसी प्रकार आलंकारिक एवं उपमान योजनागत सौन्दर्य का समुचित योग कविता कामिनी के लिए भी। मंझन

कविता कामिनी की इस आवश्यकता से परिचित थे । अत उन्होंने इसकी उपेक्षा नहीं की है । उपमा रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह, भ्रांतिमान, प्रतीक, अतिशयोक्ति आदि अलंकारो से उन्होंने अपनी कविता-कामिनी की जो शोभा वृद्धि की है वह उनकी चमत्कार प्रियता की नहीं, सौंदय प्रेमी हृदय की सकुल सौन्दर्यानुभूति की स्वाभाविक व्यजना की द्योतक है । उनकी वृत्ति यद्यपि उत्प्रेक्षा की आलंकारिक शैली में अधिक रमी है तथापि उन्होंने अन्य अलकारो का भी यथास्थान समुचित प्रयोग किया है । इस विषय में उनके अधोकित प्रयाग द्रष्टव्य हैं —

उपमा —

'बहनि बान नावक कर लेखा । दिस्टि न आव लागु पै देखा ।'[1]

रूपक :—

सुनिउ जाहि दिन सिस्टि उपाई । प्रीति परेवा दिहेउ उडाई ।
तीनिउ लोक ढूँन्ि के आवा । आपु जाग कहुँ ठाउ न पावा ।
तब फिरि मोहि घट पैसेउ आई । रहेउ लोभाइ न गएउ उडाई ।
तीनि भुवन तब पूछी बाता । कहु तुइ कस मानुस घट राता ।
कहेसि दुक्ख मानुस कर आसा । जहाँ दुःख तह मोर निवासा ।'[2]

तथा

"बिधि कुच स्याम छत्र सिर दीते । गडे आइ नैनन्हि आचीते ।
सरेते दुवो बीर जिउ हरिया । जौ न हार होत बिच परहरिया ।

पुन कमल अम्रित रस पूरे, बिधि कुच कठिन कठोर ।
जोबन बाला उमगत देखेउँ बिपरित कनक कचार ।।"[3]

प्रतीप :—

'नाव सरूप न बरनै पारौं । तीनिउ भुवन हेरि के हारौं ।

---

१ मधुमालती, स० डा० मा०प्र० गुप्त, पृ० ४२५ ।
२ वही पृ० ६७ ।
३ मधुमालती, स० डा० गुप्त, पृ० ४२७ ।

अथवा

सूते स्याम स्वेत औ राते, लागत हिए निफरि ही जाते ।
चपल बिसाल तीख अति बाँके, खजन पलक पख सेउ ढाँके ।
पारधि जनु अगनित जिउ हरे, पौढे धनुष सीस तर धरे ।
सनमुख मीन केलि जनु करहीं, कै जनु दुइ खजन उडि लरहीं ।
दुवौ नैन जिय केर बियाधा, देखत उठ मर कै साधा ।"[१]

भ्रान्तिमान :—

'एहि विधि केलि करत ही बारी, कवल बदन पुनि सम सुकुवारी ।
औ सभ गात सुवासिक लाए, पुहुप बास तजि मधुकर धाए ।
कहू के सीस जो चढि (चढि) बसे, काहू के उर चाहहि पैसे ।
अधर सुरग अमिय जो अहे कँवल बास ते मधुकर गहे ।
अब लहि बहुत जतन रस राखे, ते बरबस मधुकर चहैं चाखे ।

काटे अधर सबहि के अकुलानी बर नारि ।
आगे मधुकर घेरैं, पाछे गहे पुकारि

बिगसत कँवल उपम सभ बारा, वैसे मधुकर किए गुजारा ।
बिकल सो बात कहै नहि पावहि सास लेत मुख पसे आवहि ।
अकुलाने भा मग सिगारा, कचुकि फाटि टूटि गिय हारा ।
परी अवस्था सब अकुलानी नासेउ तिलक माँग उघसानी ।
नो सत जो धर मेउँ क आई, नासि चलीं से सब भवराई ।

दुहूँ कर बदन छिपाये, धाई तै बर नारि ।
चित्रसारि मोतरग पसी, जार पौरि दोन्हि टारि ।

एहि अवस्था त बर नारी आई धाइ माफ चित्रसारी ।
बहुतन्ह के ककन कर फूटे, बहुतन्ह हार उरहि के टूटे ।

---

१ मधुमालती (स० डा० गुप्त), पृ० ६८ ।

बहुत अधर पयोधर टोवहिं, बहुतै पीं्हि उरहिं दग रोवहिं ।
बहुते हर्वहिं बहुत बिलखाहीं, बहुत माता पितहिं सकाहीं ।
बहुतहिं सोग बस मोकराए बहुतहिं कामर नन नसाए ।

सम सिंगार भग मा कोइ हुत कोइ बिसराइ ।
भोर भयें जिय मरमा घर गिनि पाइ न जाइ ।

पुनि आपुन मँह किहिंहि बिचारी, घर कहँ चलहु तजहु चित्रसारी ।
शिशु पर मंच जननि जिय धरहीं बहुत भरम मधुकर कर करहीं ।

पुनि उठि पौरि उघारिन्हि निसरी सब सखान ।
भरम न बदन उघारहिं सैनन्हि कहहिं त बात ।

बाहर चित्रसारि सम आई, भ्रम न गएउ छूटि फुनि भरमाई ।
करहिं न आपु माहिं पगराहीं, एक ठाव भईं सब जाहीं ।[1]

भ्रांतिमान अलंकार का जो सारी भरकम रूप प्रेमा एवं उसकी सहेलियों के आम्रवाटिका-दर्शन के समय कवि ने प्रस्तुत किया है वह उसकी इस अलंकार के प्रति अनुरक्ति का नहीं प्रत्युत इस तथ्य का द्योतक है कि उसमें इस अलंकार के व्यापक प्रयोग की क्षमता थी। कवि में यदि इसके प्रति कोई विशेष अनुराग होता तो वह इसका प्रयोग अनेक स्थलों पर करता। मधुमालती में उत्प्रेक्षा का जो प्रचुर प्रयोग उसने किया है उससे यह स्पष्ट विदित होता है कि उसकी वृत्ति उत्प्रेक्षा के प्रयोग में जितनी रमी है उतनी भ्रांतिमान के प्रयोग में नहीं। यही नहीं, भ्रांतिमान के प्रति उसके हृदय में वह अनुराग ही नहीं है जो उत्प्रेक्षा के प्रति है। भ्रांतिमान का प्रयोग उसने केवल चमत्कारोत्पादन एवं क्षमता प्रदर्शन के लिए किया है जबकि उत्प्रेक्षाओं का उनके प्रति अपनी अनुरक्ति तथा सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए। उनकी उत्प्रेक्षाओं को देखकर यह स्पष्ट विदित होता है कि उनके प्रयोग में कवि के हृदय का योग है। राजकुमारी मधुमालती की माँग के सौन्दर्य को देखकर उसे लगता है कि वह मानों खड्ग की धार हो। उसका वर्णन कवि इसलिए नहीं कर पाते क्योंकि उन्हें मानो इस बात का डर है कि वे उस खड्गधार

---

१ मधुमालती (सं० डा० माताप्रसाद गुप्त रा० सं०), पृ० १७–१७३ ।

को देखते ही दो टुकड़े हो जाएगे।[1] उसकी दोनों अनुपम कलाइयों को देखकर कवि को ऐसा लगता है मानों कामदेव रूपी कुदीगर ने उन्हें खराद पर चढ़ा कर बनाया हो। उसकी निर्मल हथेलियाँ ऐसी प्रतीत होती हैं मानों स्फटिक शिलाएं ईंगुर से लाल हों —

'औ अनूप दुइ बनी कलाई कनक कुंदेरे फेरि बनाई।
औ तिह पर दुइ सुभर हथोरी, फटिक शिला जनु ईंगुर पूरी।'[2]

प्रेमा के अश्रुपूरित नेत्रों से गिरते हुए अश्रु-कणों को देखकर कवि को ऐसा प्रतीत होता है मानो सीपियां फूटी हों और उनसे मोती ढल रहे हों।[3] झूले की डोरी पकड़े हुए पग मारती व्रजबालाओं को देखकर उसे ऐसा लगता है मानो उनकी कटि दो टुकड़ा को मिला कर जोड़ी गई हो। झूले पर झूलती हुई वे उसे ऐसी दिखाई पड़ती थी मानो विमान पर देवांगनाएं बैठी हों।[4] प्रेमा की दंत पंक्ति में जो अमूल्य जिह्वा निवास करती है उसे देखकर कवि को ऐसा लगता है कि वह मानो बोलते समय अमृत की खान खोल देती हो। उसकी कानों तक फैली हुई नेत्रों की कज्जल-रेखा ऐसी शोभा देती हुई प्रतीत हुई मानो उसके नेत्र कानों से विचार विमर्श करने आए हों।[5] घर के बाहर खड़ी हुई प्रेमा ऐसी लग रही थी मानो चन्द्रमा को चीर कर निकाली गई हो।[6] जब कु० ताराचन्द ने उसके हाथ की उंगली पकड़ कर दबाई तो वह इस प्रकार कांप उठी मानो मेघों के बीच में विद्युत (कम्पायमान हुई) हो।[7] मनोहर के मधुमालती को लेकर नगर में पहुँचने का समाचार पाकर राजा सूर्यभानु के जब मृदंग बजे तो इस प्रकार का शोर हुआ मानो आकाश में बादल गरज उठा हो—

भा अदार मिरदंग जो बाजा।
जानहु जलद गगन मँह गाजा।'[8]

---

१ मधुमालती सं० डा० माताप्रसाद गुप्त राज संस्करण पृ० ६३–६४
२ वही वही वही पृ० ७५।
३ वही वही, वही, पृ० १८४।
४ वही वही वही पृ० ४१३।
५ वही वही वही पृ० ४२५–४२६।
६ वही, वही, वही, पृ० ४३४।
७ वही, वही वही, पृ० ४३६।
८ वही, वही वही पृ० ४७८।

बहुत अधर पयोधर टोवहि, बहुते चीन्ह उर्राह दस रोवहि ।
बहुते हर्सहि बहुत बिलखाही, बहुत माता पितहि सकाही ।
बहुतहि सोग बस मारग भए बहुतहि कायर नर नसाए ।

सब सिगार मग मा कोइ हस काइ बिलखाइ ।
नीर भयें जिय भरमा घर गिनि पाइ न जाइ ।

पुनि आपुन मँह किहिहि बिचारी, घर कहँ चलहु तजहु चित्रसारी ।
सिधु घर मक जननि जिय धरहीं बहुत भरम मधुकर कर करहीं ।

पुनि उठि पौरि उघारिन्हि निहरीं सब सखाउ ।
भरम न बदन उघारहिं सैनहि कहहि ते बात ।

बाहर चित्र सारि सम आई भ्रम न गएउ छुटि फुनि भरमाई ।
हरहि न आपु माहि अगराहीं, एकै ठाव भई सब जाहीं ।[१]

भ्रांतिमान अलंकार का जो सारी भरकम रूप प्रभा एवं उसकी सहेलियों के आम्रवाटिका-दर्शन के समय कवि ने प्रस्तुत किया है वह उसकी इस अलंकार के प्रति अनुरक्ति का नहीं प्रत्युत इस तथ्य का द्योतक है कि उसमें इस अलंकार के व्यापक प्रयोग की क्षमता थी। कवि में यदि इसके प्रति कोई विशेष अनुराग होता तो वह इसका प्रयोग अनेक स्थलों पर करता। मधुमालती में उत्प्रेक्षा का जो प्रचुर प्रयोग उसने किया है उससे यह स्पष्ट विदित होता है कि उसकी वृत्ति उत्प्रेक्षा के प्रयोग में जितनी रमी है उतनी भ्रांतिमान के प्रयोग में नहीं। यही नहीं, भ्रांतिमान के प्रति उसके हृदय में वह अनुराग ही नहीं है जो उत्प्रेक्षा के प्रति है। भ्रांतिमान का प्रयोग उसने केवल चमत्कारोत्पादन एवं क्षमता प्रदर्शन के लिए किया है जबकि उत्प्रेक्षाओं का उनके प्रति अपनी अनुरक्ति तथा सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए। उनको उत्प्रेक्षाओं को देखकर यह स्पष्ट विदित होता है कि उनके प्रयोग में कवि के हृदय का योग है। राजकुमारी मधुमालती की माँग के सौन्दर्य को देखकर उसे लगता है कि वह मानों खड्ग की धार हो। उसका वर्णन कवि इसलिए नहीं कर पाते क्योंकि उन्हें मानो इस बात का डर है कि वे उस खड्गधार

---

१ मधुमालती (सं० डा० माताप्रसाद गुप्त रा० स०), पृ० १३२–१३३।

को देखते ही दो टुकड़े हो जाए गे ।[१] उसकी दोनों अनुपम कलाइयों को देखकर कवि को ऐसा लगता है मानों कामदेव रूपी कुंदीगर ने उन्हें खराद पर चढ़ा कर बनाया हो । उसकी निर्मल हथेलियाँ ऐसी प्रतीत होती हैं मानों स्फटिक शिलाएं ईंगुर से लाल हों —

'औ अनूप दुइ बनी कलाई, काम कुंदेरै फेरि बनाई ।
औ तिह पर दुइ सुभर हथोरी, फटिक सिला जनु ईंगुर पूरी ।[२]

प्रेमा के अश्रुपूरित नेत्रों से गिरते हुए अश्रु कणों को देखकर कवि को ऐसा प्रतीत होता है मानो सीपियाँ फूटी हों और उनसे मोती ढल रहे हों ।[३] झूले की डोरी पकड़े हुए पग मारती ब्रजबालाओं को देखकर उसे ऐसा लगता है मानो उनकी कटि दो टुकड़ों को मिला कर जोड़ी गई हो, झूले पर झूलती हुई वे ऐसी दिखाई पड़ती थी मानो विमान पर देवांगनाएं बैठी हों ।[४] प्रेमा की दंत पंक्ति में जो अमूल्य जिह्वा निवास करती है उसे देखकर कवि को ऐसा लगता है कि वह मानो बोलते समय अमृत की खान खोल देती हो । उसकी कानों तक फैली हुई नेत्रों की कज्जल-रेखा ऐसी शोभा देती हुई प्रतीत हुई मानो उसके नेत्र कानों से विचार विमर्श करने आए हों ।[५] घर के बाएं खड़ी हुई प्रेमा ऐसी लग रही थी मानो चन्द्रमा को चीर कर निकाली गई हो ।[६] जब कुं० ताराचन्द ने उसके हाथ की उँगली पकड़ कर दबाई तो वह इस प्रकार कांप उठी मानो मेघों के बीच में विद्युत् (कम्पायमान हुई) हो ।[७] मनोहर के मधुमालती को लेकर नगर में पहुँचने का समाचार पाकर राजा सूरजभानु के जब मृदंग बजे तो इस प्रकार का शोर हुआ मानो आकाश में बादल गज उठा हो—

मा अदोर मिरदंग जो बाजा ।
जानहु जलद गगन मँह गाजा ।'[८]

१ मधुमालती सं० डा० माताप्रसाद गुप्त राज संस्करण पृ० ६३-६४
२ वही वही वही पृ० ७७ ।
३ वही वही, वही, पृ० १८४ ।
४ वही वही वही पृ० ४१२ ।
५ वही, वही वही, पृ० ४२५-४२६ ।
६ वही, वही, वही, पृ० ४३४ ।
७ वही वही वही, पृ० ४३६ ।
८ वही वही वही पृ० ४७८ ।

बहुत अधर पयोधर टोवहिं, बहुतै चीन्हि उरहिं दस रोवहिं।
बहुत हसहिं बहुत बिलखाहीं, बहुत माता पितहिं सकाहीं।
बहुतहि सीस कस झाकराए बहुतहिं काजर नैन नसाए।

सब सिंगार मग मा कोइ हँस कोइ बिलखाइ।
भोर भयें जिय भरमा घर निमि धाइ न जाइ।

पुनि आपुस मह किहिहि बिचारी, घर कहँ चलहु तजहु चित्रसारी।
शिशु घर मक जननि जिय धरहीं, बहुत भरम मधुकर कर करहीं।

पुनि उठि पौरि उघारहि निकरीं सबै सकात।
भरम न कहन उघारहिं मैनहिं कहहिं तै बात।

बाहेर चित्रसारि सब आई, भ्रम न गएउ छूटि पुनि भरमाई।
करहिं न आपु माहि पतराहीं, एक ठाँव भईं सब जाहीं।[1]

भ्रान्तिमान अलंकार का जो भारी भरकम रूप प्रेमा एवं उसकी सहेलियों के आम्रवाटिका-दर्शन के समय कवि ने प्रस्तुत किया है वह उसकी इस अलंकार के प्रति अनुरक्ति का नहीं प्रत्युत इस तथ्य का द्योतक है कि उसमें इस अलंकार के व्यापक प्रयोग की क्षमता थी। कवि में यदि इसके प्रति कोई विशेष अनुराग होता तो वह इसका प्रयोग अनेक स्थलों पर करता। मधुमालती में उत्प्रेक्षा का जो प्रचुर प्रयोग उसने किया है उससे यह स्पष्ट विदित होता है कि उसकी वृत्ति उत्प्रेक्षा के प्रयोग में जितनी रमी है उतनी भ्रान्तिमान के प्रयोग में नहीं। यही नहीं, भ्रान्तिमान के प्रति उसके हृदय में वह अनुराग ही नहीं है जो उत्प्रेक्षा के प्रति है। भ्रान्तिमान का प्रयोग उसने केवल चमत्कारोत्पादन एवं क्षमता प्रदर्शन के लिए किया है जबकि उत्प्रेक्षाओं का उसके प्रति अपनी अनुरक्ति तथा सौन्दर्यानुभूति की अभिव्यक्ति के लिए। उनकी उत्प्रेक्षाओं को देखकर यह स्पष्ट विदित होता है कि उनके प्रयोग में कवि के हृदय का योग है। राजकुमारी मधुमालती की माँग के सौन्दर्य को देखकर उसे लगता है कि वह मानों खड्ग की धार हो। उसका वर्णन कवि रसनिय नहीं कर पाता क्योंकि उसे मानो इस बात का डर है कि वे उस खड्गधार

---

1 मधुमालती (सं० डा० माताप्रसाद गुप्त, रा० सं०), पृ० [illegible]–१७७।

को देखते ही दो टुकडे हो जाए गे।[1] उसकी दानों अनुपम कलाइयों को देखकर कवि को ऐसा लगता है मानों कामदेव रूपी कुन्दीगर ने उन्हें खराद पर चढा कर बनाया हो। उसकी निर्मल हथेलियाँ ऐसी प्रतीत होती हैं मानों स्फटिक शिलाए ईंगुर से लाल हों —

'श्री अनूप दुइ बनी कलाई, काम कुदेर फेरि बनाई।
श्री तिन्ह पर दुइ सुभर हथोरी, फटिक शिला जनु ईंगुर पूरी।'[2]

प्रेमा के अश्रुपूरित नेत्रों से गिरते हुए अश्रु कणों को देखकर कवि को ऐसा प्रतीत होता है मानो सीपिया फूटी हों और उनमे मोती ढल रहे हों।[3] झूले को डोरी पकडे हुए पग मारती ब्रजबालाओं को देखकर उसे ऐसा लगता है मानो उनकी कटि दो टुकडों को मिला कर जोडी गई हो झूले पर झूलती हुई व उसे ऐसी दिखाई पडती थी मानो विमान पर देवांगनाए बैठी हों।[4] प्रेमा की दत पक्ति मे जो अमूल्य जिह्वा निवास करती है उसे देखकर कवि को ऐसा लगता है कि वह मानो बोलते समय अमृत की खान खोल देती हो। उसकी कानों तक फैली हुई नेत्रों की कज्जल-रेखा ऐसी शोभा देती हुई प्रतीत हुई मानो उसके नेत्र कानों से विचार-विमर्श करने आए हो।[5] घर के द्वार खडी हुई प्रेमा ऐसी लग रही थी मानो चन्द्रमा को चीर कर निकाली गई हो।[6] जब कु० ताराचन्द ने उसके हाथ की उंगली पकड कर दबाई तो वह इस प्रकार काप उठी मानो मेघों के बीच मे विद्युत् (चमचमायमान हुई) हो।[7] मनोहर के मधुमालती को लेकर नगर में पहुँचने का समाचार पाकर राजा सूरजभानु के जब मृदग बजे तो इस प्रकार का शोर हुआ मानो आकाश में बादल गज उठा हो—

मा घदोर मिरदग जौ बाजा।
जानहु जलद गगन महँ गाजा।'[8]

---

१ मधुमालती स० डा० माता प्रसाद गुप्त राज सस्करण, पृ० ६३–६४
२ वही वही वही पृ० ७३।
३ वही वही, वही, पृ १८४।
४ वही वही वही पृ० ४१३।
५ वही, वही वही पृ० ४२५–४२६।
६ वही, वही, वही, पृ० ४३४।
७ वही, वही वही, पृ० ४३६।
८ वही वही वही पृ० ४७८।

भाषाओं की आड़ में अपनी जिह्वा बदल कर छिप गया और प्रेमा के दुख से दग्ध होकर कोयला जैसा काला हो गया—

> हारिल दुक्ख हारि भुइँ आवा। गादुर सइ रस प्राय टगावा।
> दुख केरे म बवरि डरानी। भइ निस्तेज रूप लपटानी।
> चीह्हि जो दुख केरें भो डरी। कबहू पुरुख कबहु इस्तिरी।
>
> बिबि भाषा क ओट लुकानेउ, जीभ फेरि भिंगराज।
> तबही भएउ दहि कोइना पेमां दुख के काज॥"[1]

अतिशय मूलक अलंकार. —

काव्य म प्रतिशयमूलक अलंकारों के प्रयोग का कारण स्पष्ट मनोवैज्ञानिक सत्य है। कवि भावुक प्राणी होता है। सौंदर्य अथवा कुरूपता से वह जितना प्रभावित होता है उतना अन्य प्राणी नही। उसके हृदय में सौंदर्य के प्रति राग और कुरूपता के प्रति जो विराग है उसे वह सामान्य मानव में भी उद्बुद्ध करना अपना ध्येय समझता है, किन्तु चूँकि वह जानता है कि सामान्य मानव इतना भावुक अथवा सहृदय नहीं कि उसके द्वारा साक्षात्कृत प्रत्येक प्रकार का सौंदर्य उसके हृदय को उल्लसित-तरलित कर सके। अत कवि अपने इष्ट साधन के लिए सामान्य जागतिक सौंदर्य का भी ऐसा अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन करता है कि पाठक आश्चर्य-स्तब्ध हो विभोर हो जाता है। इसके अतिरिक्त इस तथ्य का एक अन्य पक्ष भी है और वह यह कि साहित्यकार की सहृदयता तथा सौंदर्य एवं कुरूपता के प्रति उसके स्थायीभाव उसे सौन्दर्य मे इतना विभोर और कुरूपता से इतना क्षुब्ध कर देते हैं कि उसे अपनी इस अनुभूति की व्यंजना के बिना चैन ही नहीं आता। अत उस प्रभाव को अपनी भावुक वृत्ति के अनुकूल जब वह काव्य का जामा पहनाता है तो स्वभावत ही उसमे अतिशयता का समावेश हो जाता है। अस्तु।

अतिशयमूलक अलंकारों का क्षेत्र यद्यपि अत्यधिक व्यापक है—"भाव की उद्दीप्ति काव्य का मुख्य ध्येय होने के कारण अतिशय प्राय कथन की सभी प्रणालियों म प्रच्छन्न अथवा प्रकाश रूप में वर्तमान रहता है"[2]—तथापि सीमित एवं स्पष्ट रूप में अतिशयता प्राय अतिशयोक्ति, उदात्त अथवा अत्युक्ति आदि मे ही दीख

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त रा०स०) पृ० १८७।
२ डा० नगेन्द्र, देव और उनकी कविता प्र०स०, पृ० ११३।

लिए आ गया। दोनो ही वीर कुच रणस्थल मे जूझने वाल तथा युद्ध या मारामारी की बात सुनते ही युद्धभूमि मे आकर शोभित होने वाले हैं। उचित अनुचित सभी प्रकार से प्रहार करना उनका स्वभाव है। वे वीर कुच रणोद्यत होकर सदव सम्मुख रहते हैं, पीछे हटना न होंने सीखा ही नही –

"अनियारे तीखे अनियाई। दिस्टि साथ उर जाहि समाई।
सोभित दिए स्याम सिर बाने। महाबीर त्रिभुवन जग जाने।
दुवौ सीव पर चाहहिं लरा। हार आइ तब अतरु परा।
दुवौ बीर कुच जूह जुझारा। सोमहिं मानि सुनहिं रन मारा।
अैने बैने अस तिनक सुभाऊ। सतत सौंह न पाछें काऊ।"[1]

इसी प्रकार कवि उप नायिका प्रमा के कठोर, भव्य एव आकर्षक उरोजो पर सिर पर श्याम छत्र धारण करने वाले प्राण हता वीरों का आरोप करके जो चित्र प्रस्तुत करता है, उसमे उसकी रसिकता के साथ ही मौलिकता भी द्रष्टव्य है—

"बिबि कुच स्याम छत्र सिर दीते। गडे आइ नर्नहि अनचीत।
लरते दुवौ बीर जिन्ह हरिया। जौ न हार होत बिच धरहरिया।"[2]

अप्रस्तुत वैधानिक सौन्दर्य :–

आलकारिक एव अप्रस्तुत वधानिक सौन्दय यद्यपि एक प्रकार स अ यो या श्रित है—आलकारिक सौन्दय मे अप्रस्तुत वधानिक सौन्दय अन्तर्भावित रहता है और अप्रस्तुत वधानिक मे आलकारिक—तथापि दोनों की पृथक सत्ता एव स्वरूप का भी निषेध नही किया जा सकता। काव्य मे अप्रस्तुत विधान का अपना विशिष्ट स्थान है। अभिव्यक्तिगत सौन्दय बहुत कुछ अप्रस्तुत वधानिक सौन्दय पर निभर है। आलोचक प्रवर डा० नरेन्द्र का यह कथन अप्रस्तुत वधानिक सौन्दय क महत्त्व का ही अभिव्यजक है— अभिव्यक्ति का रमणीय एव सबल बनान का सबसे सहज तथा उपयोगी साधन है अप्रस्तुत विधान अर्थात् प्रस्तुत की श्रीवृद्धि क लिए अप्रस्तुत का उपयोग। यह अप्रस्तुत विधान प्रधानत साम्य पर आधृत रहता है और यह साम्य मुख्यतया तीन प्रकार का होता है, रूपसाम्य (सादृश्य) धमसाम्य (साधर्म्य) और प्रभाव-साम्य।'[3] अस्तु।

---

१ मधुमालती, सपादक डा० गुप्त रा० स० पृ० ७६।
२ वही वही वही पृ० ४२७।
३ डा० नगेन्द्र, देव और उनकी कविता पृ० १८२।

मंझन के अप्रस्तुत यद्यपि बहुत कुछ परम्परा की देन हैं तथापि उनका प्रयोग-गत औचित्य एवं विषयानुकूल वैविध्य उनकी सशक्त कल्पना शक्ति एवं उत्कृष्ट काव्य प्रतिभा का परिचायक है। उन्होंने यदि एक ओर मूर्त विषय की सम्यक् व्यंजना के लिए अमूर्त उपमानों का प्रयोग किया है तो दूसरी ओर अमूर्त विषयों के लिए मूर्त उपमानों का। उनकी मधुमालती में यदि एक ओर मूर्त उपमेय के मूर्त उपमान द्रष्टव्य हैं तो दूसरी ओर अमूर्त के अमूर्त।

(ख) मूर्त उपमेय के अमूर्त उपमान —

काव्य का लक्ष्य पाठकों के समक्ष मार्मिक दृश्य प्रस्तुत करके उनकी रागात्मिका वृत्ति को जाग्रत करना है, अतः कवि समुदाय प्रायः मूर्त अमूर्त सभी प्रकार के विषयों को प्रत्यक्षायमान करने के लिए मूर्त लोक प्रसिद्ध एवं प्रभावोत्पादक उपमानों की योजना करता है। किन्तु जब मूर्त उपमानों की योजना के लिए अमूर्त उपमान अधिक प्रभावोत्पादक प्रतीत होते हैं तो कवि अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए अमूर्त उपमानों का भी समुचित प्रयोग करता है। मंझन भी इसके अपवाद नहीं। आवश्यकतानुसार उन्होंने उनका मार्मिक प्रयोग किया है। अधोलिखित पंक्तियों में नायिका मधुमालती के अंग मूर्त कचों का अमूर्त उपमान दुख द्रष्टव्य है —

'कच न होहिं बिरही दुख मारा। भएउ आइ मधु सीस सिगारा।'[1]

(ग) अमूर्त उपमेय के मूर्त उपमान —

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है काव्य का उद्देश्य अमूर्त अगोचर विषय वस्तु को मूर्त-गोचर रूप प्रदान करके पाठक के मन-चक्षुओं के समक्ष बिम्ब प्रस्तुत करना है। इसके अभाव में कवि का अभीष्ट प्रायः सिद्ध नहीं होता। यही कारण है कि कवि अमूर्त वर्ण्य के मूर्त-गोचर उपमान जितनी प्रचुरता में प्रयुक्त करता है अमूर्त नहीं। मंझन ने भी मूर्त गोचर उपमानों का प्रयोग जितनी प्रचुरता से किया है अमूर्त अगोचर का नहीं। मधुमालती में उन्होंने जहाँ अमूर्त ममत्व पर मूर्त अग्नि का आरोप किया है, वहाँ अमूर्त प्रीति पर मूर्त पर्वत का और कहीं अमूर्त दुख पर

---

१ मधुमालती (सं० डा० गुप्त राम), पृ० ६५।

२ वही पृ० ६८।

३ वही, पृ० ८।

राम राम से आँसू गिराने वाली मूत तरत[1] का, कहीं अमूत प्रेम पर समुद्र[2] तथा वाटिका[3] का कहीं अमूत सुख पर मूत सूय का और कहीं अमूत दुःख पर मूत रजनी, जुए के फड़ तथा राहु[4] और स्यादय अथवा सुख-सूर्योदय के समय पर चातक के सिर पर बरसने वाले स्वाति बिंदुओं का —

'सुख कर सूय अस्त भा वारा । तुम्ह दुख रैनि न भा भिनुसारा ।
मकु त आजु बीती दुख राती । क चातिग सिर बरिस सेवाती ।
तारें दुवझ जुआ फर बारी । कौन सो खिल जों न मैं हारी ।'[5]

इसी प्रकार कभी कवि अमूत वचनों की मूत अमूत स[6], अमूत प्राणों की मूत पत्थर स और अमूत प्रेम की मूत नारियल से[7] तुलना करता है, कभी अमूत दुःख पर ग्रीष्म के कराल सूय और अमूत सुख पर मूत मयूर का आरोप करता है[8] और कभी अमूत मान मर्यादा की रक्षा क लिए दिये जाने वाले उपदेश की मार्मिक व्यंजना के लिए विभिन्न मूत उपमानों का योग लेता है —

"कहौं कुवर मैं तोहि सति भाऊ । पानिप उतरि चढ़ै नहिं काऊ ।
पानी तात करि जो रे जुडाइय । पहिल सवाद न तहि मह पाइय ।
सूख फूल क बासु न जाई । औ न रूप विछु तहि क नसाई ।
प न पहिल अस गारो होई । औ आदर सउ लेइ न काइ ।
तस तिरिया जो पानिप खस । सो निजु आदि अन्त कहूँ नस ।"[9]

(ग) मूर्त वर्ण्य के मूर्त उपमान :—

मूत वर य की मार्मिक व्यंजना भी प्राय मूत उपमानों की अपेक्षा रखती है । अत स्थिति प्रज्ञ कुशल कवि इस विषय मे किसी प्रकार का प्रमाद नहीं करते । मझन

१ मधुमालती (सं० डा० गुप्त, रा०स०), पृ० १८५ ।
२. वही पृ० १८४ ।
३. वही, पृ० ७७२ ।
४ वही, पृ० ३३६ ।
५ वही, पृ० २७२ ।
६ वही, पृ० २७१ ।
७ वही, पृ० ३७५ ।
८ वही, पृ० ३४१ ।
९ वही, पृ० २८४ ।

ने भी यथावश्यकतानुसार मूर्त वर्ण्य के मूर्त उपमानों का प्रयोग किया है। उन्होंने वहाँ नखों पर चन्द्र[1] और अधरों पर मोतियों से बमन आदि जातियों, जल तथा सरिता[2] का आरोप किया है, वहीं तुरंग से पागल नगर के सुखी होने की उपमा बसन्त में नव ऋतु के आगमन से मुकुलित हो उठने वाले वन से दी है—

'घर घर पुर घाल चाह जनाई। गइ जो हुति मधुमालति पाइ।
हरसन्त सब नगर उछाहा। घर आपन अहवां नहि भाहा।
नगर जो रहा समं तुग बौरा। जस बसन्त भो रितु बन मौरा।'[3]

वहीं प्रेमिका के सम्मिलन की सम्भावना के परिणाम से प्रफुल्ल प्रेमी के रूप भाव की व्यंजना के लिए प्राणों के स्पन्दन से परिपूर्ण हो उठने वाले मृत शरीर, जल पा जाने वाले तृषातुर प्राणी, रात्रि के अवसान से सुखी चकवाकी, मालती की रसमयी सुगन्ध प्राप्त कर लेने वाले भ्रमर सूर्य का प्रकाश पा लेने वाले कमल, स्वाति की धारा पा लेने वाले चातक तथा चन्द्र प्रेम में अनुरक्त उत्फुल्ल कुमुदिनी आदि उपमानों का योग हुआ है —

'मधुमालति कर सुनत सदेसा। जानहु मुए जिउ फिर आवा।
कै जनु पाव पियास पानी। कै जनु चकइहि रैनि बिहानी।
कै जनु मधुमालति रस बासा। कै जनु अबुज सुर परगासा।
कै जनु पपिहा धार सेवाती। कै जनु कुमुदिनि ससि रंग राती।'[4]

(घ) अमूर्त उपमेय के अमूर्त उपमान :—

काव्य की प्रभविष्णुता कवि की चित्र विधान एवं बिम्ब निर्माण क्षमता में है। उसमें मूर्त अमूर्त सभी वस्तुओं के चित्रण के लिए प्रायः मूर्त उपमानों का योग किया जाता है। अमूर्त उपमानों द्वारा अमूर्त वर्ण्य का बिम्ब निर्माण सम्भव नहीं। यही कारण है कि कवि प्रायः ऐसी स्थिति में अमूर्त उपमानों का प्रयोग नहीं करते। मंझन भी इसके अपवाद नहीं। मधुमालती में इस प्रकार के उपमानों के प्रयोग प्रायः नहीं के बराबर हैं। फिर भी एक-दो स्थल द्रष्टव्य हैं —

१ मधुमालती, स० डा० गुप्त, रा स, पृ० १८५।
२ वही पृ० ३३५।
३ वही पृ० ३८२।
४ वही पृ० २८३।

'मुख वरसूप अस्त भा बारा । तुम्ह दुख रैनि न भा मिनुसारा ।
मकुत आजु बीति दुख राती । कै चातिग निर बरिस सेवाती ।"[१]

तथा

"सघ न साथ प्रम मद माता ।"[२]

कहने की आवश्यकता नही कि प्रथम उदाहरण मे प्रयुक्त उपमान 'रनि', तथा राती समय के द्योतक हैं, अत अमूत हैं। रात्रि का ज्ञान अ धकार एव च द्रिका से होता है, अत उसके मत होने का भ्रम हो सकता है। किंतु उसकी यह मूर्तिमत्ता वस्तुत अ धकार एव च द्रिका की विशेषता है। अत रात्रि को मूत मानना उचित नही। दूसरे उदाहरण में प्रयुक्त उपमान 'मद' अमूत नशे का वाचक है।

मौलिक तथा नव्य उपमान :—

कवि की महत्ता उसकी मौलिकता में है। काव्य मे अ य क्षेत्रों के समान ही उपमान-योजना के क्षेत्र में भी मौलिकता का पर्याप्त महत्त्व है। मझन के उपमान यद्यपि अ य प्राचीन कवियों के उपमानों की भाँति ही प्राय परम्पराभुक्त हैं तथापि उनमें यत्र-तत्र कवि की किंचित् मौलिकता भी दृष्टिगोचर होती है। मधुमालती के अधोंकित स्थल इस विषय में द्रष्टव्य हैं —

(क) 'बदन पसेउ बु द चहु पासा । कचपचियैं जनु चाँद गरासा ।
मिरगमद तिलक ताहि पर धरा । जानहु चाँद राहु बस परा ।"[३]

(ख) 'बाला बदन चढ रखवारी । मानहु राहु कीत दुइ फारी ।
कानहि चक्र नरायन, लहै दुहू दिसि जोति ।
अतर राहु गरासत, जौ न चक्र भौ होत ।"[४]

---

१ मधुमालती (स० डा० गुप्त, रा स,) पृ० २७३ ।
२ वही, पृ० ३०१ ।
३ वही पृ० ६७ ।
४ वही, पृ० ७६ ।

(ग) 'चरन बिसाल सीस प्रति बांह । नयन पत्र पत्र मह नांह ।
पारधि जनु मगनित जिउ हरे । पीठे धनुष सीस तर धरे । [1]

कल्पना-विधानिक सौन्दर्य —

कल्पना साहित्य की सबसे बड़ी सहचरी है । उसके अभाव में साहित्य की सृष्टि सम्भव नहीं । काव्य जगत् का समस्त वैभव उसका समस्त प्रान कल्पना जगत् का वैभव एवं प्रानन्द है उसके प्रभाव में उसका कोई अस्तित्व नहीं । इसलिए कहा है— 'साहित्य कल्पना का नाम है कल्पना प्रानन्ददायक होती है इसी नाते साहित्य भी प्रानन्द का स्वरूप माना जा सकता है ।'[2] कल्पना के बल पर साहित्यकार प्रतीत वर्तमान एवं भविष्य में विचरण करता है, कल्पना के बल पर उपन्यासकार वर्णित रामायण महाभारत एवं पुराणकाल की बातें हस्तामलकवत् रखकर सहृदय हृदय-संवाद कृतियां प्रस्तुत करता है ।[3] कल्पना के बल पर कवि किसी बात आनन्द बयानक में नूतन उद्भावनाएं करके उसे नव्य सरस रूप में प्रस्तुत करता है—उपमान, योजना, अलंकारविधान छन्द योजना शब्द चयन मानवीकरण प्रतीक विधान बिम्ब निर्माण विशेषण विपर्यय, मापागत परिष्कार ओज, प्रसाद तथा माधुर्यादि गुणों का नियोजन लोकोक्तियों तथा मुहावरों का समुचित प्रयोग शब्द शक्तियों का उपयोग मौलिक प्रसंगोद्भावना तथा नव्य प्रबन्ध कल्पना सभी कुछ काव्य की सहचरी कल्पना कामिनी की कृपा पर निर्भर है । कहना चाहें तो कह सकते हैं कि जिस प्रकार संसार की सृष्टि ब्रह्म की शक्ति माया, लक्ष्मी अथवा सीता के बिना सम्भव नहीं उसी प्रकार काव्य संसार की सृष्टि भी कवि पुरुष की प्रेयसी कल्पना रानी के बिना सम्भव नहीं । अस्तु ।

काव्य सौन्दर्य की सृष्टि है और इस सौन्दर्य की सृष्टिकर्त्री प्रमुख शक्ति कल्पना है । अतः यद्यपि कल्पना ही वस्तुतः कविता कामिनी के समस्त सौन्दर्य की जननी है तथापि सीमित ग्रंथ में हम प्रायः उसके द्वारा निर्मित विशिष्ट सौन्दर्य की ही चर्चा करते हैं । अतः प्रस्तुत प्रसंग में भी हम उसके कतिपय रूपों द्वारा निर्मित काव्य-सौन्दर्य का ही उल्लेख करेंगे ।

---

१ मधुमालती स० डा० गुप्त, रा स, पृ० ६८ ।

२ श्री माधवप्रसाद त्रिपाठी साहित्य का स्वरूप साहित्य संदेश, नवम्बर ६० पृ० २०१ ।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उपमान योजनागत सौंदर्य विधान में प्रयुक्त इन्द्रियों के आधार पर कल्पना वैधानिक सौंदर्य के अग्रांकित रूप हो सकते हैं —

(क) दृष्टि कल्पना वैधानिक सौंदर्य।
(ख) स्पर्श कल्पना वैधानिक सौंदर्य।
(ग) स्वाद कल्पना वैधानिक सौंदर्य।
(घ) घ्राण कल्पना वैधानिक सौंदर्य।
(ङ) श्रव्य कल्पना वैधानिक सौंदर्य।

(क) दृष्टि कल्पना वैधानिक सौन्दर्य :—

कविगण अधिकतर दृष्टि कल्पना के आधार पर दृश्य उपमानों की योजना करके चित्र विधान एवं बिम्ब निर्माण द्वारा काव्य की प्रभविष्णुता-वृद्धि करते हैं। अन्य प्रकार की कल्पनाओं का प्रयोग प्रायः विरल होता है। मंझन भी इसके अपवाद नहीं। मधुमालती में सबसे अधिक प्रयोग उन्होंने कल्पना के इसी रूप का किया है। इस विषय में उनके कतिपय प्रयोग द्रष्टव्य हैं —

(१) "साजे तुर्द जो लाखन्ह लहही। पौन वेगि अपुसें जनु चहहीं।"[१]
(२) "रही लाय गिय कुवरहि रानी। तपन मीन जस पावा पानी।"[२]
(३) "चपल बिसाल तीख अति बाँके। खजन पलक पख सेउ ढाँके।
पारधि जनु अगनित जिउ हरे। पौडे धनुक सीस तर धरे।[३]
(४) 'जबहीं बरुनि बरुनि सो मेरवै। जानहु छुरी छुरी सो टेवै।'[४]
(५) 'कीर ठोर औ खरग क धारा। तिलक फूल मैं बरनि न पारा।
उदयागिरि जो करौं तो नाहीं। ससि सूरज दुइ बाद कराहीं।
निकट न कोऊ सचरै पारा। निसि दिन जिय सो बाम अधारा।
केहि दै जोर पटतरौं नासा। ससि सूरज जेहि करहिं बतासा।[५]

---

१ मधुमालती (स० डा० गुप्त, रा० स०) पृ० ४७६।
२ वही पृ० ४८०।
३ वही पृ० ६८।
४ वही, पृ० ६६।
५ वही, पृ० ७०।

(ग) चपल विसाल लोच प्रति बार । मानह पलक पत मउ ढार ।
पारधि जनु मगनित जिउ हरे । पोढे धनुष सीस तर धरे । [1]

कल्पना-वैधानिक सौन्दर्य .—

कल्पना साहित्य की सबसे बड़ी सहचरी है । उसके अभाव में साहित्य की सृष्टि सभव नही । का य जगत् का समस्त वभव उसका समस्त ग्रान द कल्पना जगत् का वैभव एव ग्रान द है उसके ग्रभाव म उसका कोई ग्रस्तित्व नहीं । इसीलिए कहा है— 'साहित्य कल्पना का नाम है कल्पना ग्रान दायक होती है इसी नाते साहित्य भी ग्रान द का स्वरूप माना जा सकता है ।'[2] कल्पना के बल पर साहित्यकार ग्रतीत वतमान एव भविष्य में विचरण करता है, कल्पना के बल पर उप यासकार वदिक, रामायण, महाभारत एव पुराणकाल की बातें हस्तामलकवत् दर्शाकर सहृदय हृदय-सवद्य कृतियाँ प्रस्तुत करता है ।'[3] कल्पना के बल पर कवि किसी नाम मात्र कथानक म नूतन उद्भावनाए करके उस नव्य मनोरम रूप म प्रस्तुत करता है—उपमान, योजना, ग्रलकारविधान छद योजना शब्द चयन मानवीकरण प्रतीक विधान, बिम्ब निर्माण विशषण विपयय, भावागत परिष्करण ग्रोज, प्रसाद तथा माधुर्यादि गुणों का नियोजन लाकोक्तियो तथा मुहावरो का समुचित प्रयोग शब्द शक्तियो का उप योग मौलिक प्रसगोद्भावना तथा नव्य प्रब ध कल्पना सभी कुछ कवि की सहचरी कल्पना-कामिनी की कृपा पर निभर है । कहना चाहें तो कह सकते हैं कि जिस प्रकार ससार की सृष्टि ब्रह्मा की शक्ति राधा, लक्ष्मी ग्रथवा सीता के बिना सम्भव नहीं उसी प्रकार काव्य ससार की सृष्टि भी कवि पुरुष की प्रयसी कल्पना रानी के बिना सम्भव नही । ग्रस्तु ।

का य सौ दय की सृष्टि है ग्रौर इस सौन्दय की सृष्टिकर्त्री प्रमुख शक्ति कल्पना है । ग्रत यद्यपि कल्पना ही वस्तुत कविता कामिनी के समस्त सौ दर्य की जननी है तथापि सीमित ग्रथ म हम प्राय उसके द्वारा निर्मित विशिष्ट सौन्दय की ही चर्चा करते हैं । ग्रत प्रस्तुत प्रसग म भी हम उसके कतिपय रूपों द्वारा निर्मित काव्य-सौन्दय का ही उल्लेख करेंगे ।

---

१ मधुमालती स० डा० गुप्त, रा स, पृ० ६८ ।

२ श्री माधवप्रसाद त्रिपाठी साहित्य का स्वरूप साहित्य स देश नवम्बर ६०, पृ० २०१ ।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से उपमान योजनागत सौन्दय विधान में प्रयुक्त इन्द्रियों के आधार पर कल्पना वैधानिक सौन्दय के अग्राविभ्त रूप हो सकते हैं —

(क) दृष्टि कल्पना वैधानिक सौन्दय ।

(ख) स्पश कल्पना वैधानिक सौन्दय ।

(ग) स्वाद कल्पना वैधानिक सौन्दय ।

(घ) घ्राण कल्पना वैधानिक सौन्दय ।

(ङ) श्र य कल्पना वैधानिक सौन्दय ।

(क) दृष्टि कल्पना वैधानिक सौन्दर्य :—

कविगण अधिकतर दृष्टि कल्पना के आधार पर दृश्य उपमानों की योजना करके चित्र विधान एव बिम्ब निर्माण द्वारा काव्य की प्रभविष्णुता-वृद्धि करते हैं। अन्य प्रकार की कल्पनाओं का प्रयोग प्राय विरल होता है। मझन भी इसके अप वाद नही। मधुमालती में सबसे अधिक प्रयोग उन्होंने कल्पना के इसी रूप का किया है। इस विषय में उनके कतिपय प्रयोग द्रष्टव्य हैं —

(१) 'साजे तुर जो लासह लहहीं। पौन वेगि अपुसैं जनु चहही।"[१]

(२) "रही लाय गिय कुवरहि रानी। तपत मीन जस पावा पानी।'[२]

(३) 'चपल बिसाल तीख अति बाँके। खजन पलक पख सेउ ढाँके।
पारधि जनु अगनित जिउ हरे। पौडे धनुक सीस तर धरे।'[३]

(४) 'जबहीं बरुनि वरुनि सों मेरवै। जानहु छुरी छुरी सा टेरै।'[४]

(५) "कीर ठोर को सरग कै धारा। तिलक फूल मैं वरनि न पारा।
उदयागिरि जो करौं तो नाहीं। ससि सूरज दुइ बान्ह कराहीं।
निकट न कोऊ सचरै पारा। निसि दिन जियै सो वाम अधारा।
केहि दै जोर पटतरौं नासा। ससि सूरज जेहि करहिं बतासा।'[५]

---

१ मधुमालती (म० डा० गुप्त रा० स०), पृ० ४७६।
२ वही, पृ० ४८०।
३ वही पृ० ६८।
४ वही, पृ० ६६।
५ वही, पृ० ७०।

(६) 'मुकुर मोप दुइ सवन सोहाए। सरग नखत जनु बीरि जराए।

\+ \+ \+ \+

माना बदन पर रमझारी। मानुकि राहु कीत दुइ फारी।

कार्नाहू चक्र नरायन लहै दुहू निमि जाति।
नातर राहु गरासत जो न चक्र भौ होत।"[1]

(ख) स्पर्श कल्पना वैधानिक सौन्दर्य —

प्रयोग-बाहुल्य की दृष्टि से स्पर्श कल्पना का स्थान दृष्टि-कल्पना के उपरान्त आता है। अधिकांश कवि दृष्टि कल्पना के अनन्तर इसी कल्पना का सर्वाधिक प्रयोग करते हैं। प्रेम-मार्गी शाखा के कवियों के विषय में भी यही बात लागू होती है। मधुमालतीकार मंझन ने भी अपनी कृति में इसका यथास्थान प्रयोग किया है। किन्तु इस क्षेत्र में उनकी किसी मौलिक उद्भावना के दर्शन प्रायः कम होते हैं। वे कभी विरह पर अग्नि अथवा अग्नि-ज्वाल का आरोप करते हैं कभी चिनगारी का—

(१) 'विरह अगिनि महं कनक सोहागा। तौहितन आंच धूव नहिं लागा।
क्या भसम भइ मोल उडानी। कौन गुन तुम सिक्ख कहानी। [2]

(२) 'तुम फुनि कहहु दुख मो लागी। सहहु कठिन किमि विरह क आगी। [3]

(३) चिहुर सकलहु बाला निपर उत्थ कराइ।
लोयन जरे बियोग के दियहि सरूप अथाइ। [4]

(४) 'अचक विरह चिनगी उर परी। लाग मूर सति प्रापति जरी। [5]

---

१ मधुमलती (स० डा० गुप्त रा० स०) पृ० ७८–७६।
२ वही, पृ० १३६।
३ वही पृ० २७७।
४ वही पृ० २८०।
५ वही, पृ० १६३।

कभी कवि वियोग को अग्नि रूप में चित्रित करते हुए नायक के प्राणों पर पाषाण के आरोप का निषेध करता है —

विरह अगिनि जग दहेउ न जोना । तोइ बिरह मोहि दाहेउ तेता ।
अब न सहै पारौं दुख तोरा । तोर जस जिउ पाहन नहि मोरा ।
जउ जेउ विरह अगिनि परजार । समुँझि समुँझि जिउ तोहि समारै । '[1]

कभी मोह माया पर अग्नि का आरोप करता है और कभी काम पर—

(१) "सुना सखि हं मधुमालति बली । सुनतहि मोह अगिनि उर बली ।"[2]
(२) "मिलहु सखी तुम्ह मो गल लागी । उपजी मोह मया उर आगी ।

\+ \+ \+ \+

बहुत रोवहि पाँय परि, औ बहुते गिय लागि ।
कोई रोवै पुहुमि परि मया मोह क आगि । '[3]

तथा

' आपु देखि -यापै तन पीरा । जरै मदन क आगि सरीरा ।"[4]

कभी विरह पर पवन और बुद्धि पर दीपक का आरोप करते हुए इस तथ्य का उद्घाटन करता है कि बुद्धि विरह की प्रतिद्वंद्विता मे ठहर नही सकती क्योंकि विरह रूपी पवन बुद्धि रूपी दीपक को बुझा देता है —

"जो आवै सो कहै सोहाती । अधिकौ उठ भार मुनि छाती ।

\+ \+ \+ \+

बुधि कि विरह सेउँ सरवरि पाव । विरह पौन बुधि दिया बुझाव ।[5]

---

१ मधुमालती (स० डा० गुप्त राज स० १९६१) पृ० २७४ ।
२ वही पृ० ४५० ।
३ वही पृ० ४५३ ।
४ वही पृ० ३७ ।
५ वही पृ० १२६ ।

और कभी काम पर अग्नि का आरोप करके उसे शरीर के लिए ध्वंसकारी बताता है —

'आपु गैलि व्याप तन पीरा। जरै मदन क आगि सरीरा।'[1]

कभी उपनायिका प्रेमा के दुःख पर अग्नि ज्वाल और कुमार मनोहर के प्राणों पर घी का आरोप करते हुए कहता है कि प्रेमा के दुःख में कुमार का जी जल गया मानों जलती हुई अग्नि में घी पड़ गया हो —

'पेमा दुख कुँवर हिय जरा। जानहुँ जरत अगिनि घिउ परा।'[2]

और कभी यह घोषणा करता है कि उसके दुःख की ज्वाला में कुमार मनोहर का कलेजा औट घुन कर रक्त बन गया —

'बचन देखि हिय उठेउ मरोहू। कुँवर करेज अवटि भा लोहू।'[3]

कभी नायिका मधुमालती के नुकीले कुचों को कटकों के समान चुभने वाला बताते हुए कहता है कि कुमार मनोहर के नेत्रों में जो उसके नुकील (बाँके) कुच गड़ गये तो उसके लाख प्रयत्न करके निकालने से भी नहीं निकले, खटकते ही रहे —

'दुहुँ लोयन महँ बाला गडे जो कुच अनियार।
काढि रहउँ नहिं निसरहिं, खुरहिं बारहिं बार।'[4]

और कभी नायिका के चित्त को स्नेह से विरहित तथा मन, हृदय एवं प्राणों को पत्थर के समान कठोर बना कर उसमें ऊपर से कठोर किन्तु हृदय से रसीले नारियल के समान प्रेम करने का अनुरोध करता है —

'तोर जीउ पाथर सम बाला। पेम बिहून सतन कहि हाला।
चित धरि छाडु न होहु खारी। हिए कठिन मुख कुँअरि रसारी।

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त राज सं० १९६१), पृ० ३७५।

२ वही पृष्ठ १८३।

३ वही, पृष्ठ १८३।

४ वही, पृष्ठ १६१।

नरियर जसि प्रीति करु धारा । ऊपर करक्स हिए रसारा ।"[१]

(ग) आस्वाद्य कल्पना वैधानिक सौन्दर्य —

आस्वाद्य कल्पना का प्रयोग अन्य कवियों के समान ही मंझन ने भी प्राय कम किया है । अत इस प्रकार के स्थल मधुमालती में खोजने से ही मिलते हैं । फिर भी इस विषय में निम्नांकित उद्धरण द्रष्टव्य हैं —

(१) "अधर अमिअ रस भरे सोहाए । पेम बरें हुत रगत तिसाए ।

+ + + +

पटतर लाइ न जाहि बखाने । जनु ससि अमी गारि बिधि साने ।
अधर अमी रस भरे अपीऊ । कुँवर जान मोर डोलहिं जीऊ । [२]

(२) 'अति रसारि रसना मुख कामिनि अमी सुरस परवान ।
बदन चद महू रसना, अमी सुरा क जान ।"[३]

(३) "अति सुरग रस भरे अमोला । जुग सोभित मुख मद्धि कपोला ।'[४]

(घ) घ्राण कल्पना वैधानिक सौन्दर्य .—

घ्राण कल्पना का प्रचुर प्रयोग काव्य में प्राय वे ही कवि करते हैं जिनकी घ्राण शक्ति तीव्र होती है । अन्य कवि प्राय इसका कम प्रयोग करते हैं । मधुमालती में भी इस प्रकार के स्थल अत्यल्प हैं । फिर भी जहाँ कहीं भी कवि ने इस प्रकार की कल्पना का प्रयोग किया है वहाँ उसमें पर्याप्त सरसता एव मार्मिकता है —

कहेसि कौन दिन आजु सोहावा । जु हौं बास प्रीतम कर पावा ।
फूली मकुत प्रेम फुलवारी । जेहि सुबास पूरित महि सारी ।

---

१ मधुमालती (स० डा० गुप्त, राज स०, १९६१), पृष्ठ ३७५ ।

२ वही, पृष्ठ ७२ ।

३ वही, पृष्ठ ७५ ।

४ वही, पृष्ठ ७१

पौन बास कार्कार से भ्राएउ । जेहि र मोहि बिनु मन मताएउ ।"[१]

तथा

जग सुबास पूरित म जाहीं । किछु जानसि दहु कारन काहीं ।
क जनु म्रिगमद नाभि उघारी । कै मधुमालति चिहुर सिहारी ।
यह जो जगत मलयानिल बाऊ । अति सुबास जानसि केहि भाऊ ।
दिन एक कामिनि चिहुर सिहाए । ठाडे मिरितु निकट बनु भ्राए ।
तेहि (तेही) दिन हुत बहुत उन्हासा । पै अजहू नहिं पूजी भ्रासा ।

बिहुर पास मधुमालति जबसौं बहेउ बतास ।
तेहि दिन सौं निसि बासर सतत बहा उदास ।।'[२]

अथवा

'प्रीति तुम्हारि मोहि जिय छाई । मृगमद पम सो जा न छपाई ।[३]

(च) अन्य कल्पना वैधानिक सौन्दर्य —

अन्य कल्पना वधानिक सौन्दर्य जिस प्रकार जीवन में अपेक्षाकृत कम दृष्टिगोचर होता है उसी प्रकार काव्य-जगत् में भी । मझन का काव्य भी इसका अपवाद नहीं । उसम भी प्राय इस प्रकार के कल्पना-जन्य सौन्दर्य के दर्शन कम होते हैं । सम्पूर्ण मधुमालती म खोजने से ही कतिपय स्थल उपलब्ध होंगे —

पूरब पमि बिछुरें जेहि दिन दुवौ मेराहि ।
मनहीं मनहि बपावरा मंदिल काइ कराहि ।। [४]

---

१ मधुमालती (स० डा० गुप्त राज म०) पृ० २७१ ।

२ वही, पृ० ६६ ।

३ वही पृ० १०२ ।

४ वही, पृ० २३७ ।

(पृथक किए गए पूव के दोनों प्रेमो जिस दिन मिलते हैं उस दिन उनके मन ही मन में जैसा बधावा होता है वैसा मादले (मृदङ्ग) क्या करेंगे ?)

तथा

"फुनि पिंजरा लाएसि उर धाई। देखि दुहिता गति रही न रोवाई।

+ + + +

दुख कराल तनु तरनि जो भागा। सुक्ख मजूर सिखर चढ़ि गाजा।[1]

(उसके शरीर में दु ख (के ग्रीष्म) का जो कराल सूय था, वह उसे छोड़कर भाग गया और सुख (की वर्षा) का (सूचक) मयूर (उसके शरीर रूपी वृक्ष के) शिखरों पर चढ़ कर गजन कर उठा।)

---

१ मधुमालती, डा० गुप्त, राज सस्करण, १६६१, पृ० ३४१।

चित्र वैधानिक सौन्दर्य

काव्य का प्रमुख उद्देश्य चित्र विधान द्वारा मानव मन को आकृष्ट करना है। उसकी प्रभविष्णुता का रहस्य कवि की चित्र निर्माण-क्षमता में है। अतः कवि की उत्कृष्टता की कसौटी उसके चित्रों की प्रचुरता सरसता सजीवता एवं मार्मिकता है। इसके अभाव में वह अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह नहीं कर सकता। यही कारण है कि काव्य में चित्र योजना का महत्त्व अपरिमेय है यही नहीं, काव्य चित्र-विधान का पर्याय है कदाचित् यह कहना भी अनुचित न होगा। आधुनिक हिन्दी साहित्य के कर्णधार स्वर्गीय श्री जयशंकर प्रसाद ने स्पष्ट कहा है —

"कवित्व वर्णमय चित्र है जो स्वर्गीय भावपूर्ण सङ्गीत गाया करता है।"[1]

कविता के दीर्घ जीवन के लिए उसका चित्रमय होना आवश्यक है।[2] उत्कृष्ट कवि को उसके लिए कोई विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता।[3] उसकी अभिव्यक्ति

---

१ स्कन्दगुप्त (प्रथम अङ्क) पृष्ठ १६।

२ साहित्य को जीवित रखने के लिए उसमें अनेक भाव अनेक चित्रों का रहना आवश्यक है और जबकि अपने अपने स्थान पर सभी भाव आनन्दप्रद हैं और जीवन पैदा करने वाले हैं।
— निराला चयन पृष्ठ ६३।

३ कवियों का हृदय स्वभावतः बड़ा कोमल होता है। वे दूसरों के साथ सहानुभूति करते-करते इतने कोमल हो जाते हैं कि किसी भी चित्र की छाया उनके हृदय में ज्यों की त्यों पड़ जाती है, उन्हें इसके लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। यह उनका स्वाभाविक धर्म ही बन जाता है।
—वही रवीन्द्र-कविता-कानन, पृष्ठ ५२।

अनायास ही चित्रों का माध्यम खोज लेती है, विभिन्न चित्रों का निर्माण करती चलती है। कविता को सुग्राह्य बनाने में सङ्गीत-कला का योग जिस प्रकार अनिवार्य है उसी प्रकार उसकी प्रषणीयता एवं प्रसाद गुण सम्पन्नता के लिए उसमें चित्रात्मकता का होना अपरिहार्य है। काव्य में चित्र योजना की इसी अनिवार्यता को लक्ष्य करके श्री रामधारीसिंह 'दिनकर' लिखते हैं —

चित्र कविता का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण गुण है प्रत्युत कहना चाहिए कि यह कविता का एकमात्र शाश्वत गुण है जो उससे कभी भी नहीं छूटता।[1]

इसी प्रकार कवयित्री श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान की अधोंकित पंक्तियाँ भी इसी तथ्य की अभिव्यंजक हैं —

कविता का जीवन जितना भाव में उतना भाषा में भी रहता है। यदि भाषा जटिल हो जाए तो कविता का आधा आनन्द जाता रहता है। इसीलिए साहित्य मर्मज्ञों ने कविता में प्रसाद गुण का होना अत्यन्त आवश्यक बतलाया है। थोड़े से शब्दों में किसी भाव या वस्तु का चित्र खींच देना ही प्रसाद गुण है।"[2]

कविता में चित्र योजना के इसी अपरिमेय महत्त्व के कारण उसकी भाषा का भी चित्रात्मक होना आवश्यक माना गया है —

"प्रकृत कवि की भाषा चित्रमय होती है। यदि भाषा चित्रमय न हो तो भाव प्रकाश प्राय दुरूह हो जाता है। संगीत और चित्र से भाषा भाव ग्राह्य बन जाते हैं। इससे मन्द भी पढ़ते ही रस तृप्त होते हैं, जैसे भाषा के चित्रकार भावुक कवि।'[3]

मधुमालतीकार मंझन काव्य में चित्रात्मकता के इस महत्त्व से परिचित थे। थोड़े से शब्दों में किसी भाव या वस्तु का चित्र खींच देना उनकी सहज विशेषता है। उनकी कविता चित्रात्मकता, संगीतात्मकता एवं प्रसादात्मकता की वह त्रिवेणी है जिसमें अवगाहन करके पाठक-श्रोता का हृदय निष्कलुष एवं प्रसन्न-पुलकित हो उठता है। उनके काव्य चित्रों में यदि एक ओर प्रचुरता, सरसता, प्राणवत्ता एवं

---

१ दिनकर, चक्रवाल भूमिका, पृ० ७२।

२ सुधा, मई १९३३ ई०, पृ० ३२९।

३ रामदहिन मिश्र, काव्य में अप्रस्तुत योजना, पृष्ठ ४६।

मार्मिकता है तो दूसरी ओर पूर्णता एवं विविधता, यदि एक ओर उनमें पूर्ण चित्र हैं तो दूसरी ओर खण्ड चित्र, यदि एक ओर उनमें आलंकारिक चित्र हैं तो दूसरी ओर निरलंकृत एवं सहज, यदि एक ओर उनमें मानव जगत् के चित्र हैं तो दूसरी ओर प्रकृति अथवा वस्तु जगत् के, यदि एक ओर उनमें रूप एवं भाव चित्र हैं तो दूसरी ओर गुण एवं व्यापार चित्र। उनका विस्तृत विवेचन यद्यपि यहाँ स्थानाभाव के कारण सम्भव नहीं तथापि उनका संक्षिप्त स्पष्टीकरण आवश्यक है।

स्थूल रूप से मधुमालती के काव्य चित्रों का अध्ययन निम्नांकित आधारों पर किया जा सकता है —

(क) पूर्ण एवं खण्ड चित्रों के आधार पर।

(ख) अलंकृत एवं निरलंकृत चित्रों के आधार पर।

(ग) मानव प्रकृति वस्तु एवं मिश्र चित्रों के आधार पर।

(घ) रूप, भाव गुण एवं व्यापार चित्रों के आधार पर।

स्पष्टता एवं सुविधार्थ अब हम इन सभी चित्रों पर पृथक् पृथक् रूप से विचार करेंगे।

(क) पूर्ण एवं खण्ड चित्र —

पूर्ण चित्रों से आशय मानव प्रकृति वस्तु, भाव, रूप, गुण व्यापार आदि के पूर्ण चित्रों से और खण्ड चित्रों से आशय उनके खण्ड रूपों के चित्रों से है। कवि जब नारी, पुरुष शिशु पशु पक्षी अथवा अन्य प्राणियों के पूर्ण शरीर के चित्र प्रस्तुत करता है अथवा प्रकृति अथवा वस्तु-जगत् के किसी पदार्थ अथवा वस्तु विशेष की पूर्ण मूर्ति की प्रतिष्ठा करता है तो हम उन्हें पूर्ण चित्र की संज्ञा से अभिहित करते हैं, किन्तु जब वह उनके किसी विशिष्ट शरीरावयव अथवा खण्ड रूप का चित्रांकन करता है तो हम उसे खण्ड चित्र की आख्या प्रदान करते हैं। मधुमालतीकार 'मंझन' के काव्य में इन दोनों ही वर्गों के चित्र प्रचुरता से उपलब्ध हैं और उनमें पर्याप्त सरसता एवं मार्मिकता है। उदाहरणार्थ निम्नांकित काव्य चित्र प्रस्तुत हैं —

पूर्ण चित्र —

(1) जागि उठी पुनि राजदुलारी। चकित चहूँ दिसि हेर सो नारी।

मिरिगि सजग भइ दहु दिसि हेरइ । चीन्हि कै सीह सेंदूर अहेरइ ।[1]

(ii) देवस चाँद मकु इहाँ रहाई । रैनि सरग गए उद कराई ।
कै यह सरग अपछरा बारी । इन्द्र सराप धरनि मह डारी ।
क यह सरग बिरसपति नाऊँ । इहाँ आइ दिनकर बिसराऊँ ।
क यह है डाइनि बन केरी । माया रूप धरेसि है फेरी ।[2]

(iii) पुनि माँत सब सखीं बोलाई । फूलनि सेज रचि सबै बनाई ।
कनक बदन पुनि चन्दन सारी । सिरजी जनु ससि अम्म्रित गारी ।
चतुरि सर्भ औ सहज दुलारी । कनक औटि जनु साँच ढारी ।
कबहु भाउ जोबन कर देखा । कबहु सहज लरिकाई पेखा ।
जोबन सो कछु जानि न जाई । दुहु दुइ मँह का करि अधिकाई ।[3]

(iv) जननि कोर मधुमालति बसी । जरति माँहि मधुनायक जसी ।[4]

(v) महता जाइ राइ पह कहै । कुँवर कुशल सेउ आवत अहै ।
सुनि यह बात राज औ रानी । तपत मीन जस पावा पानी ।[5]

(vi) सुरजभान सुत दरसन आसा । जस पानी असरव पियासा ।[6]

खण्ड चित्र :—

(i) हरिय पत्त पग अरुन सुठोरा । नैन फार जनु मानिक जोरा ।[7]

---

१ मधुमालती (सम्पादक—डा० गुप्त), राज संस्करण, पृ० ८३ ।
२ वही, वही, पृष्ठ १५६ ।
३ वही, वही, पृष्ठ १६७ ।
४ वही, वही, पृष्ठ ३७७ ।
५ वही वही पृष्ठ ४७७ ।
६ वही, वही पृष्ठ ४७८ ।
७ वही वही, पृष्ठ ३१० ।

(ii) माग उन्नि मार्ग मनि धरा। जानहु चां‍‍ सपूरन करा।[1]

(iii) सूर सिरिन सिर मांग सोहाई। सम जग जीति गगन पर धाई।
माँग न ध्राहि गगन प हाटा। रबि ससि उ‍ अस्त कै बाटा।
क जनु ध्रमिय न‍ी बहि धाई। च‍न चां‍ नहिं अमिय सिराई।

+ + +

स्याम रनि जस दामिनि, स्याम जलद महु ‍ीम।
सरग हुतें जनु छि‍‍री धाइ परी त्रिय सीस।[2]

(iv) मयङ मयर सरग जहि राजा। सो लिलाट कामिनि पहु छाजा।
सहस कला ‍‍गिय उजियारा। जग ऊपर जगमगत लिलारा।

तर मयक ऊपर तिसु पाटा बनी ग्रहै कमि रीति।
जानहु ससि श्री निसि सउ भई सुरति बिपरीति।[3]

उक्त चित्रा क ग्र्तिरिक्त मधुमालती म इस ग्राधार पर एक तीसर वग के चित्रों को भी जि‍हें पूरण ग्रथवा खण्ड में स किसी क भी ग्र्तगत रखना सम्भव नहीं, खोज की जा सकती है। ‍नमें एसे चित्र हैं जो पूरा एव खण्ड दोना ही वर्गों के हैं। ग्रत ‍‍हें पूरण-खण्ड मिश्र की सज्ञा दी जा सकती है।

उदाहरणाय निम्नाकित का‍य चित्र प्रस्तुत हैं —

(i) कठिन बिरह दुख गा न समारी। मौगउ खप्पर ‍‍‍ ग्रधारी।
चत्र माथ मुख भसम चढ़ावा। स्रवन फटिक मुद्रा पहिरावा।
उ‍‍पानी कधि क कर सौंटी। गुन किंगरी बरागो ठाटी।

कथा मखलि चिरकु‍‍ जटा परी सिर केस।
बज्र कछोटा बाँधि क किय गारख का बस।[4]

---

१ मधुमालती (स‍‍पा‍क डा० गुप्त), राज सस्करण पृ‍‍ १८१।
२ वही वही, पृष्ठ ६४।
३ वही, वही पृष्ठ ६७।
४ वही वही, पृ० १७८।

(ii) चहुँ दिसि मंदिल पटार मढ़ावा । हेम खम्भ सभ नगन जड़ावा ।
मंदिल सरग ससि बदन (सो) नारी । तारे रतन धरे जनु तारी ।
कचपचियाँ मइ चरिह टोला । पालक जानु अकास खटोला ।[1]

(iii) सोवति सनि बरनि को कहा । कँवल भँवर जनु सम्पुट गहा ।
भ्रम्मित चित दुइ जानि न गए । बिधि लायन दहु कार्के भए ।
बदन लिलाट सराहि न जानौं । खिन पूनिव खिन दुइजि बखानौं ।
सारग सारँग हिय प्रतिपाला । ससि क प्रीति मिरिग रथ पाला ।
तिल कपोल पर बनेउ अपारा । एक बूँद भा सहस सिंगारा ।

मो सत साजेँ बाला निमरम सेज सुख सोव ।
दुइ चखु कुँवर चकोर जेउँ चंद्रबदनि मुख जोव ।।[2]

(ए) आलंकारिक (अलकृत) एवं निरलंकृत चित्र :—

अलंकृत एवं निरलंकृत काव्य चित्रों की दृष्टि से भी मधुमालतीकार की प्रतिभा द्रष्टव्य है। मंझन जिस प्रकार अपने अलंकृत काव्य चित्रों की सौंदर्य सृष्टि में सक्षम हैं उसी प्रकार निरलंकृत काव्य चित्रों के क्षेत्र में भी। किन्तु उनकी वृत्ति आलंकारिक चित्रों के सौंदर्य विधान में जितनी रमी है, निरलंकृत चित्रों की सौंदर्य सृष्टि में उतनी नहीं। उनके काव्य के अधिकांश चित्र अलंकृत हैं। फिर भी उनकी मधुमालती में निरलंकृत चित्र भी पर्याप्त हैं और इस दृष्टि से भी उनकी क्षमता सराहनीय है। उदाहरणार्थ अग्रांकित सौन्दर्य चित्र लिए जा सकते हैं —

आलंकारिक अथवा अलंकृत काव्य-चित्र :—

(i) येहि संताप दुख अब लगि मैं जग जियत रहाबि ।
जिमि सरजल बिनु कदव सरघ फाटि मरि जाबि ।।[3]

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त), राज संस्करण, पृ० ६१।
२ वही, वही, पृ० १५५।
३ वही, वही, पृ० १७८।

(ii) आइ पूष रितु बरसहि नाहीं । धनि जोबन दुपहरि कै छाहीं ।
जोबन सुख जात दौराए । बहुरि न फिरि आइहि पछिताए ।

भाग फिरे जो है सखी तौ सुख फेरा नाहिं ।
नातर का माहि परिहरत एहि सहरत भर जोबन माहिं ।।[1]

(iii) सखि सुख साजन साथ गा दुख रहा मोहि पासु ।
तेहि पर कातो बिरह मा खिन हाडहि बिन मासु ।।[2]

(iv) यह सुनि कँवल कली बिगसानी । खुल अधर दुइ अम्रित सानी ।
लाज न पारौं कहि सखि पागें । जिय न नाज रहै पग कै जागें ।[3]

निरलकृत काव्य चित्र —

(i) कठिन बिरह दुख गा न सँभारी । सींगउ खप्पर दण्ड अधारा ।
चक्र माथ सुख भसम चढ़ावा । स्रवन फटिक मुद्रा पहिरावा ।
उन्मानी कमि कँ कर सांटी । गुन किंगरी बरागी टाटी ।

कथा मेखलि चिरकुटा जटा धरी सिर पंथ ।
बज्र कछौटा बाँधि कै किय गोरख का पंथ ।।[4]

(ii) दूसर मास सखी सुनु बाता । पिउ बिछुरन माहि बिरह सघाता ।
किमि निरबाहौं दुसह सियाला । पिउ न सेज मैं जोबन बाला ।
बिरह डारि पर बसी बाला । रैंनि गर्इ सिर बरिस पाला ।
किमि करि दुसह माघ मधु काढ़ैं । बिरह अगम बढ़ तिल तिल बाढ़ै ।[5]

(iii) दहु दिसि फिरि देख कोउ नाहीं । रहा एक बट मँग परछाहीं ।
जहि बन कबहुँ न मानुस आवा । तेहि बन बिधि लै कुँवर पठावा ।

---

१ मधुमालती (स० डा० गुप्त), राज स०, पृ० ३८५ ।
२ वही वही, पृ० ३९६ ।
३ वही वही पृ० ३७६ ।
४ वही, वही पृ० १४५ ।
५ वही वही, पृ० १५६ ।

पुनि उठि कुँवर चला वन माहीं । जहा पखि पर मारत नाही ।
अगम पथ दुख साथ न कोई । खिन धावै खिन बस रोई ।[1]

मानव, प्रकृति, वस्तु एव मिश्र चित्र .—

मानव प्रकृति, वस्तु एव मिश्र चित्रो की दृष्टि से भी मधुमालतीकार का प्रयास प्रशसनीय है । उसके चित्रों मे जहाँ एक ओर मानव-जगत् के स्पृहणीय चित्र हैं वहाँ दूसरी ओर प्रकृति जगत् के, जहाँ एक ओर उनमे वस्तु जगत् के चित्र हैं वहाँ दूसरी ओर मानव प्रकृति एव वस्तु जगत् के मिश्र चित्र । अत मझन के चित्र बधानिक सौदय के सम्यक दिग्दशन के लिए इन चित्रों का अध्ययन भी आवश्यक है ।

मानव-चित्र –

मधुमालती मानव-चित्रो का आगार है । प्रेम गाथा-काव्य परम्परानुसार मझन ने भी नायिका मधुमालती को परमात्मा का और नायक मनोहर को जीवात्मा का प्रतीक मानकर जीवात्मा को परमात्मा की ओर उन्मुख करके उसके आध्यात्मिक प्रेम का चित्रण किया है और उसकी प्राप्ति में ही उसकी साधना का चरम साफल्य माना है । अत स्वभावत ही मधुमालती का रूप लावण्य लौकिक जगत् की सीमा का अतिक्रमण करता हुआ प्रतीत होता है । किन्तु मझन ने नायक मनोहर तथा कुमार ताराचद के रूप सौदय की भी उपेक्षा नही की । उनके रूपोत्कर्ष का भी उन्होंने पर्याप्त चित्रण किया है । यही कारण है कि मधुमालती में मानव जगत् के—नारी-पुरुष के—अनेक चित्र भरे पडे हैं । नारी चित्रों का तो वह एक प्रकार से भाण्डार ही है । उसमें नारी जगत् का आन्तरिक एव बाह्य रूपोत्कर्ष मझन की अपनी विशेषता है । उनके नारी रूप भावादि की व्यजना चित्रो के माध्यम से ही हुई है । चित्र विरहित अभिव्यक्ति उन्हें अभीष्ट नही । आन्तरिक एव बाह्य सौदय प्रेमी मझन को कुरूपता से घृणा है, अत उनकी मधुमालती मे न तो पात्रों अथवा प्रकृति के बाह्य वैरूप्यको स्थ न मिला है और न आन्तरिक वरूप्य अथवा कुरूपता को । उनकी सृष्टि सौन्दय के ही बहु विध चित्रों का आलय है, वरूप्य के लिए उसमे प्राय स्थान नही ।

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त), राज म०, पृ० १५१ ।

सरते दुवौ ओर जिउ हरिया । जौ न हार होत बिच घरहरिया ।

पून कलस अम्रित रस पूरे बिबि कुच कठिन कठोर ।
जोबन दाला उमगत देखेउ बिपरित कनक कचोर ।[1]

(v) पेमा चली सखिन संग कैसी । साठि सखी साठिउ एक बैसी ।
कोइ सुवासन कोइ चोडोली । काइ सआँ कोइ जावन भोली ।
जोबन मोनत करहिं रस केली । उठत कोंप उर जेउ बन बेली ।
कँवल बदनि नव तन सम बारी । नैन कटाछ हनति हतियारी ।[2]

(vi) देखेसि सज नवल रग राती । तेहि पर कुँवरि सूइ मद माती ।
छिरकी सज सुगंध सुबासा । लुबुढे भवर न छाड़हिं पासा ।
ससि बदनी जोबन बिस्तारी । निहकलंक बिघन अवतारी ।

गुनवती औ नागरि मन मोहनि सयसारि ।
धनि सिरिसिट जेइ सिरजी धनि धनि सूतनिहारि ।[3]

पुरुष चित्र —

पुरुष रूप चित्रण में मंझन यद्यपि अन्य प्रेम गाथाकारों की अपेक्षा अधिक पटु हैं तथापि उनके पुरुष-सौंदर्य चित्र नारी चित्रों की तुलना में नहीं ठहरते। फिर भी उनके पुरुष चित्र कई दृष्टियों से स्पृहणीय हैं। उनमें आन्तरिक एवं बाह्य सौंदर्य का जो मणि कांचन संयोग है वह मंझन की चित्रण-क्षमता का द्योतक है। उनकी मधुमालती में यदि एक ओर मनोहर एवं ताराचंद आदि के रूप चित्र हैं तो दूसरी ओर उनके गुण चित्र। निम्नांकित पुरुष चित्र इस विषय में द्रष्टव्य हैं —

(i) ताराचंद ताहि कर नाऊँ । पुरि पौनेरि मानगढ़ ठाऊँ ।
अति सुंदर रूपवंत सरेखा । सभौ चली भजाहुत देखा ।

---

१ मधुमालती (स० डा० गुप्त, राज स०) पृ० ४२६–४२७ ।
२ वही, पृ० ३८९ ।
३ वही, पृ० १५४ ।

सवन सम्पूरन विद्या, मूरति मदन कुलीन ।
बहुत उहारि मनोहर, क तेहि दर्सि भई मधुलीन ।[1]

(ii) कुंवर कहा सुनि रे जिउ त्यागी । तोर दुख सुनें उठ डर भागी ।
धनि विधु कर चिन्ता चित माहीं । मालती भाइ उदासि जाहीं ।
प्रथम मरौं वाचा तेहि लागा । जिमि बुझाइ तौ हिय डर भागी ।
मोर बोलाउ भाग तोर बारा । मरदन द्वार एक करतारा ।

राजपाट सब परिहरि, दुख मंगवौं तोहि लागि ।
मकु साहस मउँ हौं सिधि पावउँ कुभ दिय तोहि मागि ।[2]

प्रकृति-चित्र —

प्रकृति चित्रण में मंझन की वृत्ति अधिक नहीं रमती। उनका उद्देश्य आध्यात्मिक प्रेम साधना की महत्ता का उद्घाटन है प्रकृति के बहु-विध रूपों का स्वतन्त्र चित्रण नहीं। यही कारण है कि उन्होंने प्रकृति का चित्रण केवल उद्दीपन अथवा पृष्ठभूमिक रूप में किया है। फिर भी यत्र तत्र प्रकृति के रूप-व्यापारों के एक प्रथ चित्र निर्मित हो गए हैं। अधोलिखित चित्र इस विषय में द्रष्टव्य है —

चैत करहु निसर बन बारी । बनसपती पहिरो नव सारी ।
चहुँ दिसि भा मधुकर गुंजारा । पाँखुरि फूल डारिन्ह अनुसारा ।
कुसुम सीस डारिन्ह ठउँ काढ़ । तरिवर नो साखा भ बाढ़ ।
फागुन हुत ज तरु पतझार । ते सब भए चैत हरियारे ।

\+ + + +

बरन बरन निकस तरु पाता । काहू पीत काहू हरियर राता ।[3]

---

१ मधुमालती (डा॰ गुप्त राज स॰) पृ॰ ३०६ ।
२ वही, पृ॰ २२३-२२४ ।
३ वही, पृ॰ ५८-३५६ ।

तथा

> नगर मोहावन चित बिसराऊँ । गोइडे नगर पिता लखराऊँ ।
> तीतरि छाह मघन अँबराई । निजु कबितास जानु भुइ आई ।
> बाँध पेड सफर सब भारी । भो सभ तरुवर पानि पनारी ।
> भल अनेग पखी पहुँ छाए । करहिं केलि रस बचन सोहाए ।
> सदा बसत रहै अँबराई । मरुत बास दहुँ दिसि लै जाई ।[1]

एव

> सिह मघा पावस भकझोरी । प्रम सलिल दुहुँ लोयन ओरी ।
> आठौं भाउ मदन कै जागै । सातौ सरग ओनइ भुइ लागे ।
> चहुँ दिसि घुमरि घोर घहराने । मैं निजु प्रान गौन किय जाने ।[2]

वस्तु-चित्र :—

वस्तु-चित्रण क्षमता की दृष्टि से मझन का प्रयास अधिक प्रशसनीय नही । मधुमालती मे वस्तु वर्णन के अवसर कई स्थलो पर आए हैं और कवि ने यथा प्रसग विभिन्न वस्तुओ के वर्णन किए हैं किन्तु उसकी प्रवृत्ति के अनुसार वे प्राय सक्षिप्त हैं । यदि एक ओर चरणाद्रि, कनकगिरि पद्मनगरी, महारस नगर तथा चित्तविश्राम नगर के वर्णनों मे कवि की सक्षेप की प्रवृत्ति कार्य करती रही है तो दूसरी ओर मनोहर एव ताराचद के विवाहोत्सव के प्रसगो—बारात भोज एव दहेज आदि के वर्णनो के अवसरों पर भी उसकी यही प्रवृत्ति देखी जा सकती है । फिर भी कवि के ये वर्णन सक्षिप्त होते हुए भी प्रभावोत्पादक हैं और उनमे कवि की चित्रण क्षमता स्पष्ट परिलक्षित होती है । बारात के प्रसग कागज के खिलौनो, वृक्षों, घरो, कोठियों खेडों ऊपर नाचती हुई वेश्याओं से युक्त कुसुम्भी रग के वस्त्रों से मढी हुई नावों सुहावने बाजो, फलों से फलित वृक्षो, खेमों मशालो आदि का वर्णन करते हुए कवि कहता है —

> से। साजि कै चली बराता । बाजन बाजहिं उठे अघाटा ।

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त, राज स०) पृ० १६४ ।
२ वही पृ० ३५२ ।

बहु कौतुक किए कागद कर। तब निहुल कोठी भो भरे।
मावइ बहुत कुसुम्भी मढ़ी। तिहि पर नाचहिं पतुरी चढ़ी।
किएउ बजावन अति रे सोहावा। भौ कौतुक बहु गनत न आवा।
बहुत बिरिख किए कर फर। ठाँव ठाँव किए आड़ खरे।

चली छतीसौ पौनि कुंवर सब चितवन क आन।
जाबन साठ चहूँ दिसि, जग उजियारी भान।[1]

इसी प्रकार दहेज में दी गई वस्तुओं तथा बारातियों के लिए जाने वाले वस्त्रों, पात्रों एवं पलंगों आदि का वर्णन करते हुए कवि कहता है —

+ + + +

अभरन सब जरायह जरा। भाँतिह सहस साजि कै धरा।
सोन रूप बहु नादि चलावा। मनि मुकुताहल गनत न आवा।

कापर नाउ जहाँ लगि जो कवि कहा न जाइ।
बहुत सहस दस लादि के आगे लिए चलाइ।

+ + + +

बरियातौ जेउ गोहने आए। आगा भल भल तिन्ह सब पाए।
भाजन सोन रूप के नए। पाट पटम्बर बरनि न गए।
पालक खाटौं हुत कराई। सुरंग पाट बिन फूल उठाई।

अगर कपूर भी मिरगमद, परिमल साज जो आदि।
नरियर दाख बदाम छोहारी बसह सहस दस लादि।।[2]

मिश्र-चित्र :—

मिश्र चित्रों से आशय ऐसे चित्रों से है जिन्हें उक्त वर्गों में से किसी भी एक वर्ग के अन्तर्गत रखना उचित नहीं क्योंकि उनमें अन्य वर्गों के भी चित्र सम्मिलित

---

१ मधुमालती (सं० डा० गुप्त राज सं०), पृ० २८६–२८७।
२ वही पृ० ४००–४०१।

रहते हैं। अभिव्यक्ति के लिए आकुल भाव विभोर कवि जब अपनी अनुभूति-शबलता के कारण किसी एक वर्ग के चित्र प्रस्तुत न करके विभिन्न वर्गों के चित्र प्रस्तुत करता है तो उन एकाधिक वर्गों के चित्रों की सर्वाधिक उपयुक्त संज्ञा मिश्र होती है। जीवन में भी यह देखा जाता है कि प्रकृति अथवा वस्तु जगत् की पृष्ठभूमि में मानव रूप चित्रों का महत्त्व बढ़ जाता है। इसी प्रकार मानव अथवा प्रकृति के सहयोग से वस्तु और वस्तु और मानव के सहयोग से प्रकृति रूपों का महत्त्व बढ़ जाता है। यही नहीं प्रायः ऐसा भी होता है कि एक को अन्य से पृथक् कर सकना सम्भव ही नहीं होता। अतः कवियों के लिए भी ऐसे मिश्र चित्रों का प्रस्तुतीकरण एक अनिवार्य आवश्यकता हो जाती है। मंझन ने भी इस प्रकार के मिश्र चित्र ऐसी स्थितियों में प्रस्तुत किए हैं जिन्हें यथास्थान देखा जा सकता है। उनके निम्नांकित मिश्र चित्र इस विषय में द्रष्टव्य हैं —

(i) सुकर सीप दुइ स्रवन सोहाए। सरग नखत जनु बीरि जराए।
तरिवन हीर रतन नग जरे। अदित सुक्र दुइ खुटिला धरे।
दुहुँ दिसि दुवौ चक्र अनियारे। ससि सथ जानु उए दुइ तारे।[1]

(ii) दूसर माघ सखी सुनु बाता। पिउ बिदेस मोहि बिरह सघाता।

+ + + +

बिरह डारि पर बैठी बाला। रनि गमैं सिर बरिसै पाला।
किमि करि दुसह माघ मधु काढ़ौं। बिरह देवस वरु तिल तिल बाढ़।[2]

(iii) चहु दिसि मंदिल पटोर मढ़ावा। हेम खम सम गगन अड़ावा।
मंदिल सरग ससि बदन (सो)नारी। तारे रतन धरे जनु तारी।
कचपचिया भइ चेरिन्ह टोला। पानक जानु प्रकास खटोला।
पालक पर जनु लाइ सवारी। सोई सेन सहन बिकरारी।
सेज सौंरि का बरनौ पारी। कहत सुनत जो बात रसारी।

नौ सत साजें बाला निभरम सोव सुख सेज।
चेत परिहरेउ कुँवर चित, देखि हरेउ बुधि तेज।[3]

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त, राज सं०) पृ० ७५।
२ वही, पृ० ३५६।
३ वही, पृ० ६१।

(घ) रूप, भाव, गुण एवं व्यापार चित्र :—

रूप, भाव गुण एवं व्यापार चित्रों की दृष्टि से मंझन की चित्रण क्षमता सराहनीय है। उनके काव्य में इस प्रकार के चित्र प्रचुरता से उपलब्ध होते हैं और उनमें पर्याप्त सरसता एवं मार्मिकता है। रूप चित्रों का विस्तृत अन्य कवियों के चित्रों के प्रसंग में पर्याप्त कराया जा चुका है। यहाँ केवल भाव गुण एवं व्यापार चित्रों पर किंचित् प्रकाश डालना है।

भाव चित्र –

भाव चित्रण क्षमता की दृष्टि से मंझन की काव्य प्रतिभा अत्यधिक सराहनीय है। सुख दुःख प्रेम विरह आदि विभिन्न भावों के चित्रण में उनकी वृत्ति जितनी रमी है उतनी कदाचित् अन्य वृत्ति व्यापारों के चित्रण में नहीं। इन भावों का जो सरस चित्रांकन कवि ने किया है वह वस्तुतः देखते ही बनता है। उदाहरणार्थ निम्नांकित भाव चित्र लिए जा सकते हैं —

(i) प्रेम काढ़ हिय सागर मारे। विरह जाल जिउ बाझेउ तारे।[1]

(ii) दुख मानुस करि आदि सराहा। ब्रह्मा कवल महं दुख कर बासा।
जेहि दिन तहि दुख सिरिज समानां। तहि दिन तें जिउ जिउ दुख जाना।
मोहि न आजु उपजउ दुख तारा। बार दुख आदि सघातो मारा।
अब न यहीं दुसर के कांवरि। दुई जग रउ सुवर नउठावरि।
मैं अयान के तार दुख लिया। मरि के अउ सो अ मित्र दिया।[2]

(iii) डर नीर दुइ लायन बेत म चित्त समार।
विरह मरग कर धायल विनु नाहीं उपचार।[3]

(iv) बुधि कि विरह सत सरमरि पाव। विरह पौन बुधि दिया सुभाव।

+ + + +

---

१ मधुमालती (डा०गुप्त, राज स०) पृ० ८६।
२ वही, वही, पृ० ६६।
३ वही, वही, पृ० १३२।

कुवर सरीर सो श्रौगुन जेहि जग मत्र न मूरि ।
मुरुख समहि विरह मैं सुरुज छपावहि धूरि ।[1]

(iiv) हरम्ववत सम नगर उघारा । पर मापन जहवां सहि माहा ।
नगर जो रहा सम दुग बौरा । जस बसत नो रितु बन मौरा ।[2]

(vi) चद उर्द मुख दुहू कर गहा जो हुट दुख राहू ।
पूनिव भै परगास तब सुनि मधुमालति चाहु ।[3]

(vii) भगिनि माहु जस जरत परानो । मनचीते सिर बरिस पानो ।
तस सुख मएउ कुँवर सुनि पाती । इरिउँ हरखि मनि बिहर छाती ।[4]

(viii) दुख सों बग मकुनाउ न कोई । दुख के मत सुक्ख पै होई ।
दुइ दुख बीच सुक्ख सयसारा । कारी घटा सेत जल धारा ।
फागुन जो तरिवर पत झार । नो पल्लौ सिर सेंउ मनुमारै ।
दुइ पाथर बिच म्रापु पिसाव । तौ मेहुँगे राता रग पावै ।
माती बहु बिधि म्रापु छेनाव । पदुमिनि उरहिं ठाउ तो पाव ।

दुइ दुख बीच सुक्ख है निजु जानहु ससार ।
जइ मति रैनि भ घेरी तो मजोर भिनुसार ।[5]

गुण-चित्र :—

म्रा तरिक एव बाह्य सौ दय का मणि कांचन सयोग मझन के कलाकार की विशेपता है । म्रान्तरिक सौ दय पर उन्होंने जितना बल दिया है, म्रन्य सूफी कवियों ने नहीं । उनके पात्र बाह्य सौन्दय के साथ ही म्रान्तरिक सौ दय के भी म्रालय हैं ।

---

१ मधुमालती (सम्पादक डा० गुप्त राज स०), ०
२ वही, पृ० ३४२ ।
३ वही, पृ० ३३६ ।
४ वही, वही, पृ० ३८१ ।
५ वही पृ० २०२–२०३ ।

यही कारण है कि उनके काव्य में जहाँ एक ओर बाह्य रूप के चित्र हैं वहाँ दूसरी ओर विभिन्न गुणों के भी। अमूर्त गुणों को मूर्त रूप देना कवि की चित्रण-क्षमता का द्योतक है। निम्नांकित गुण चित्र इसके उदाहरण हैं —

(i) विक्रम तेज अनंत तनु धरैं। मुरत वस जेहि कलि उद्धर।[1]

(ii) एहि परिवार गोसाइं नि रानी। पितर तरहिं इन्ह अंजुरिन्ह पानी।
इन्ह ससि सउ हम कुल उजियार। यइ मनि हम इन सउ मनियार।
कसत कसौटी कंचन लीका। तस एइ हम कुल माथ टीका।

इन्ह कर सोच करहु जनि जिय आपने नरेस।
माया इन्ह गोसाईं गौनहिं अपने देस।[2]

(iii) मिलहु सखी तुम्ह सा गल लागी। तपनी माहू मया दर भागी।

\+ \+ \+ \+

मधुमालति कर सखि बिछोवा। ऊंच सबद सखिन्ह सम रावा।

बहुत रावहिं पायँ परि औ बहुतै गियँ लागि।
कोई रोव पुहमि परि मया माहु कै आगि।[3]

(iv) ग आपन जिउ ओहि पर वारौं। परन रनु बरनिन्ह सेउ मारौं।
सीस धरौं ओहि पाव नगाई। चरननि लउ दुइ माथ चटाई।
आहिआहि लागि सहा दुख मारी। मैं ग करौं जीउ बलिहारी।

खोजि रहेउ त्रिभुवन नारी जो आरति लै जाउँ।
त्रिउ अनिरिचित थोरा, आरति करत लजाउँ।।

\+ \+ \+

१ मधुमालती (डा० गुप्त राज स०) पृ० ३३२।
२ वही पृ० ४६२।
३ वही, पृ० ४५३।

ताराचन्द देखि मा खरा । धाइ मनोहर पाँ ल परा ।
जो जो ताराचन्द उचावै । धाइ धाइ सिर पाँवहि लावै ।
कहेसि की ह तुम्ह मो लगि जसा । कलिजुग को क पार ऐसा ।

तुम्ह मोर जिउ लै आएहु परिहरि आपन राज ।
जो मैं जिउ न करौं तारि आरति फुनि यह जिउ कहि काज ।[1]

(v) एहि दुख माह एक होइ मैं निजु जाना जीय ।
क हम अुप बल तुम्ह गर, क तुम हृय हम गीय ।।[2]

(vi) कुवर सुहिरदौं सुनि यह बाना । सिर पा हुत कांपेउ सब गाता ।
कहेसि हाँहि जो सो जिय मोरें । दउ सब नेउछाउरि तोरें ।

जो न आजु तार सघ जइहूँ । फुनि केहि काज कालिह मैं अइहूँ ।
जा जिउ नेग न लागिहि तोरें । सो जिउ बहुरि काज केहि मोरें ।[3]

व्यापार-चित्र .—

व्यापार चित्रण की दृष्टि से भी मझन की चित्रण क्षमता में कोई कमी नहीं । उनके व्यापार चित्र कितने मार्मिक सरस प्राणवान एवं प्रभविष्णु हैं यह कदाचित् कहने की आवश्यकता नहीं । उनमें काव्य एवं चित्र कला का जो मणि-कांचन संयोग है वह मझन की कलम कूचिका की विशेषता है । उनके निम्नांकित व्यापार चित्र इस विषय में द्रष्टव्य हैं —

(i) अमिय बचन तोहि हिया सिराइउ । प्रीति बास मधुमालति पाइउ ।
जस कोइ पर समुद अथगाहा । अचक पाव बूडत महँ थाहा ।
अस मोहि तोर बदन देखि बारा । दुख जल बूडत भयउ अधारा ।
मैं तो ओहि मारग जिउ लावा । जिय घट खोजि न कतहूँ पावा ।

१ मधुमालती, सम्पादक डा० गुप्त राज म० पृ० ४०२-४०३ ।
२ वही, वही वही, पृ० २७४ ।
३ वही वही, वही, पृ० ३२८ ।

राज पाट सुख परिहर, धन जोबन जिउ मोह ।
पंथ पेम पथ पगा दुहु भाग का होइ ।[1]

(ii) रहसी रवि कुँवर उनिहारी । बसि आइ तेहि आम अटारी ।
कहेसि जरे तइ नैन सिरावौं । विरह आगि तहि दरस बुझावौं ।
बूडत धाइ आम तिनु लई । तिनका बूडत अमरी देई ।
ओस पियास न त्रिखा बुझाई । आव साथ कत अविली जाई ।
विरह आगि जहि उर परजारी । होइ सलाख न देखि उहारी ।

मधुमालति मुख कुँवर निहारति रवि रूप भएउ लीन ।
ताराचन्द कुँवर जिय चटपटि जिमि जल बिछुरे मीन ।।[2]

(iii) तेहि ऊपर पारिन त काह । बुझी आगि पर घिउ ल वाह ।
एक एसइ तहि चित बरागी । तहि पर तैं का बई बागी ।
एहि आपन कछु हुत न सभारा । तैं का बज्र ताहि पर पारा ।
पालक एक हम नग जरी । एहि कैं मादन काहु न घरी ।
तहि दिनसउँ यहु मरि मरि जिय । अन न खाइ खडवानि न पिय ।

आजु बात सब जानिउ औ बूझिउ सब मम ।
तैं कत नरिय डारि धसि काटी आगें कौन यह धम ।[3]

(iv) देखि कुँवर वर कामिनि धाई । परत अनरिखिहि लिहसि उचाई ।
कहेसि मान माहि बूझिअ नाहा । मैं तजि मान दीन्ह गल बाहा ।
उठे दुओ गहि अकम लाग । औट जनु दुइ सोन सोहाग ।[4]

इस प्रकार स्पष्ट है कि मझन का चित्र वर्णानिक सौन्दर्य सभी दृष्टियों से उत्कृष्ट है । उनकी चित्रण क्षमता अद्भुत है और उनके चित्रों में सरसता, मार्मिकता

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त, राज संस्करण) पृ० १६४–१६५ ।
२ वही पृ० २११ ।
३ वही पृ० २६८ ।
४ वही, पृ० २८६ ।

एव प्रभविष्णुता है। परम्परा का प्रभाव होते हुए भी उनमें पर्याप्त मौलिकता, नव्यता एव कवि की अपनी विशेषता है। पूर्ण, खण्ड, अलकृत निरलकृत, मानव, प्रकृति वस्तु रूप, भाव, गुण व्यापार जिस किसी भी दृष्टि से देखा जाय, जिस किसी भी कसौटी पर कसा जाय, सभी दृष्टिया से वे पूर्ण हैं सभी कसौटियों पर खरे उतरते हैं।

छन्द-वैधानिक अथवा छन्द योजना सौन्दर्य :—

काव्य एव छद योजना का घनिष्ठ सम्बन्ध है। 'कविता हमारे प्राणो का सगीत है छद हृत्कपन, कविता का स्वभाव ही छद म लयमान होना है।'[1] विषयानुकूल छन्द योजना से वर्ण्य विषय में सजीवता आ जाती है, उसका रूप-सौन्दर्य खिल उठता है और उसमें सहृदय पाठक श्रोताओं को आह्लाद विभोर कर सकने की शक्ति विशेष आ जाती है। यही कारण है कि काव्य में छद योजना का अपरिमेय महत्व है। महाकवि 'हरिऔध' के शब्दों मे 'छन्द मनोभावों का प्रकट करने के समुचित साधन हैं। जिस छन्द द्वारा जो मनोभाव यथातथ्य प्रकट होगा उस मनोभाव को व्यक्त करने के लिए वही छन्द उपयुक्त और उत्तम समझा जायगा।[2]

छन्द कवि को अनुशासन में रहने के लिए बाध्य करते हैं। अत बहुत से कवि उन्हे काव्य के लिए बन्धन अथवा कवि के लिए बेडिया समझ बठते हैं, किन्तु यह धारणा भ्रामक है। छद काव्य-जगत् म उच्छ्रखलता को पनपने से रोकते हैं उससे होने वाली हानि से अनिष्ट स उस की रक्षा करते हैं, अत एक प्रकार स उसकी मुक्ति के साधन हैं ठीक उसी प्रकार जसे राष्ट्र मे नियम उसके बन्धन होकर भी उसकी मुक्ति के साधन हैं —

"जन पद के बन्धन मुक्ति हेतु हैं सबके।
यदि नियम न हो उच्छिन्न सभी हो कबके।[3]

---

१ पन्त पल्लव प्रवेश प० स०, पृ० २१।

२ 'हरिऔध', साहित्य समालोचक स० १९८२–८३, शिशिर हेमन्ताक, पृ० ४०।

३ मैथिलीशरण गुप्त, साकेत स० २००४ पृ० १६४।

अन्य दृष्टियों से भी छन्द काव्य के लिए अपरिहार्य है। उनमें काव्य के नादात्मक रूप की उसके नैसर्गिक सौंदर्य की रक्षा होती है,[१] संगीत की सृष्टि होती है प्रवाह की योजना होती है श्रुति माधुर्य की वृद्धि होती है। मात्राएं उनमें इसलिए बढ़ाई घटाई जाती हैं कि उनमें काव्य पुरुष का शरीर सन्तुलित रहे उसके अंगों के अनुपात में किसी प्रकार का अन्तर न आने पाए न तो वह गणेश जी के समान पृथुलाकार अथवा लम्बोदर रूप धारण कर ले न गालिब के विरही पुरुष के समान खटमल के रूपाकार वाला बन जाए और न बिहारी की विरहिणी के समान सांसों के साथ हिलने डुलने अथवा आगे पीछे चलने वाला। जहाँ छन्द के पद मात्रानुसार नहीं जाते और भी, वरन् अपनी सजावट ही के लिए घटन-बढ़न, चीन की सुन्दरियों अथवा पाश्चात्य महिलाओं की तरह केवल अपने चरणों को छोटा रखने के लिए लोहे के तंग जूते और कमर को पतली रखने के लिए चुस्त पेटी पहनने लगते हैं वहाँ उनके स्वाभाविक सौन्दर्य का विकास नहीं हो पाता है कविता अस्वस्थ तथा लक्ष्यभ्रष्ट भी हो जाती है।'

छन्द कभी कभी काव्य-पुरुष का प्रशस्त जीवन तथा हृदय स्पन्दन प्रतीत करते हैं कहीं 'तुरही के समान स्वर में निर्जीव शब्दों को फूंकते हैं कहीं वर सांती नाल की तरह अपने पथ की रुकावटों को लांघते हुए गतिशील होते प्रतीत होते हैं कहीं ताण्डव नृत्य करने वाले व्यक्ति के समान अपनी उद्धत भाव-भंगिमाओं एवं मुद्रा चेष्टाओं से आकृष्ट करते हैं और कभी अप्सराओं के समान चंचल मोहक लास्य नृत्य करते हुए अंग भंगिमाओं में उठते झुकते कोमल कण्ठ स्वरों से गाते प्रतीत होते हैं।

बच्चन भी छन्द के इस महत्त्व से परिचित नहीं थे यह कहना कठिन है। साथ ही यह कहना भी कदाचित् युक्तियुक्त न होगा कि उन्हें छन्दशास्त्र का पूर्ण

---

२ 'आधुनिक समय के कवि छन्द को कविता का बन्धन मानते हैं। वे मुक्त-वृत्त में अपनी भावनाओं को उंडेल कर निर्द्वन्द्व रूप में कविता निर्मित करते जाते हैं। यह स्वतन्त्रता भावों के प्रकाशन में स्वच्छन्दता भले ही प्रदान करे किन्तु यह कविता के नादात्मक रूप की उसके नैसर्गिक सौन्दर्य की उपेक्षा करती है। कविता की विशेषता तो इसी में है कि वह नियमों के अन्तर्गत रहती हुई भी उनसे परे हो जाती है।'

—डा० रामकुमार वर्मा आधुनिक कवि भाग ३, भूमिका पृ० १४।

२ सुमित्रानन्दन पन्त, पल्लव पल्लव प्रवेश, पृ० ३३।

परिमाण था। चौपाई छंद, जिसका प्रयोग उन्होंने मधुमालती में किया है जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है चार चरणों का छंद है। इसके दो चरणों को अर्द्धाली कहते हैं। मझन ने मधुमालती में प्रत्येक पांच अर्द्धालियों के उपरांत एक दोहा रखा है जो सर्वथा उचित नहीं कहा जा सकता क्योंकि छंद परिवर्तन पूर्ण छंद के उपरांत ही होना चाहिए। जायसी ने भी इस प्रकार की त्रुटि की है। उन्होंने भी सात अर्द्धालियों अर्थात् साढ़े तीन चौपाइयों के अनंतर छंद परिवर्तन किया है। इसी प्रकार अन्य सूफ़ी कवियों ने भी छंद विषयक यह त्रुटि की है। किंतु हमें यहां मझन से ही प्रयोजन है। उनका प्रत्येक ढाई चौपाइयों के उपरांत छंद परिवर्तन उनके छंद वैधानिक सौंदर्य में एक प्रकार का मनोविरोधोद्भूत व्याघात उत्पन्न करता है। किंतु उनका यह मनोविरोध तभी तक खटकता है जब तक कि हम प्राचीन काव्य शास्त्र की लीक पर आंख मूंदकर चलते रहते हैं और यह भूले रहते हैं कि कवि समुदाय को भी इस विषय में कुछ स्वातंत्र्य है यही नहीं कवि एक प्रकार से छंद-शास्त्र का निर्माता है, लक्ष्य ग्रन्थों के उपरांत ही लक्षण ग्रन्थों का निर्माण होता है। इसके अतिरिक्त इस विषय में यह भी ज्ञातव्य है कि चौपाई छंद की संज्ञा भले ही उसकी चार चरणों की अनिवार्यता का द्योतन करती हो, व्यवहार में उसकी अर्द्धाली पर ही पूर्णता प्रतीत होती जान पड़ती है। कारण, उत्तरवर्ती अर्द्धाली में न तो पूर्ववर्ती अन्त्यानुप्रास का आग्रह रहता है और न ही उसके अभाव में उसमें कोई अपूर्णता प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ गोस्वामी तुलसीदास, जायसी तथा मझन की निम्नांकित अर्द्धालियां ली जा सकती हैं —

एहि बिधि राम सबहि समुझावा। गुरु पद पदुम हरषि सिरु नावा।
गनपति गौरि गिरीसु मनाई। चले असीस पाइ रघुराई।[1]

(ii) जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढ़व्रत रघुराई।[2]

(iii) सुनिउ जाहि दिन सिस्टि उपाई। प्रीति परेवा दिहेउ उड़ाई।
तीनिउ लोक ढूंढि कै आवा। आपु जोग कहुं ठाउं न पावा।[3]

(i) अति सुरंग रस भरे अमोला। जुग सोभित मुख मद्धि कपोला।[4]

---

१ रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड दो० सं० ८० के बाद की प्रथम चौपाई।
२ रामचरित मानस अयोध्याकाण्ड, दोहा सं० ८१ के उपरांत की प्रथम अर्द्धाली।
३ मधुमालती (डा०गुप्त), राज सं०, पृ० ६७।
४ वही वही पृ० ७१।

अन्य दृष्टियों से भी छन्द काव्य के लिए अनिवार्य है। उनसे काव्य के नादात्मक रूप की उसके नैसर्गिक सौन्दर्य की रक्षा होती है।[१] संगीत की सृष्टि होती है, प्रवाह की योजना होती है श्रुति माधुर्य की वृद्धि होती है। मात्राएं उतनी इसलिए बढ़ाई घटाई जाती हैं कि उनसे काव्य पुरुष का शरीर सन्तुलित रहे उसके अंगों के अनुपात में किसी प्रकार का अन्तर न आने पाए न तो वह गणेश जी के समान पृथुलाकार अथवा लम्बोदर रूप धारण कर ले, न गालिब के विरही पुरुष के समान खटमल के आकार वाला बन जाए और न बिहारी की विरहिणी के समान सांसों के साथ हिलने-डुलने अथवा आगे पीछे जाने वाला। 'जो छन्द के पद मात्रानुसार नहीं जाते और मात्रावृत्त अपनी सजावट ही के लिए घटने-बढ़ने, चीन की सुन्दरियों अथवा पाश्चात्य महिलाओं की तरह केवल अपने चरणों को छोटा रखने के लिए लोहे के तंग जूते और कमर को पतली रखने के लिए चुस्त पेटी पहनने लगते हैं वहां उनके स्वाभाविक सौन्दर्य का विकास तो रुक ही जाता है कविता अस्वस्थ तथा लक्ष्यभ्रष्ट भी हो जाती है।'[२]

छन्द कभी कभी तो तन-पुरुष का प्रशस्त जीवन तथा हृदय स्पन्दन प्रदान करते हैं कहीं 'तुरही के समान स्वर में निर्जीव शब्दों को फूंका देते हैं कहीं बरसाती नाले की तरह अपने पथ की रुकावटों को लांघते हुए गतिशील होते प्रतीत होते हैं कहीं ताण्डव नृत्य करने वाले व्यक्ति के समान अपनी उद्धत भाव भंगिमाओं एवं मुद्रा-चेष्टाओं से आकृष्ट करते हैं और कभी अप्सराओं के समान चंचल मादक लास्य नृत्य करते हुए अंग भंगिमाओं में उठते झुकते कोमल कण्ठ स्वरों से गान प्रतीत होते हैं।

कलाकार समस्त छन्द के इस महत्त्व से परिचित नहीं थे यह कहना कठिन है। साथ ही यह कहना भी कदाचित् युक्तियुक्त न होगा कि उन्हें छन्दशास्त्र का पूर्ण

---

१ 'आधुनिक समय के कवि छन्द को कविता का बन्धन मानते हैं। वे मुक्त-वृत्त में अपनी भावनाओं को उड़ेल कर निर्द्वन्द्व रूप से कविता लिखते चले जाते हैं। यह स्वतन्त्रता भावों के प्रकाशन में स्वच्छन्दता भले ही प्रदान करे किन्तु यह कविता के नादात्मक रूप की उसके नैसर्गिक सौन्दर्य की उपेक्षा करती है। कविता की विशेषता तो इसी में है कि वह नियमों के अन्तर्गत रहती हुई भी उनसे परे हो जाती है।'

—डा० रामकुमार वर्मा आधुनिक कवि भाग ३ भूमिका पृ० १५।

२ सुमित्रानन्दन पन्त, पल्लव पल्लव प्रवेश, पृ० ३३।

परिमान था। चौपाई छंद, जिसका प्रयोग उन्होंने मधुमालती में किया है, जैसा कि उसके नाम से स्पष्ट है चार चरणों का छंद है। इसके दो चरणों को अर्द्धाली कहते हैं। मझन ने मधुमालती में प्रत्येक पांच अर्द्धालियों के उपरान्त एक दोहा रखा है जो सर्वथा उचित नहीं कहा जा सकता क्योंकि छंद परिवर्तन पूर्ण छन्द के उपरान्त ही होना चाहिए। जायसी ने भी इस प्रकार की त्रुटि की है। उन्होंने भी सात अर्द्धालियों अर्थात् साढ़े तीन चौपाइयों के अनन्तर छंद परिवर्तन किया है। इसी प्रकार अन्य सूफ़ी कवियों ने भी छन्द विषयक यह त्रुटि की है। किन्तु हमें यहां मझन से ही प्रयोजन है। उनका प्रत्येक ढाई चौपाइयों के उपरान्त छन्द परिवर्तन उनके छंद वैधानिक सौंदर्य में एक प्रकार का अनौचित्योद्भूत व्याघात उत्पन्न करता है। किन्तु उनका यह अनौचित्य तभी तक खटकता है जब तक कि हम प्राचीन काव्य शास्त्र की लीक पर आंख मूंदकर चलते रहते हैं और यह भूले रहते हैं कि कवि समुदाय को भी इस विषय में कुछ स्वातन्त्र्य है यही नहीं कवि एक प्रकार से छन्द-शास्त्र का निर्माता है लक्ष्य ग्रंथों के उपरान्त ही लक्षण ग्रंथों का निर्माण होता है। इसके अतिरिक्त इस विषय में यह भी ज्ञातव्य है कि चौपाई छन्द की संज्ञा भले ही उसकी चार चरणों की अनिवार्यता का द्योतन करती हो, व्यवहार में उसकी अर्द्धाली पर ही पूर्णता प्रतीत होती जान पड़ती है। कारण उत्तरवर्ती अर्द्धाली में न तो पूर्ववर्ती अन्त्यानुप्रास का आग्रह रहता है और न ही उसके अभाव में उसमें कोई अपूर्णता प्रतीत होती है। उदाहरणार्थ गोस्वामी तुलसीदास, जायसी तथा मझन की निम्नांकित अर्द्धालियां ली जा सकती हैं —

'एहि बिधि राम सबहि समुझावा। गुरु पद पदुम हरषि सिरु नावा।
गनपति गौरि गिरीसु मनाई। चले असीस पाइ रघुराई।'[1]

(ii) जौं नहिं फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढ़ब्रत रघुराई।[2]

(iii) सुमिरउ जाहि दिन सिस्टि उपाई। प्रीति परेवा दिहउ उडाई।
तीनिउ लोक हूंढि कै आवा। आपु जोग बहु ठाउ न पावा।[3]

(i) अति सुरंग रस भरे अमोला। जुग सोभित मुख मद्धि कपोला।[4]

१ रामचरितमानस अयोध्याकाण्ड दो० सं० ८० के बाद की प्रथम चौपाई।
२ रामचरित मानस अयोध्याकाण्ड, दोहा सं० ८१ के उपरान्त की प्रथम अर्द्धाली।
३ मधुमालती (डा०गुप्त) राज सं०, पृ० ६७।
४ वही, वही, पृ० ७१।

अतः यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि मंझन ने अर्द्धाली को स्वतः पूर्ण छन्द में न रखकर पाँच अर्द्धालियों के उपरान्त छन्द परिवर्तन किया है। व्यावहारिक दृष्टि से भी उनके इस प्रयोग से उनके छन्द-वैधानिक सौन्दर्य में किसी प्रकार का व्याघात उपस्थित नहीं होता।

छन्द के आवश्यक उपकरण तुक (अन्त्यानुप्रास), लय (प्रवाह अथवा गति) तथा संगीतात्मकता हैं। इनके अभाव में छन्द के समुचित सौन्दर्य की रक्षा नहीं हो सकती। कवि के लिए इनका परिज्ञान आवश्यक है। छन्द, राग, तुक और लय का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इनमें से एक का भी अभाव दूसरे को पंगु बना देता है। कवि पन्त के शब्दों में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि 'जिस प्रकार पतंग डोर के लघु गुरु संकेतों की सहायता से और भी ऊँची ऊँची उड़ती जाती है उसी प्रकार कविता का राग भी छन्द के इंगितों से इच्छित तथा प्रभावित होकर अपनी ही उन्मुक्ति में अनन्त की ओर अग्रसर होता जाता है। पद्य में वाणी की राशि-राशि संगीत में सुनकर रस में डूबे हुए झिलमिल की तरह फूट उठती है, सुरों में सधी हुई वीणा की तरह समस्त तार जिसके अज्ञात वायवीय स्पर्श से, अपने आप अनवरत झंकारों में कांपते रहते हैं, पावस की अंधियारी में जुगनुओं की तरह अपनी ही गति में प्रभा प्रसारित करते रहते हैं।'[1] इसी प्रकार तुक राग का हृदय है जहाँ उसके प्राणों का स्पन्दन विशेष रूप से सुनाई पड़ता है। राग की समस्त छोटी-बड़ी नाड़ियाँ मानो अन्त्यानुप्रास के नाड़ी-चक्र में केन्द्रित रहती हैं जहाँ से नवीन बल तथा शुद्ध रक्त ग्रहण कर वे छन्द के शरीर में स्फूर्ति का संचार करती रहती हैं। जिस प्रकार गान आरोह-अवरोह में राग वादी स्वर पर बार-बार ठहर कर अपना रूप विशेष व्यक्त करता है उसी प्रकार वाणी का राग भी तुक की पुनरावृत्ति से स्पष्ट तथा परिपुष्ट होकर रसयुक्त हो जाता है।[2]

लय, गति या प्रवाह एक विशेष प्रकार का वाणी का बहाव है जो अनुभव से ही जाना जा सकता है। इसके विषय में यद्यपि कुछ विशेष नहीं कहा जा सकता तथापि यह निश्चित है कि काव्य में इसका महत्त्व सदैव अक्षुण्ण रहेगा। प्राचीन काल से लेकर अद्य पर्यन्त इसका महत्त्व निर्विवाद है। इसके अभाव में काव्य का अस्तित्व ही सम्भव नहीं। इसे छन्द और अर्थ लय के दो वर्गों में विभाजित भले ही कर लिया जाय, पर उनमें से एक के भी अभाव में काव्य का काव्यत्व स्थिर नहीं रह सकता। केवल अर्थ लय से गद्य का निर्माण हो सकता है, काव्य का नहीं।

---

१ पन्त पल्लव प्रवेश पृ० २६।

२ मधुमालती सम्पादक मा० गुप्त राज सं०, पृ० १४२।

मझन ने मधुमालती में तुक (प्र त्यानुप्रास) का तो सवत्र ध्यान रखा है, पर लय तथा राग के समुचित सौ दय की रक्षा नही की है। लगता है कि उन्हे इनका सूक्ष्म ज्ञान नही था। मधुमालती मे लय की उपेक्षा से छ दों के प्रवाह मे तो व्याघात उपस्थित हुआ ही है, साथ ही रागात्मकता (सगीतात्मकता) तथा छन्द सौन्दय को भी आघात पहुँचा है। कवि की इस प्रकार की भूलें वस्तुत आश्चय का विषय हैं। मधु-मालती की अग्राङ्कित पक्तियों की लयहीनता स्पष्ट दखी जा सकती है —

(i) आसन मारि लाइ लौ गुरु सेउ बसेउ पकरि धियान।
जुग सम रनि बियोग क जागत माथ सुजान।[१]

(ii) लखन सुरूप विद्या मूरति मदन कुलीन।
बहुत उजारि मनोहर कैं तेहि दखि भई मधु लीन।[२]

(iii) कौन दोख केहि औगुन बदन छपावसि माहि।
औगुन कहै जो सकल सिरिट पर मैं अरथापेउ तोहि।[३]

(iv) जो लहि पिता सकलप नहिं माहि क कन्यादानु।
तो लहि होइ न सुरति रस औरु सव रस मानु।[४]

(v) वर कामिनि जवताई तोहि माहि होइ न धरम बियाहु।
पाप न म तर सचरै बिधि वाचा निजु आहि।[५]

(vi) अजहूँ सेवाती धार सौत लगि छोरि गगन घहराति।
अजहूँ जसि जनमो मधुमालति दई राखी तेहि भाति।[६]

---

१ मधुमालती (डा०गुप्त, राज स०) पृ० १५२।
२ वही, पृ० ३०६।
३ वही पृ० २८३।
४ वही, पृ० २८४।
५ वही, पृ० २८५।
६ वही, पृ० २६६।

(vii) कबहूँ दिवस घारि मन छाड़ कबहूँ राति टुक गा"।
कबहूँ बारी बिरह बियाकुनि बन्न डारि रहै भा"।[1]

(viii) बहु भा"र मउ बिसम चित्रसेनि बहुराइ ।
रानी कुनि पना वह ममन्ड गाचर गीय मिनाद ।[2]

(ix) कुकुर मन मुगन उबटना नावहिं कुवर क गात ।
सात दिवस क लगन कुवर मिर बीत जनु जुग सात ।[3]

(x) नन नैन सउ लोभ मन सउ मन मदनान ।
दुवो हिय उर मिनि एक न मजियउ प्रानहि प्रान ।[4]

(xi) जत जावन मवगाह पेखि क दाइस कर न चित्त ।
कनक कलस दुइ द हियँ सनर लाज सरित्त ।[5]

कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रथम दाह की प्रथम पक्ति म २४ क स्थान पर २७ मात्राए है जि ह किचित् सावधानी स ठीक किया जा सकता था । 'गुद सउ' शब्द यों भी अनावश्यक है और उस बिना किसी परिवतन क हटाया जा सकता था । हा पूरी पक्ति में किंचित् परिवतन अभीष्ट होता—एक मात्रा की वृद्धि करनी पड़ती । किन्तु इसक लिए मारि क स्थान पर 'मारिक' कर दन स भी काम चल जाता ।

द्वितीय दाह में प्रथम पक्ति में यति के पूव १३ क स्थान पर १२ मात्राएँ होन से गति भग हा गई है । पूरी पक्ति म २४ क स्थान पर २३ मात्राए हैं । द्वितीय पक्ति म २४ के स्थान पर २७ मात्राए हैं । दाहे क मन्तर यति होना चाहिए थी किन्तु पूव १३ चरण में क स्थानपर १६ मात्राए हैं । ध्यानस दखन स विदित हागा कि

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त) रा० स० पृ० २६७ ।
२ वही वही, पृ० २८६ ।
३ वही वही पृ० ३८५ ।
४ वही, वही पृ० ३६३ ।
५ वही वही, पृ० २८५ ।

'क तेहिं' शब्द अनावश्यक है। इनके अभाव में भी काम चल जाता है। केवल थोड़े से परिवर्तन की आवश्यकता थी। मनोहर' के स्थान पर 'मनोहरक' कर देना ही पर्याप्त था।

इसी प्रकार तृतीय दोहे की प्रथम पंक्ति में २३ और द्वितीय पंक्ति में २८, चतुर्थ दोहे की प्रथम पंक्ति में २६ और द्वितीय में २४ पंचम दोहे की प्रथम पंक्ति में २७ और द्वितीय में २४, षष्ठ दोहे में प्रथम पंक्ति में २७ और द्वितीय में २८, सप्तम दोहे में प्रथम पंक्ति में २८ और द्वितीय में २८, अष्टम दोहे की प्रथम पंक्ति में २२ और द्वितीय में २७, नवें दोहे की प्रथम पंक्ति में २८ और द्वितीय में २७ दसवें दोहे में प्रथम पंक्ति में २३ और द्वितीय में २५ और ग्यारहवें दोहे की प्रथम पंक्ति में २७ और द्वितीय में २८ मात्राएं हैं। इन त्रुटियों के कारण न केवल गति भंग दोष उत्पन्न हुआ है, प्रत्युत छन्द के स्वाभाविक प्रवाह में भी बाधा उत्पन्न हुई है यही नहीं यति में भी अव्यवस्था उत्पन्न हो गई है और छन्द भी मनमाने ढंग के प्रतीत होते हैं। कवि ने या तो लोक गीतों के प्रभाव में आ कर अपने दोहों को मनमाने ढङ्ग से सजाया है या किसी अन्य छन्द के आधार पर इन्हें ऐसा रूप प्रदान किया है या तो उसने अपनी स्वच्छन्द प्रवृत्ति के कारण अपने छन्दों को एक नवीन साँचे में ढाला है या उसे छन्द शास्त्र का सम्यक् ज्ञान नहीं था या कवि ने जान-बूझ कर छन्द शास्त्र की उपेक्षा की है। दोहों में ही नहीं चौपाइयों में भी कहीं कहीं इस प्रकार के गति भंग दोष रह गए हैं, किन्तु वे अत्यन्त विरल हैं।

विधागत-सौन्दर्य :—

मधुमालती प्रबन्ध काव्य है किन्तु यह प्रबन्ध काव्य की किस कोटि में आता है, अध्येताओं के समक्ष यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है। उत्तर के लिए काव्य शास्त्र की ओर दृष्टि जाना स्वाभाविक है। किन्तु उसमें समस्या का समाधान नहीं होता, प्रत्युत वह और उलझ जाता है। काव्यशास्त्रीय दृष्टि से प्रबन्ध काव्य के तीन भेद हो सकते हैं—महाकाव्य, खण्ड काव्य तथा एकार्थ काव्य। किन्तु मधुमालती के लिए इनमें से कोई भी संज्ञा समीचीन प्रतीत नहीं होती। कारण, न तो वह महाकाव्य की कसौटी पर खरा उतरता है और न एकार्थ काव्य अथवा खण्ड काव्य की कोटि में रखकर उसके साथ न्याय किया जा सकता है। महाकाव्य वह इसलिए नहीं कहा जा सकता क्योंकि उसमें न तो कथानक में महाकाव्योचित विस्तार है, और न जीवन दशाओं तथा मानव सम्बन्धों की वह अनेकरूपता जो महाकाव्य के लिए आवश्यक है। खण्ड काव्य हम उसे इसलिए नहीं कह सकते क्योंकि उससे

कथानक में खण्ड काव्य की अपेक्षा विस्तार भी अधिक है और घटनाचक्र मे जीवन की विभिन्न स्थितियों तथा मानव सम्बन्धों की अनेकरूपता भी अपेक्षाकृत अधिक है। एकार्थ काव्य कहना भी उसे समीचीन इसलिए नहीं माना जा सकता क्योंकि उसके कथानक में सानुबद्धता आदि बाह्य लक्षण नहीं हैं, साथ ही घटना चक्र एवं कथानक के मोड़ एकार्थ काव्य की अपेक्षा अधिक हैं।

वस्तुतः मधुमालती फ़ारसी की मसनवी शैली के ढङ्ग पर लिखा हुआ प्रेमाख्यानक काव्य है और भारतीय महाकाव्य खण्ड काव्य अथवा एकार्थ काव्य की कसौटी पर कसा नहीं जा सकता। ऐसा करना उसके साथ अन्याय करना होगा। फारसी मसनवी पद्धति की उसमें सभी विशेषताएं विद्यमान हैं और उसके लक्षणों की कसौटी पर वह पूर्णतः खरा उतरता है। अतः महाकाव्य अथवा एकार्थ काव्य की अपेक्षा उसके लिए प्रेमाख्यानक काव्य की संज्ञा ही सर्वाधिक समीचीन है। कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रेमाख्यानक काव्य की विशेषताओं एवं प्रवृत्तियों का सौन्दर्य एवं वैचित्र्य दोनों ही उसमें पर्याप्त मात्रा में हैं।

भाषागत सौन्दर्य —

भाषा कविता कामिनी का शरीर है। अतः काव्य में उसका वही महत्त्व है जो मानव-व्यक्तित्व में उसके शरीर का होता है। शरीर की संरचना में अस्थि, मांस, मज्जा, त्वचा एवं शरीरावयवों का आधार होता है और काव्य की संरचना में स्वरों व्यंजनों शब्दों एवं वाक्यों का। शब्दों के भावानुकूल चयन से भाषा में विभिन्न प्रकार के सौन्दर्य की सृष्टि होती है, अतः उनका महत्त्व भाषा के लिए अपरिमेय है। भावाभिव्यक्ति के लिए भावुक कवि उपयुक्त शब्द-चयन के लिए कितना प्रयत्न करता है, यह कदाचित् कहने की आवश्यकता नहीं। फ़ारसी के किसी कवि की निम्नांकित पंक्तियाँ किंचित् अत्युक्तिपूर्ण होते हुए भी इसी तथ्य की द्योतक हैं —

बराय पाकिय लफ्जे शबे बरोज आरन्द।
कि मुर्ग माहीओ बाशन्द खुफ्ता ऊ बेदार।[1]

(अर्थात् काव्य में एक मनोरम शब्द की प्रतिष्ठा के लिए कवि उस रात्रि को जागरण करके दिन में परिवर्तित कर देता है जिसमें पक्षी से लेकर मछली तक सभी प्राणी निद्रा में बेसुध रहते हैं।)

---

१ वैदेही वनवास (हरिऔध) वक्तव्य, पृ० ६ से उद्धृत।

इसी प्रकार काव्य-भाषा की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए श्री सुमित्रा-नन्दन पन्त लिखते हैं —

'कविता के लिए चित्र-भाषा की आवश्यकता पड़ती है, उसके शब्द सस्वर होने चाहिए जो बोलते हों, सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें, जो झंकार में चित्र, चित्र में झंकार हों जिनका भाव-सङ्गीत विद्युद्धारा की तरह रोम रोम में प्रवाहित हो सके, जिनका सौरभ सूँघते ही साँसों द्वारा अन्दर पैठ कर हृदयाकाश में समा जाय जिनका रस मदिरा की फेन राशि की तरह अपने प्याले से बाहर छलक उसके चारों ओर मोतियों की झालर की तरह झूलने लगे छत्ते में न समाकर मधु की तरह टपकने लगे अर्द्ध निशीथ की तारावली की तरह जिनकी दीपावली अपनी मौन जड़ता के अन्धकार को भेद कर अपने ही भावों की ज्योति में दमक उठे जिनका प्रत्येक चरण प्रियंगु की डाल की तरह अपने ही सौन्दर्य के स्पर्श से रोमांचित रहे जापान की द्वीप मालिका की तरह जिनकी छोटी-छोटी पंक्तियाँ अपने अन्तस्तल में सुलगी ज्वालामुखी को न दबा सकने के कारण अनन्त श्वासोच्छ्वासों के भूकम्प में काँपती रहें।'[1]

कहने की आवश्यकता नहीं कि मञ्झन काव्य-भाषा की इन विशेषताओं से पूर्णतः परिचित थे। उनके शब्द भावानुकूल, अर्थगर्भित एवं काव्यगुणोत्पादक हैं। उनकी भाषा में काव्य भाषा की पूर्वोल्लिखित समस्त विशेषताएँ विद्यमान हैं। उनका शब्द विन्यास तथा उनका यथोचित स्थान पर सस्थान देखते ही बनता है। उनकी भाषा में काव्य गुणों की समुचित योजना ने उनके काव्य सौन्दर्य को और भी बढ़ा दिया है। अतः उनके भाषागत सौन्दर्य के सम्यक् निरूपण के लिए अब हम उसके विभिन्न अवयवों, उसके विभिन्न उपकरणों का पृथक्-पृथक् अध्ययन करेंगे।

गुण वैधानिक-सौन्दर्य :—

गुण वैधानिक सौन्दर्य से आशय प्रसाद, माधुर्य, ओज आदि विभिन्न काव्य गुणों से उद्भूत सौन्दर्य से है। मम्मट के अनुसार मानव शरीर में प्रधान आत्मा के जिस प्रकार शूरता आदि गुण होते हैं उसी प्रकार काव्य में प्रधान रस के

---

१ सुमित्रानन्दन पन्त पल्लव पल्लव प्रवेश, पृ० १७-१८।

उत्कर्ष विधायक अथवा महत्त्व प्रदाता जो धर्म हैं वे गुण कहलाते हैं, जैसे शूरता आदि गुण आत्मा ही के होते हैं न कि शरीर के आकार (स्वरूप) के, वैसे माधुर्य, ओज, प्रसाद आदि गुण रस के ही होते हैं न कि वर्णों के।[1] वामन के अनुसार काव्य शोभा के उत्पादक धर्मों को गुण कहते हैं —

"काव्य शोभाया कर्त्तारो धर्मा गुणाः"[2]

गुणों की संख्या साधारणतः तीन मानी जाती है। किन्तु प्राचीन साहित्य-शास्त्र में उनकी संख्या अधिक मानी गया है। भरत ने दस गुण माने हैं। उनके परवर्ती आचार्य स्वतन्त्रता से काम लेकर उनकी संख्या में वृद्धि करते गए हैं। अग्निपुराण में उनकी संख्या १६ मानी गयी है। वामन ने १० गुण शब्द के और १० अर्थ के मानकर उनकी संख्या २० कर दी है। भोजराज ने उनकी संख्या में और भी अधिक वृद्धि कर दी है। उन्होंने शब्द एवं अर्थ दोनों के ही पृथक्-पृथक् २४ गुण मानकर उनकी संख्या ४८ मानी है। किन्तु सूक्ष्म रूप से देखने पर गुणों की संख्या भले ही कितनी ही प्रतीत हो पर उनमें प्रसाद माधुर्य एवं ओज ये तीन गुण ही विशेष महत्त्व के हैं। काव्य में इनके अभाव में सौन्दर्य का अस्तित्व सम्भव नहीं। अतः यहाँ हम इन्हीं के आधार पर मधुमालती के सौन्दर्य का उद्घाटन करेंगे।

प्रसाद —

प्रसाद गुण का महत्त्व काव्य में अपरिमेय है। नव रसों में कोई ऐसा रस नहीं जिसमें उस की आवश्यकता न हो। काव्य-जगत् की कोई ऐसी स्थिति नहीं जहाँ उसके अस्तित्व से उसकी शोभा-वृद्धि न हो। उससे रहित काव्य का कोई महत्त्व नहीं। उर्दू के प्रसिद्ध कवि ग़ालिब की कविता ग़ालिब की म युक्त कविता को सुनकर उन्हें लक्ष्य करके कही गयी हकीम आगा जान की निम्नांकित पंक्तियाँ इसके इसी महत्त्व की परिचायिका हैं —

अगर अपना कहा तुम आप ही समझे तो क्या समझे ?
मज़ा कहने का जब है इक कहे और दूसरा समझे।

---

१ दर्पित मम्मट, काव्य प्रकाश द्वि० स०, मा० स० पृ० २८ -२८४।

२ वामन, काव्यालंकार सूत्र ३।१।१।

कलामे मीर समझे श्रौ जबाने "मीरजा" समझे।
मगर इनका कहा यह श्राप समझें या खुदा समझे।[१]

उसके इसी महत्त्व के कारण कवि कुल–चूडामणि महात्मा तुलसीदास यह घोषणा कर गए हैं –

सरल कवित कीरति विमल सोइ श्रादरहिं सुजान।[२]

इसीलिए प्राचीन एव नवीन सभी कवियो ने इस गुण की महत्ता को मा यता दी है। श्राज भी कवि गण इस की महत्ता को पूववत् स्वीकार करते हैं —

हम भी श्रब लौटें भाषा की सरलता की श्रोर। शोधक श्रौर वैज्ञानिक शास्त्रों में कठिन शब्दो का उपयोग चाहे करें, कितु जन जन को रसदान करने वाली वाणी की यह कठिनता नहीं शाभेगी।[३]

तथा

'बोध के मौलिकता के पथ के पागल हम कभी कभी श्राकाश की तरह ऊ च विचारों को व्यक्त करते हैं हम बुरा नहीं करते। कि तु उस समय बोली भी हम श्रास मान की तरह पहु च के बाहर की बोलने लगते हैं। नहीं, श्रासमान के से विचार हों, परतु हम जमीन पर हैं यह न भूलें। हम जो बोलना होगा, जमीन की बोली में बोलना होगा। वे जमीन पर रहते हैं जिनमें हम जन्मे हैं।'[४]

एव

जिस तरह हम बोलते हैं
उस तरह तू लिख।[५]

---

१ माधुरी, चैत्र, स० १९८८, पृ० ३६४।
२ रामचरितमानस, बालकाण्ड, पृ०४७।
३ माखनलाल चतुर्वेदी, सुप्रभात, मार्च ५७, पृ० ७६।
४ वही, विशाल भारत दि० ४१, पृ० १७।
५ भवानीप्रसाद मिश्र, दूसरा सप्तक।

मंझन प्रसाद गुण के इस महत्त्व से कितने परिचित थे, यह उनकी कृति 'मधुमालती' से स्पष्ट विदित होता है। उनके काव्य में इस गुण का महत्त्व पूर्णत सुरक्षित है। उनकी पंक्तियों में से छलकता अर्थ अंगूर के रस के समान स्पष्ट झलकता है। अपने काव्य में प्रसाद गुण के महत्त्व की उन्होंने जितनी रक्षा की है उतनी प्राय अन्य कवि कम कर पाते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह उनकी बहुत बड़ी विशेषता है। उनके काव्य में प्रसाद गुणोद्भूत सौन्दर्य प्राय सर्वत्र विद्यमान है। निम्नांकित स्थल इस विषय में विशेष द्रष्टव्य हैं —

(i) चौक चमक नभि मैं न समारा। परेउ सुरुद्धि जस बीज क मारा।
तहि महं बसै रा जीन अमारो। बोलत अमिय मानि जनु मानी।
परत निष्टि तिन मुनु मति माऊ। भएउ जैस तिन बिनु सिर पाऊ।
दखि कपार कै स्तक भानाई। नित उठि मुकुर छार मुख लाई।
चमकहि बीरि मदन दुइ मारा। बीनु छूग जस नएउ म जारा।[1]

(ii) बिबि कुच स्याम छत्र धिर दीत। गड आइ ननहि अनचीत।
भरले दुओ वीर जित हरिया। जो न हार हात बिच धरहरिया।

पून कलस भ भित रस पूर बिबि कुच कठिन कठोर।
बावन बाला दमगत दखड बिदरित कनक कचार।[2]

(iii) राज साज सब गा उत भटा। मधुमालति कर दुख सब रगा।
दहु दिसि फिरि नैं कोइ नाहीं। रही एक वह सप परछाहीं।
जहि बन कबहु न मानुस आवा। तहि बन विधि ल कुवर अनावा।

पुनि उठि कुवर चला बन माहीं। ज । पन्थि पर मारत नाहीं।
अगम पथ दुख माथ न काई। बिन भाव बिन बस राइ।

सीस गहिर पाइ आवे पाव गहिर गिर जाइ
वर सहस जौ बसै बोंगुएक धार गिराइ।[3]

---

१ मधुमालती (सं०डा०गुप्त) राज सं०, पृ० ४२५-४२६।
२ वही, वही पृ० ४२३।
३ वही, वही पृ० १२१।

(iv) पीतम पीतम मधु जिय मजा। मधुमालति सम घधा तजा।
छाडेउ मया मोह सयसारा। छाडेउ कुटुब लोग परिवारा।
छाडी सखीं सघ जो खेलीं। छाडेउ रहस चाउ सुख केली।
छाडेउ भोग भुगुति जिय ग्रासा। छाडेउ मता पिता घर वासा।
छाडेउ ग्ररथ दरब मम ग्राघी। छाडेउ जन परिजन सघ साथी।

छाडेउ राजपाट सुख सज्या रनि नींदि दिन भूख।
छाडेउ चित्त चाउ सुख का ह बसरा रूख।[1]

(v) फुनि जौना कह बूझैं राऊ। बिसमौ नगर कहहि केहि भाऊ।
हरपवन कोउ कतहु न देखय। कारन कौन दुखी सभ पेखिय।
जौन कहा सुनहु नरनाग। बिसमौ नगर बात मोहि पाहा।
बिक्रम राउ निपति एहि गाऊ। रानिहि रूप मजरी नाऊ।
बिक्रम तेज ग्रनल जनु बर। सुरुज बस जेहि कलि उद्धर।

पुत्री एक प्रत कै तेहि कुल ग्राइ ली ह ग्रवतार।
नाउ ताहि मधुमालति त्रिभुवन कर उजियार।[2]

माधुर्य :—

जीवन म जिस प्रकार माधुय एव मधु का महत्त्व है का य जगत् म उसी प्रकार माधुय गुण का भी है। कविता के लिए श्रुति मधुरता ग्रावश्यक है। कणकटु शब्द उसम उसी प्रकार स्पृ णीय नही हाते जिस प्रकार काक समुदाय का 'काँव काँव' ग्रथवा श्री वशाखन दन का कक्श स्वर। कि तु माधुय की ग्रपेक्षा जिस प्रकार जीवन के कोमल पक्ष में ही है, माधुय गुण की ग्रावश्यकता भी उसी प्रकार केवल कोमल रसों के क्षेत्र में ही है। कठोर रसों में उसका ग्रस्तित्व गुणोत्पादक ग्रथवा सौ दय विधायक न होकर दोषोत्पादक एव वैरूप्यवद्धक हो जाता है। वीर रौद्र भयानक ग्रादि कठोर रसों में इस गुण की योजना उसी प्रकार निषिद्ध है जिस प्रकार युद्ध भूमि में रणोद्यत वीर के लिए मादक विलास ग्रथवा कामोपासना।

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त) राज स० पृ० ३०७।
२ वही, वही, पृ० ३३२।

माधुर्योद्भूत सौन्दर्य वहाँ होता है जहाँ कवि श्रुति-मधुर वर्णों के विन्यास द्वारा काव्य को अधिकाधिक श्रुति मधुर एवं स्पृहणीय बनाने का प्रयत्न करता है। कवि ऐसे स्थलों पर प्रयत्नपूर्वक उन शब्दों का बहिष्कार करता है जो कर्ण-कटु होते हैं। टवर्गीय वर्ण, र के संयोग से बने शब्द, द्वित्व वर्ण, संयुक्त वर्ण, लम्बे-लम्बे समासों वाले वाक्यांश आदि का ऐसे काव्य स्थलों में निषेध रहता है। दूसरे शब्दों में जो बातें ओज गुणोत्पादनार्थ आवश्यक हैं माधुर्य गुण के लिए वही निषिद्ध हैं। इसी प्रकार जो वर्ण अथवा शब्द अपने माधुर्य के कारण कोमल रसों के लिए वांछनीय हैं, वही कठोर रसों के लिए अनीष्ट।

मधुमालती शृंगार रस प्रधान काव्य है। अतः उसमें माधुर्य गुण का प्राचुर्य स्वाभाविक है। शृंगार एवं प्रेम वृत्ति प्रधान मंझन इस गुण की योजना में पटु हैं। किन्तु उन्होंने इसके लिए रीतिकालीन अथवा अन्य माधुर्य प्रेमी कवियों के समान कोई विशेष प्रयास नहीं किया, अनायास ही काव्य प्रक्रिया में उसकी सृष्टि हो गई है। इसके अतिरिक्त ठेठ अवधी के स्वाभाविक माधुर्य तथा अनुस्वार के प्रयोग-बाहुल्य से भी उसकी सृष्टि में पर्याप्त योग मिला है। अतः उनकी काव्य-सरिता में वह लबालब भरा दीखता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इस गुण के प्राचुर्य से मंझन की काव्य चारुता में पर्याप्त वृद्धि हुई है। मधुमालती के निम्नांकित अवतरण इस विषय में द्रष्टव्य हैं —

(i) मैं अपन जिउ ओहि पर वारौं। चरन रेनु बदनिन्ह मह ढारौं।
सीस धरौं ओहि पाव लगाई। चरनन तर दुहुँ माथ धराई।
आहि मोहि लागि महा दुख भारी। मैं ओ करौं जीउ बलिहारी।

सोजि रहउ किछु नाहीं जो आरति न जाउ।
जिउ अति किंचित थोरा आरति करत लजाउ।[1]

(ii) जिय हुलास मन हरख अनन्दू। कवल कुमुद जिमि निरखत चन्दू।
कहा कुवर सुनु राजकुमारी। ताहि सौं कहेंनि बचा मैं भारी।
सुबचन किहें मोहि प्रतिपारा। अब मोहि किए बार उपकारा।
मैं निरास जा बिनु जिय नाथा। अमिय छिरकि तुइ मोहि जियाधा।[2]

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त), राज सं० पृ० ४२।
२ वही वही, पृ० २१२।

(iii) ओइ मवने रस सेउ बोरानी। फूलहिं गाइ गाइ पिक बानी।
फूलहिं सम जीवन मद माती। ग्राचर उडहिं न मापहिं छाती।

फूलहिं पैगहिं डोर गहे कर वीरीं चमकहिं कान।
जानहु सुरहिनि सरग सेउ ग्रावहि चढी वेवान।[1]

(iv) पुनि एक सघ दुवौ जन चलि ग्राए चित्रसारि।
सखिन्ह सघ जह भूलै बित्रम तनीं कुवारि।[2]

(v) सुनि मधुमालति रहस सेउ उठि गौनी लखराउ।
सघ सखी सम धाई सुनि भूलनि वर नाउ।[3]

(vi) गुनि गुनि लगन पडितन्ह धरी। सुभ्म बिचारि मुहूरत करी।
पुनि उठि राउ महल मह आवा। रानी सेउ कहि बात जनावा।
सुनि रानी किय मगल चारा। हरख निसान बजावहिं बारा।[4]

(vii) चली छत्तीसौ पौनि कुवर सघ चित्रसेनि क ग्रान।
जोजन सात चहूँ दिसि जग उजियाली भान।[5]

ओज —

मभन कोमल मन मस्तिष्क कलाकार हैं। उनका मन कोमल रसों के वर्णन के प्रसग म जितना रमता है, उतना ग्रन्य रसो के वर्णन में नही। उनका हृदय एव मन प्रेम एव सौदर्य से अभिभूत रहता है। यही कारण है कि ग्रन्य रसो की कल्पना के लिए उनके पास प्राय अवकाश नही रहता। मधुमालती में ग्राई हुई घटनाए तथा प्रसग इसके प्रमाण हैं। राजकुमार मनोहर तथा ताराचद के जीवन व्यापारों में वीर रस पूर्ण कार्यों के लिए वह स्थान न ी, जा प्राय प्राचीन वीर काव्यों

१ मधुमालती (डा०गुप्त), राज स० पृ० ४१५।
२ वही वही पृ० ४१४।
३ वही, वही पृ० ४१२।
४ वहा, वही, पृ० ३८४।
५ वही, वही, पृ० ३८७।

अथवा महाकाव्यों की विरूपता है। मनोहर द्वारा राक्षस वध का प्रसंग मधुमालती में अवश्य आया है किन्तु उसमें नायक के वीरतापूर्ण कार्यों के वर्णन में मंझन की कोई अपनी विशेषता लक्षित नहीं होती। लगता है कि उसके वर्णन में मंझन का या तो मन नहीं रमा या उनमें उसकी अभीष्ट क्षमता नहीं। ओज गुण का सम्बन्ध वीर, भयानक रौद्र आदि कठोर रसों से युक्त कथानक है। अतः मधुमालती में उसका समावेश राक्षस वध के प्रसंग में ही किया जा सकता था। किन्तु वीर एवं रौद्र रसों में विशेषतः और वीभत्स एवं भयानक रसों में सामान्यतः पाये जाने वाले इस गुण के लिए द्वित्व, संयुक्त रेफ एवं मूर्द्धन्य टकार युक्त वर्णों ट, ठ, ड, ढ, से बने हुए शब्दों तथा लम्बे लम्बे समासों के प्रयोग प्रचुर की भी अपेक्षा है। उनसे इस गुण की जैसी रसात्मक योजना हो सकती है, वैसी अन्यथा नहीं। मंझन ने इस तथ्य का ध्यान नहीं रखा। इसके अतिरिक्त अनुस्वारादि स्वरों तथा कोमल एवं श्रुति मधुर वर्णों एवं शब्दों का सप्रयास बहिष्कार भी मंझन ने इस प्रसंग में नहीं किया। फलतः उसमें ओज गुणोद्भूत सौन्दर्य की वह सृष्टि न हो सकी जो अन्यथा हो सकती थी। फिर भी इस प्रसंग में इस गुण की यत्किंचित् योजना अवश्य हुई है इसमें सन्देह नहीं। उदाहरणार्थ यथोक्ति अवतरण प्रस्तुत हैं –

(i) राकस डर का माहि डरावसि। भगिनि मरम का छार उड़ावसि।
राकस कर पार का मारा। सहस काट भर दखि अजारा।
राकस प्रान देखु कस हरऊ। एक निमिख महँ कस संघरऊ।
खरग पानि मुख आगि उगावौं। राकस धूरि बतास उड़ावौं।
आइ बन रन जौं भाजै। कुल कलंक चढ़ जननी लाज।[1]

(ii) सुनत कुँवर केरे बिस बैना। रिसहुत भए रात दुइ नैना।
बचन सबन परतहि रिसियाना। गरजा जिमि अंबर घहराना।
झपटि कहसि जियतहि धरि फारौं। टूक-टूक कै नखु सिखि डारौं।
झपटत कुँवर खरग सौं छूटी। एक साथ बिबि-भुज गए टूटी।
निठुरि साथ भुज लिहसि उचाई। कूद मारि औ गएउ पराई।
निमिख माह फिरि आवा भुज औ माथ लगाइ।
बहुरि कुँवर सेउ जूझ कह ठाढ़ भएउ समुहाइ।[2]

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त) राज सं०, पृ० २१८।
२ वही वही पृ० २२५–२२६।

(iii) राकस चार रिसाइ पवारा। कुवर मोहि इ आपु उचारा।
दोसर चाक पुनि निहसि समारी। कुवर दोंह ओडन सिर टारी।
चाक आइ ओडन तस लागा। अगिनि भभूर सरग गे लागा।
(गे नागा)।

बहुरि कुवर कर पलटेउ दाऊ। झपटि किएसि राकस सिर घाऊ।
पाच माथ जाकी बड करा। सरग घाउ सोई खसि परा।[1]

शब्द-शक्तिगत अथवा शब्द-शक्त्युद्भूत सौन्दर्य :—

शब्दों की वह शक्ति जिसके आधार पर उनके अर्थ का बोध होता है 'शब्द शक्ति' कहलाती है। साहित्य शास्त्रियों ने प्राय तीन प्रकार की शब्द शक्तियों का उल्लेख किया है—*अभिधा, लक्षणा तथा व्यजना। शब्द के सकेतित प्रसिद्ध अथवा* मुख्यार्थ का बोध कराने वाली शक्ति को अभिधा, जिस व्यापार द्वारा इस अर्थ का बोध होता है, उस अभिधा व्यापार और जिस शक्ति अथवा व्यापार द्वारा इस अर्थ का बोध होता है उसे अभिधेयार्थ अथवा वाच्यार्थ कहते हैं। वाच्यार्थ वस्तुत शब्द का मूल अर्थ होता है जो प्राय कोशो म उपलब्ध होता है। किन्तु जब किसी शब्द का वाच्यार्थ ग्रहण करने मे कोई बाधा हो अथवा जब किसी शब्द के मूल अथवा उससे सकेतित अर्थ के ग्रहण करने म कोई कठिनाई हो और उस कठिनाई अथवा व्यवधान के कारण मुख्यार्थ से भिन्न उसका कोई अन्य अर्थ, जो मुख्यार्थ से किसी न किसी रूप में सबद्ध हो, ग्रहण किया जाय तो उस अर्थ का बोध कराने वाली शक्ति को लक्षणा जिस व्यापार द्वारा उस अर्थ का बोध होता है उस लक्षणा व्यापार और उस शक्ति अथवा व्यापार द्वारा व्यक्त होन वाले अर्थ को लक्ष्यार्थ कहते हैं। अभिधा अथवा लक्षणा द्वारा प्रकट होने वाले अर्थ के अनन्तर जब किसी अन्य विशेष अर्थ का बोध होता है तो वह व्यग्यार्थ कहलाता है। जिस शक्ति द्वारा इस अर्थ का ज्ञान होता है उसे व्यजना और जिस व्यापार द्वारा यह अर्थ—बोध होता है उसे व्यजना व्यापार कहते हैं।

कहना न होगा कि शब्दशक्त्युद्भूत सौन्दर्य आभिव्यक्तिक सौन्दर्य का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है और काव्य-सौन्दर्य की अभिवृद्धि में पर्याप्त योग देता है। मझन उसके इस महत्व से परिचित थे। मधुमालती म उन्होंने इसका यथेष्ट समावेश किया

---

[1] मधुमालती, डा० गुप्त राज स०, पृ० २३२—२३३।

अथवा महाकाव्यों की विशेषता है। मनोहर द्वारा राक्षस वध का प्रसंग मधुमालती में अवश्य आया है किन्तु उसमें नायक के वीरतापूर्ण कार्यों के वर्णन में मंझन की कोई अपनी विशेषता लक्षित नहीं होती। लगता है कि इस प्रकार के वर्णन में मंझन का या तो मन नहीं रमा या उनमें उसकी पर्याप्त क्षमता नहीं। ओज गुण का उद्रेक वीर, तथा रौद्र आदि कठोर रसों से युक्त रचनाओं में है। अतः मधुमालती में उसका समावेश राक्षस वध के प्रसंग में ही किया जा सकता था। किन्तु वीर एवं रौद्र रसों में विशेषतः और वीभत्स एवं भयानक रसों में सामान्यतः पाये जाने वाले इस गुण के लिए द्वित्व संयुक्त, रेफ एवं मध्य रकार युक्त वर्णों ट, ठ, ड, ण, से बने हुए शब्दों तथा लम्बे लम्बे समासों के प्रयोग से युक्त शैली की आवश्यकता है। उसमें इस गुण की जैसी रसात्मक व्यंजना हो सकती है वैसी अन्यथा नहीं। मंझन ने इस तथ्य का ध्यान नहीं रखा। इसके अतिरिक्त अनुस्वारादि स्वरों तथा कोमल एवं श्रुति मधुर वर्णों एवं शब्दों का सम्प्रयोग बहिष्कार भी मंझन ने इस प्रसंग में नहीं किया। फलतः उसमें ओज गुणोद्भूत शैली रूप की वह सृष्टि नहीं हो सकी जो अन्यथा हो सकती थी। फिर भी इस प्रसंग में इस गुण की यत्किंचित् व्यंजना अवश्य हुई है इसमें सन्देह नहीं। उदाहरणार्थ निम्नांकित अवतरण प्रस्तुत है —

(i) राकस डर का माहि डरावसि। अगिनि भसम का छार उड़ावसि।
राकस करै धार का मारा। सहस काट भर दलि अधारा।
राकस प्रान देहु कस हरऊ। एक निमिख महं कस संघरऊ।
खरग पानि मुठ आगि उठावौं। राकस धूरि बतास उड़ावौं।
आइ बनै नओ जो नावै। छत्र कनक चहं अननी लाज।[1]

(ii) सुनत कुंवर कर विस बना। रिसन्ह भए राते दुइ नैना।
बचन सबद परतहिं रिसियाना। गरजा जिमि अंबर घहराना।
झपटि बहुसि त्रियनहि धरि फारी। टूक-टूक कै मंहु जिमि डारी।
झपटत कुंवर खरग भी छूटी। एक साथ बिधि भुज गए टूटी।
निठुरि माथ भुज लिहसि उचाई। कूक मारि भो गएउ पराई।
निमिख माह फिरि आवा भुइं सो माथ लगाइ।
बहुरि कुंवर सेउ जूझ कहं ठाढ़ भएउ समुहाइ।[2]

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त) राज सं०, पृ० २१६।
२ वही वही पृ० २२५–२२६।

(iii) राक्स चाक रिमाइ पचारा । कुवर ओडि क आपु उवारा ।
दोसर चाक फुनि लिहेसि सभारी । कुवर दीन्ह ओडन सिर टारी ।
चाक आइ ओडन तस लागा । अगिनि भभूक सरग गै लागा ।
(ग नागा) ।

बहुरि कुवर करपलटेउ दाऊ । झपटि किएसि राकस सिर घाऊ ।
पाव माथ जाकी बड करा । खरग धाउ सोई खसि परा ।[1]

शब्द-शक्तिगत अथवा शब्द-शक्त्युद्भूत सौन्दर्य :—

शब्दो की वह शक्ति जिसके आधार पर उनके अर्थ का बोध होता है 'शब्द शक्ति' कहलाती है । साहित्य शास्त्रियों ने प्राय तीन प्रकार की शब्द शक्तिया का उल्लेख किया है—अभिधा, लक्षणा तथा व्यजना । शब्द के सकेतित प्रसिद्ध अथवा मुख्यार्थ का बोध कराने वाली शक्ति को अभिधा, जिस व्यापार द्वारा इस अर्थ का बोध होता है उसे अभिधा व्यापार और जिस शक्ति अथवा व्यापार द्वारा इस अर्थ का बोध होता है उसे अभिधेयार्थ अथवा वाच्यार्थ कहते हैं । वाच्यार्थ वस्तुत शब्द का मूल अर्थ होता है जो प्राय कोशो म उपलब्ध होता है । किन्तु जब किसी शब्द का वाच्यार्थ ग्रहण करने म कोई बाधा हो अथवा जब किसी शब्द के मूल अथवा उससे सकेतित अर्थ के ग्रहण करने म कोई कठिनाई हो और उस कठिनाई अथवा व्यवधान के कारण मुख्यार्थ से भिन्न उसका कोई अन्य अर्थ, जो मुख्यार्थ से किसी न किसी रूप में सबद्ध हो, ग्रहण किया जाय तो उस अर्थ का बोध कराने वाली शक्ति को लक्षणा, जिस व्यापार द्वारा उस अर्थ का बोध होता है उसे लक्षणा व्यापार और उस शक्ति अथवा व्यापार द्वारा व्यक्त होने वाले अर्थ को लक्ष्यार्थ कहते हैं । अभिधा अथवा लक्षणा द्वारा प्रकट होने वाले अर्थ के अनन्तर जब किसी अन्य विशेष अर्थ का बोध होता है तो वह व्यग्यार्थ कहलाता है । जिस शक्ति द्वारा इस अर्थ का ज्ञान होता है उसे व्यजना और जिस व्यापार द्वारा यह अर्थ—बोध होता है उसे व्यजना व्यापार कहते हैं ।

कहना न होगा कि शब्दशक्त्युद्भूत सौन्दर्य आभिव्यक्तिक सौन्दर्य का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है और काव्य सौन्दर्य की अभिवृद्धि मे पर्याप्त योग देता है । मझन उसके इस महत्त्व से परिचित थे । मधुमालती में उन्होंने इसका यथेष्ट समावेश किया

---

१ मधुमालती, डा० गुप्त, राज स०, पृ० २३२—२३३ ।

है। अतः भाषा के शब्द-शक्तिगत सौन्दर्य के विश्लेषण के लिए अब हम इन शब्द-शक्तियों से उद्भूत सौन्दर्य का पृथक सविस्तार उल्लेख करेंगे।

अभिधागत सौन्दर्य —

जीवन के अन्य क्षेत्रों की भाँति साहित्य शास्त्रियों में शब्द शक्तियों के महत्व के सम्बन्ध में भी पर्याप्त मतभेद है। यदि एक ओर कतिपय आचार्य अभिधा को अधिक महत्व प्रदान करते हैं तो दूसरी ओर अन्य विद्वान् लक्षणा तथा व्यंजना को अधिक महत्व देते हैं। अभिधा को महत्व प्रदान करने वाले आचार्यों का कथन है कि अभिधा अग्रिमा शक्ति है लक्षणा एवं व्यंजना के व्यापार अभिधा पर ही निर्भर रहते हैं। लाक्षणिक अर्थ भी अभिधेयार्थ से कुछ न कुछ सम्बद्ध रहता है और व्यंजना भी अभिधा के आधार पर ही चलती है। लक्षणामूला व्यंजना भी अभिधा के आश्रय से ही चलती है। रीतिकालीन आचार्य कवि देव ने लक्षणा तथा व्यंजना पर अभिधा की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए लिखा है —

> अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणा लीन।
> अधम व्यंजना रस कुटिल उलटी कहत नवीन।।[1]

साहित्यदर्पणकार ने सम्भवतः इसीलिए अभिधा को अग्रिमा शक्ति कह कर सम्बोधित किया है। कतिपय काव्यशास्त्रियों ने अभिधा तथा लक्षणा को पृथक्-पृथक् शक्तियाँ नहीं माना है। नैयायिक लोग तो वाच्यार्थ के सम्बन्ध को ही लक्षणा मानते हैं। उनके अनुसार लक्ष्यार्थ केवल पद पर आधारित ही नहीं रहता, उसके वाच्यार्थ से भी सम्बद्ध रहता है। अभिधा वृत्ति मातृका के लेखक मुकुल भट्ट ने अभिधा तथा लक्षणा के तादात्म्य को सिद्ध करने में अपनी सारी शक्ति ही लगा दी है। अभिधा से वस्तुतः लक्षणा ही नहीं व्यंजना भी सम्बन्धित है। व्यंग्यार्थ जानने के लिए अभिधेयार्थ का परिज्ञान कितना आवश्यक है यह कदाचित् कहने की आवश्यकता नहीं। ध्वन्यालोककार ने भी वाच्यार्थ के परिज्ञान की इस आवश्यकता पर बल दिया है। एक प्राचीन आचार्य ने अभिधा शक्ति की महत्ता का उल्लेख करते हुए बाण से उसकी तुलना की है। काव्यप्रकाशकार मम्मट ने उसके मत का उल्लेख इस प्रकार किया है —

'सोऽयमिषोरिव दीर्घदीर्घतरो व्यापार यत्पर शब्द स शब्दार्थ इति'

---

१ शब्द रसायन षष्ठ प्रकाश, पृष्ठ ७२।

अर्थात् जिस प्रकार बाण का काय उत्तरोत्तर विद्ध करते जाना है उसी प्रकार अभिधा का काय भी उत्तरोत्तर अर्थ की अभिव्यक्ति करते जाना है।

किन्तु अभिधा का यह महत्त्व वस्तुत अनेकार्थवाची शब्दो के अर्थ निर्णय के प्रसग में ही माना जा सकता है। सामान्य शब्दार्थ की स्थिति में अभिधेयार्थ म कोई सौन्दर्य न रहने कारण उसका वह महत्त्व नहीं होता जो अनेकार्थवाची शब्दो के उन अभिधेयार्थ का होता है जिसका निर्णय सयोग, वियोग साहचर्य विरोध, अर्थ बल प्रकरण, सामर्थ्य, औचित्य, देश बल, काल बल, अन्य-सन्निधि और लिंग की १२ प्रणालियो के आधार पर किया जाता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन पद्धतियो के आधार पर अर्थ निर्णय के अवसर काव्य म प्राय कम आते हैं क्योंकि उसमे प्रयुक्त अनेकार्थी शब्दो की सख्या सीमित होती है। 'शख चक्र युत हरि लसै, साहत नाग न मद बिना, रामकृष्ण ब्रज भूपन जानो, 'राम बाहु अर्जुन के छेद्यो', 'भव-खेद-छेदन के लिए क्या स्थाणु को भजते नहीं, दल को साजत है उत कोऊ', मधु स मतवाले मनुष्य हैं य' रे मन सब सा निरस ह्वै सरस राम सो होहि' मरु मे जीवन दूरि है' 'कुवलय निसि फूल्यो', 'दान लसत है नाग सिर 'कुपित मकरध्वज हुआ मर्यादा सब जाती रही' जैसे अनेकार्थवाची शब्द काव्य म सवत्र कहा प्रयुक्त हो सकते हैं? प्रसग आने पर ही इनका प्रयोग किया जा सकता है। इन अनेकार्थवाची शब्दो के प्रयोग तथा उक्त १२ पद्धतियो के आधार पर किये जाने वाले अर्थ निर्णय म एक विशेष सौन्दर्य रहता है इसम कोई सन्देह नहीं हो सकता, किन्तु जैसा कि कहा जा चुका है इस प्रकार के स्थल प्राय काव्य म कम होते हैं। अत अभिधागत सौन्दर्य भी प्राय काव्य म कम देखने म आता है। यही कारण है कि इन स्थलों के अभाव मे प्राय यह मान लिया गया है कि अभिधेयार्थ म वह सौन्दर्य नहीं उसका वह महत्त्व नहीं जो लक्षणा तथा व्यजना का है। इन्ही आचार्य आनन्दवर्द्धन, काव्यप्रकाशकार मम्मट तथा अन्य अनेक आचार्यों ने लक्षणा एव व्यजना को इस लिए अधिक महत्त्व दिया है। किन्तु जैसा कि कहा जा चुका है अभिधा का अपना विशिष्ट महत्त्व है। यह बात दूसरी है कि उसके सम्यक प्रयोग की क्षमता सबमे समान नहीं होती।

मधुमालतीकार मझन ने अभिधा के आधार पर उक्त सौन्दर्य की योजना प्राय कम की है। उक्त १२ पद्धतियों के आधार पर अनेकार्थवाची शब्दों के प्रयोग की ओर उनका ध्यान नहीं गया। यह बात दूसरी है कि यत्र-तत्र उनके काव्य में उनका स्वत ऐसा प्रयोग हो गया है कि उससे उनके अभिधेयार्थ मे एक विशेष सौन्दर्य आ गया है। निम्नाकित स्थल इस विषय मे द्रष्टव्य हैं —

---

१ देखिये काव्य-कौमुदी (विश्वनाथप्रसाद मिश्र तृतीय कला) पृष्ठ २२—२५।

है। अत भमन के शब्द शक्तिगत सौन्दर्य के निरूपण के लिए अब हम इन शब्द—शक्तियों से उद्भूत सौन्दर्य का पृथक सविस्तर उल्लख करेंगे।

अभिधागत सौन्दर्य —

जीवन के अन्य क्षेत्रों की भाँति साहित्य शास्त्रियों में शब्द शक्तियों के महत्व के सम्बन्ध म भी पर्याप्त मतभेद है। यदि एक ओर कतिपय आचार्य अभिधा को अधिक महत्व प्रदान करते हैं तो दूसरी ओर अन्य विद्वान् लक्षणा तथा व्यजना को अधिक महत्व देते हैं। अभिधा का महत्व प्रदान करने वाले आचार्यों का कथन है कि अभिधा अग्रिमा शक्ति है लक्षणा एव व्यजना के व्यापार अभिधा पर ही निर्भर रहते हैं। लाक्षणिक अर्थ भी अभिधेयार्थ से कुछ न कुछ सबद्ध रहता है और व्यजना भी अभिधा के आधार पर ही चलती है। लक्षणामूला व्यजना भी अभिधा के आश्रय म ही चलती है। रीतिकालीन आचार्य कवि देव ने लक्षणा तथा व्यजना पर अभिधा की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हुए लिखा है —

> अभिधा उत्तम काव्य है, मध्य लक्षणा लीन।
>
> अधम व्यजना रस कुटिल, उलटी कहत नवीन ।।[१]

साहित्यदर्पणकार ने सम्भवत इसीलिए अभिधा को अग्रिमा शक्ति कह कर सबोधित किया है। कतिपय काव्यशास्त्रियों ने अभिधा तथा लक्षणा को पृथक पृथक शक्तियाँ नहीं माना है। नयायिक लोग तो वाच्यार्थ के सम्बन्ध को ही लक्षणा मानते हैं। उनके अनुसार लक्ष्यार्थ केवल पद पर आधारित ही नहीं रहता, उसके वाच्यार्थ से भी सबद्ध रहता है। अभिधा वृत्ति मातृका के लेखक मुकुल भट्ट ने अभिधा तथा लक्षणा के तादात्म्य को सिद्ध करने म अपनी सारी शक्ति ही लगा दी है। अभिधा से वस्तुत लक्षणा ही नहीं, व्यजना भी सम्बन्धित है। व्यग्यार्थ जानने के लिए अभिधेयार्थ का परिज्ञान कितना आवश्यक है यह कदाचित् कहने की आवश्यकता नहीं। ध्वन्यालोककार ने भी वाच्यार्थ के परिज्ञान की इस आवश्यकता पर बल दिया है। एक प्राचीन आचार्य ने अभिधा शक्ति की महत्ता का उल्लेख करते हुए बाण से उसकी उपमा दी है। काव्यप्रकाशकार मम्मट ने उनके मत का उल्लेख इस प्रकार किया है —

> सो यमिषोरिव दीर्घदीर्घतरो व्यापार यत्पर शब्द स शब्दार्थ इति"

---

१ शब्द रसायन, षष्ठ प्रकाश, पृष्ठ ७२।

अर्थात् जिस प्रकार बाण का काय उत्तरोत्तर विद्ध करते जाना है उसी प्रकार अभिधा का काय भी उत्तरोत्तर अर्थ की अभिव्यक्ति करते जाना है।

किन्तु अभिधा का यह महत्त्व वस्तुत अनेकार्थवाची शब्दों के अर्थ निर्णय के प्रसग में ही माना जा सकता है। सामान्य शब्दार्थ की स्थिति या अभिधेयार्थ मे कोई सौ दय न रहने कारण उसका वह महत्त्व नहीं होता जो अनेकार्थवाची शब्दों के उस अभिधेयार्थ का होता है जिसका निर्णय सयोग, वियोग, साहचय विरोध, अर्थ बल प्रकरण, सामर्थ्य, औचित्य देश बल, काल बल, अन्य-सन्निधि और लिंग की १२ प्रणालियो के आधार पर किया जाता है। कहने की आवश्यकता नही कि इन पद्धतियो के आधार पर अर्थ निर्णय के अवसर का य म प्राय कम आते हैं क्योंकि उसमे प्रयुक्त अनेकार्थी श ों की सख्या सीमित होती है। 'शख चक्र युत हरि लसे, सोहत नाग न मद बिना, रामकृष्ण व्रज भूपन जानो, 'राम बाहु अर्जुन के छेदो', 'भव खेन्छेन्न के लिए क्यों स्थाणु को भजते नहीं', दल को साजत है उत कोऊ', मधु स मतवाल मनुष्य हैं य' रे मन सब सो निरस ह्वै सरस राम सो होहि', मरु मे जीवन दूरि है कुवलय निसि फूल्यो', 'नाग लसत है नाग सिर' 'कुपित मकरध्वज हुआ मर्याद सब जाती रही'[1] जैसे अनेकार्थवाची श द का य में सवत्र कहा प्रयुक्त हो सकते हैं? प्रसग आने पर ही इनका प्रयोग किया जा सकता है। इन अनेकार्थवाची शब्दों के प्रयोग तथा उक्त १२ पद्धतियों के आधार पर किये जाने वाले अर्थ निर्णय म एक विशेष सौन्दय रहता है इसम कोई स देह नहीं हो सकता, किन्तु जसा कि कहा जा चुका है, इस प्रकार के स्थल प्राय काव्य मे कम होते हैं। अत अभिधागत सौ दय भी प्राय काव्य म कम देखने म आता है। यही कारण है कि इन स्थलों के अभाव मे प्र य यह मान लिया गया है कि अभिधेयार्थ म वह सौ दय नही उसका वह महत्त्व नहीं जो लक्षणा तथा व्यजना का है। ध्वन्याचार्य आनन्दवर्द्धन, काव्यप्रकाशकार मम्मट तथा अन्य अनेक आचार्यों ने लक्षणा एव व्यजना को इस लिए अधिक महत्त्व दिया है। किन्तु जैसा कि कहा जा चुका है अभिधा का अपना विशिष्ट महत्त्व है। यह बात दूसरी है कि उसके सम्यक् प्रयोग की क्षमता सबमे समान नहीं होती।

मधुमालतीकार मझन ने अभिधा के आधार पर उक्त सौन्दय की योजना प्राय कम की है। उक्त १२ पद्धतियों के आधार पर अनेकार्थवाची शब्दों के प्रयोग की ओर उनका ध्यान नहीं गया। यह बात दूसरी है कि यत्र-तत्र उनके काव्य में उनका स्वत ऐसा प्रयोग हो गया है कि उससे उनके अभिधेयार्थ म एक विशेष सौन्दय आ गया है। निम्नाकित स्थल इस विषय मे द्रष्ट य हैं —

---

१ देखिये काव्याग-कौमुदी (विश्वनाथप्रसाद मिश्र तृतीय कला) पृष्ठ २२--२५।

कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त अवतरणों में प्रयुक्त रेखांकित शब्द अनेकार्थवाची हैं और उक्त प्रसङ्गों में उनके अर्थ का निर्णय अभिधा शक्ति की विभिन्न पद्धतियों के आधार पर ही किया जा सकता है। अत स्पष्ट है कि इन प्रसगो मे उनके अर्थ मे जो सौन्दर्य है वह अभिधा शक्ति का ही प्रसाद है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने से विदित होगा कि प्रथम अवतरण के 'भाउ' शब्द का प्रयोग मनोदशा' तथा 'प्रकार' दो अर्थों मे होता है, किन्तु यहा जिस प्रकरण म उसका प्रयोग हुआ है और जिस प्रकार के शब्द के साथ हुआ है, उससे इसका अर्थ 'प्रकार ही लिया जा सकता है, 'भाव नही। इसी प्रकार इस अवतरण के 'पिंगल' और बादि' शब्द भी अनेकार्थवाची है। पिंगल का अर्थ पीला एव छन्दशास्त्र और वादि' का अर्थ वाद विवाद तथा व्यर्थ होते हैं, किन्तु कोक' के साहचर्य म होने के कारण पिंगल' का अर्थ छन्दशास्त्र और विद्या के प्रसङ्ग में होने के कारण 'वादि का अर्थ वाद-विवाद होगा।

द्वितीय अवतरण म बीर', 'काम हथोरा' तथा धनि' शब्द अनेकार्थवाची हैं—बीर के अर्थ भाई तथा वीर काम के अर्थ काय एव कामदेव 'हथोरी के अर्थ हथौडी तथा हथेली और धनि के अर्थ स्त्री एव धन्य दोनो ही होते हैं, किन्तु यहाँ क्रिया के अर्थ-बल प्रकरण, साहचर्य एव औचित्य के कारण बीर' का अर्थ शक्तिशाली, क्रिया के अर्थ बल से 'काम का अर्थ कामदेव (क्योंकि कलाइयो को खराद पर चढा कर बिकनी करने की सामर्थ्य काय म नही कामदेव म ही हो सकती है) प्रकरण के आधार पर 'हथोरी का अर्थ हथेली (क्योंकि प्रसङ्ग सौन्दर्य वर्णन का है) और औचित्य के आधार पर धनि का अर्थ 'धन्य होगा, (धन्या अर्थात् स्त्री नही क्योंकि यह अर्थ ग्रहण यहाँ उचित न होगा)।

तृतीय अवतरण मे 'हिरदै' और सिरीफल शब्द अनेकार्थवाचक हैं। हिरद' के अर्थ हृदयवत् प्राण वल्लभ और हृदय दोनों ही होते हैं किन्तु यहा प्रकरण सयोग एव औचित्य के आधार पर प्रथम 'हिरद' का अर्थ प्रियतम और द्वितीय का हृदय लिया जायगा। इसी प्रकार सिरीफल के अर्थ बिल्व फल (बेल) तथा सम्पत्ति दोनों ही होते हैं किन्तु यहाँ प्रकरण एव औचित्य के आधार पर उसका अर्थ बेल ही होगा।

चतुर्थ अवतरण म 'हरि' शब्द अनेकार्थी है। किन्तु यहा प्रकरण, साहचर्य एव औचित्य के आधार पर विभिन्न हरि शब्दो के पृथक् पृथक अर्थ होंगे। नेत्रों के प्रसङ्ग म होने के कारण प्रथम हरि' का अर्थ कमल या मृग से सादृश्य के कारण मृग या कमल, द्वितीय हरि का अर्थ वाणी के प्रसङ्ग तथा मयूर अथवा कोकिल के सादृश्य

(i) पौरेइ नित मा कुँवर सयाना । बरस भेउ यहु भाउ बखाना ।
जाग पमर धौराव सतभावा । पिंगल बोध कठ धौरावा ।
बियाकरन जोतिस औ गीता । गीत कबित अरथ का जीता ।

मउर गरथ गियान जोग कै पढ़ मनक कुमार ।
नौगुन औ गुन बिद्या आदि न कोऊ पार ॥[1]

(ii) भुजा सइहिं बिसकरमैं गढ़ी । हारउँ हरि न पटतर रही ।
सवन सम्प मसिहिं बरियारा । देखि वीर अवली बलिहारी ।
औ मनूर दुइ बनीं बनाई । काम कुंदेर फर बनाइ ।
औ तिह पर दुइ सुभर हयारो । फटिक सिला जनु ईंगुर पूरी ।

साभित सबल सम्प अति त्रिभुवन जीतन हार ।
दहु कहि देइ आलिंगन, धनि सो जग ओंजार ॥[2]

(iii) जबहिं हिरद हिरद सचरे । कुच आन्तर कहें उठि भ खरे ।
दुवौ अनूर सिरीफल नए । मेंट आनि तरुनापै दए ।[3]

(iv) निमरम चित्त मरनी बन महँ रहसि निसंक ।
हरि नसी हरि बनी हरि बन्नी हरि जंक ॥[4]

(v) बारा बार पौन सउँ करई । दिस्टि चाहि पग अगुमन धरइ ।
निमिसमाहिंबारी चलि गएऊ । राज दुआर ठाढ़ भ नएऊ ।

\+ \+ \+ \+

पमा राजदुलारी बारी । तहिक सदन कहै त्रिछु बारी ।[5]

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त), रा० सं०, पृ० ४३ ।
२ वही वही पृ० ७७ ।
३ वही वही पृ० ७८ ।
४ वही, वही पृ० १६२ ।
५ वही, वही पृ० २४०–२४१ ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त अवतरणों में प्रयुक्त रेखांकित शब्द अनेकार्थवाची हैं और उक्त प्रसङ्गों में उनके अर्थ का निर्णय अभिधा शक्ति की विभिन्न पद्धतियों के आधार पर ही किया जा सकता है। अतः स्पष्ट है कि इन प्रसंगों में उनके अर्थ में जो सौन्दर्य है वह अभिधा शक्ति का ही प्रसाद है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने से विदित होगा कि प्रथम अवतरण के 'भाउ' शब्द का प्रयोग 'मनोदशा' तथा 'प्रकार' दो अर्थों में होता है, किन्तु यहाँ जिस प्रकरण में उसका प्रयोग हुआ है और जिस प्रकार 'वेद' शब्द के साथ हुआ है, उससे इसका अर्थ 'प्रकार' ही लिया जा सकता है, 'भाव' नहीं। इसी प्रकार इस अवतरण के 'पिंगल' और 'बादि' शब्द भी अनेकार्थवाची हैं। 'पिंगल' का अर्थ पीला एवं छन्दशास्त्र और 'बादि' का अर्थ वाद विवाद तथा व्यर्थ होते हैं, किन्तु 'कोक' के साहचर्य में होने के कारण 'पिंगल' का अर्थ छन्दशास्त्र और विद्या के प्रसङ्ग में होने के कारण 'बादि' का अर्थ वाद-विवाद होगा।

द्वितीय अवतरण में 'बीर', 'काम', 'हथोरी' तथा 'धनि' शब्द अनेकार्थवाची हैं—'बीर' के अर्थ भाई तथा वीर, 'काम' के अर्थ कार्य एवं कामदेव, 'हथोरी' के अर्थ हथौड़ी तथा हथेली और 'धनि' के अर्थ स्त्री एवं धन्य दोनों ही होते हैं, किन्तु यहाँ क्रिया के अर्थ बल, प्रकरण, साहचर्य एवं औचित्य के कारण 'बीर' का अर्थ शक्ति वाली क्रिया के अर्थ बल से 'काम' का अर्थ कामदेव (क्योंकि कलाइयों को खराद पर चढ़ा कर बिजली करने का सामर्थ्य कार्य में नहीं, कामदेव में ही हो सकती है), प्रकरण के आधार पर 'हथोरी' का अर्थ हथेली (क्योंकि प्रसङ्ग सौन्दर्य वर्णन का है) और औचित्य के आधार पर 'धनि' का अर्थ 'धन्य' होगा। (धन्य अर्थात् स्त्री नहीं क्योंकि यह अर्थ ग्रहण यहाँ उचित न होगा)।

तृतीय अवतरण में 'हिरदै' और 'सिरीफल' शब्द अनेकार्थवाचक हैं। 'हिरदै' के अर्थ हृदयवत् प्राण वल्लभ और हृदय दोनों ही होते हैं किन्तु यहाँ प्रकरण, संयोग एवं औचित्य के आधार पर प्रथम 'हिरदै' का अर्थ प्रियतम और द्वितीय का हृदय लिया जायगा। इसी प्रकार 'सिरीफल' के अर्थ बिल्व फल (बेल) तथा सम्पत्ति दोनों ही होते हैं किन्तु यहाँ प्रकरण एवं औचित्य के आधार पर उसका अर्थ बेल ही होगा।

चतुर्थ अवतरण में 'हरि' शब्द अनेकार्थी है। किन्तु यहाँ प्रकरण, साहचर्य एवं औचित्य के आधार पर विभिन्न 'हरि' शब्दों के पृथक् पृथक् अर्थ होंगे। नेत्रों के प्रसङ्ग में होने के कारण प्रथम 'हरि' का अर्थ कमल या मृग से सादृश्य के कारण मृग या कमल, द्वितीय 'हरि' का अर्थ वाणी के प्रसङ्ग तथा मयूर अथवा कोकिल के सादृश्य

से कोकिल तृतीय 'हरि' का अर्थ मुख के प्रसङ्ग तथा चन्द्र के सादृश्य से चन्द्रमा और चतुर्थ 'हरि' का अर्थ कटि के प्रसङ्ग तथा सिंह की कटि के सादृश्य से सिंह होगा।

इसी प्रकार पंचम अवतरण में 'बारी' और 'बादि' शब्द अनेकार्थवाची हैं। 'बारी' के अर्थ बाला, वाटिका और सन्देशवाहक जाति विशेष आदि अनेक होते हैं, किन्तु यहां प्रकरण के अनुसार प्रथम, द्वितीय एवं चतुर्थ 'बारी' का अर्थ जाति विशेष और तृतीय 'बारी' का अर्थ बाला होगा। 'बादि' के अर्थ व्यर्थ बोलने वाला (वादि) विद्वान् चतुर तथा बात करने वाला आदि अनेक होते हैं किन्तु यहां प्रकरण के अनुसार उसका अर्थ बात करने वाला अथवा बात होगा।

जहाँ तक अभिधा के सामान्य प्रयोगों से उद्भूत सौन्दर्य का प्रश्न है वह मधुमालती के अनेक स्थलों पर देखा जा सकता है। इन स्थलों की उसमें कमी नहीं है।

लक्षणोद्भूत सौन्दर्य —

लक्षणा का मूलाधार अभिधा अवश्य है किन्तु काव्य में इसका महत्त्व अपेक्षाकृत अधिक है। मंझन लक्षणा के इस महत्त्व से परिचित थे। अभिधेयार्थ की अपेक्षा उन्होंने लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ को अधिक महत्त्व दिया है। उनकी मधुमालती में इस शब्द शक्ति से उद्भूत सौन्दर्य की कमी नहीं। समस्त ग्रन्थ में इसके विविध रूपों से उद्भूत सौन्दर्य बिखरा पड़ा है।

लक्षणा में तीन बातें आवश्यक हैं। प्रथम यह कि उसमें मुख्यार्थ का बाध होना चाहिए अर्थात् जब शब्द का मुख्य अर्थ ठीक नहीं बैठता तभी लक्षणा शक्ति कार्य करती है। द्वितीय यह कि मुख्यार्थ से लक्ष्यार्थ का कुछ न कुछ सम्बन्ध होना चाहिए अर्थात् लक्षणा से उसी अर्थ का बोध हो सकता है जिसका प्रधान और प्रसिद्ध अर्थ से कुछ न कुछ सम्बन्ध होगा। तृतीय यह कि रूढ़ि अथवा प्रयोजन उसका लक्ष्य होना चाहिए बिना प्रयोजन अथवा रूढ़ि के वाद शब्द लक्ष्यार्थ की ओर नहीं जाता।

सूक्ष्म रूप से विचार करने पर लक्षणा के अनेक भेद हो सकते हैं, किन्तु स्थूलतः उसे ६ भागों में विभक्त किया जा सकता है—लक्षण लक्षणा, उपादान लक्षणा, गौणी सारोपा लक्षणा, गौणी साध्यवसाना लक्षणा, शुद्धा सारोपा लक्षणा

तथा शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा। जब शब्द अपने मुख्यार्थ को बिल्कुल छोड़ देता है, केवल लक्ष्यार्थ का बोध कराता है तो उस लक्ष्यार्थ का ज्ञान कराने वाली शक्ति लक्षणलक्षणा कहलाती है किन्तु जब शब्द अपना अर्थ भी बनाए रखता है उसे छोड़ता नहीं और साथ ही लक्ष्यार्थ का भी ज्ञान कराता है तो लक्षणा का वह रूप दूसरे अर्थ का अपने में उपादान कर लेने के कारण उपादान लक्षणा कहलाता है। पुन जब एक शब्द के अर्थ पर दूसरे शब्द के अर्थ का आरोप किया जाता है तो आरोप सहित होने के कारण ऐसी लक्षणा सारोपा कहलाती है किन्तु जब यह आरोप इतना अधिक बढ़ जाता है कि आरोप का आधार अर्थात् विषय आरोप्यमाण में अपना अस्तित्व खो बैठता है, विषय का विषयी में अध्यवसान हो जाता है तो उस स्थल की लक्षणा को साध्यवसाना कहते हैं। सारोपा और साध्यवसाना के दो दो भेद किए जाते हैं—गौणी और शुद्धा। एक शब्द के अर्थ पर दूसरे शब्द के अर्थ का आरोप जब किसी गुण के सादृश्य के आधार पर होता है तो उस स्थल की लक्षणा को गौणी और जब आरोप किसी कार्य कारण, अंगांगी भाव तादर्थ्य अथवा तात्कर्म्य आदि के आधार पर होता है तो उस स्थल की लक्षणा को शुद्धा लक्षणा कहते हैं। इस प्रकार आरोप के आधार पर लक्षणा के चार भेद होते हैं—गौणी सारोपा गौणी साध्यवसाना शुद्धा सारोपा तथा शुद्धा साध्यवसाना।

मझन ने लक्षणोद्भूत सौंदर्य की योजना पर्याप्त मात्रा में की है। मधुमालती में लक्षणा के प्राय सभी रूपों का प्रयोग उन्होंने किया है। किन्तु उनकी वृत्ति गौणी सारोपा में जितनी रमी है अन्य लाक्षणिक रूपों में उतनी नहीं। मधुमालती में उसका प्रयोग प्राचुर्य इसका अकाट्य प्रमाण है। अधोंकित स्थलों में प्रयुक्त गौणी सारोपा लक्षणा से उद्भूत सौंदर्य इस विषय में द्रष्टव्य है —

(i) 'मन मतंग मारि बस किया। ग्यान महारस अम्रित पिया।'[1]

(ii) ग्यान पखि कर गम जहवा लगि औ मति कर पटार।
तहवा लगि तें गमनब मार्ग को पं सभार।[2]

(iii) 'पेम अमोलक नग संसारा। जेहि जिय पेम सो धनि औतारा।
पेम जोति सभ सिष्टि अंजोरा। दोसर न पाव पेम कर जोरा।'[3]

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त), राज स० पृ० १६।
२ वही वही, पृ० ६।
३ वही वही, पृ० २४।

से कोकिल तृतीय 'हरि' का अथ मुख के प्रसङ्ग तथा चन्द्र के सादृश्य से चन्द्रमा और चतुर्थ 'हरि' का अर्थ कटि के प्रसङ्ग तथा सिंह की कटि के सादृश्य से सिंह होगा।

इसी प्रकार पंचम अवतरण में बारी और बादि शब्द अनेकार्थवाची हैं। 'बारी' के अथ वाला वाटिका और सन्देशवाहक जाति विशेष आदि अनेक होते हैं, किन्तु यहा प्रकरण के अनुसार प्रथम, द्वितीय एवं चतुर्थ 'बारी' का अर्थ जाति विशेष और तृतीय बारी का अर्थ बाला होगा। 'बादि' के अर्थ व्यर्थ, बोलने वाला (बादि) विद्वान् चतुर तथा बात करने वाला आदि अनेक होते हैं किन्तु यहाँ प्रकरण के अनुसार उसका अर्थ बात करने वाला अथवा बात होगा।

जहाँ तक अभिधा के सामान्य प्रयोगों से उद्भूत सौन्दर्य का प्रश्न है, वह मधुमालती के अनेक स्थलों पर देखा जा सकता है। इन स्थलों की उसमें कमी नहीं है।

लक्षणोद्भूत सौन्दर्य —

लक्षणा का मूलाधार अभिधा अवश्य है किन्तु काव्य में इसका महत्त्व अपेक्षाकृत अधिक है। मंझन लक्षणा के इस महत्त्व से परिचित थे। अभिधेयार्थ की अपेक्षा उन्होंने लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ को अधिक महत्त्व दिया है। उनकी मधुमालती में इस शब्द शक्ति से उद्भूत सौन्दर्य की कमी नहीं। समस्त ग्रन्थ में इसके विविध रूपों से उद्भूत सौन्दर्य बिखरा पड़ा है।

लक्षणा में तीन बातें आवश्यक हैं। प्रथम यह कि उसमें मुख्यार्थ का बाध होना चाहिए अर्थात् जब शब्द का मुख्य अर्थ ठीक नहीं बैठता तभी लक्षणा शक्ति कार्य करती है। द्वितीय यह कि मुख्यार्थ से लक्ष्यार्थ का कुछ न कुछ सम्बन्ध होना चाहिए अर्थात् लक्षणा से उसी अर्थ का बोध हो सकता है जिसका प्रधान और प्रसिद्ध अर्थ से कुछ न कुछ सम्बन्ध होगा। तृतीय यह कि रूढ़ि अथवा प्रयोजन उसका लक्ष्य होना चाहिए बिना प्रयोजन अथवा रूढ़ि के कोई शब्द लक्ष्यार्थ की ओर नहीं जाता।

सूक्ष्म रूप से विचार करने पर लक्षणा के अनेक भेद हो सकते हैं, किन्तु स्थूलतः उसे ६ भागों में विभक्त किया जा सकता है—लक्षण लक्षणा, उपादान लक्षणा गौणी सारोपा लक्षणा, गौणी साध्यवसाना लक्षणा, शुद्धा सारोपा लक्षणा

तथा शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा। जब शब्द अपने मुख्यार्थ को बिल्कुल छोड़ देता है, केवल लक्ष्यार्थ का बोध कराता है तो उस लक्ष्यार्थ का ज्ञान कराने वाली शक्ति लक्षणलक्षणा कहलाती है, किन्तु जब शब्द अपना अर्थ भी बनाए रखता है उसे छोड़ता नहीं और साथ ही लक्ष्यार्थ का भी ज्ञान कराता है तो लक्षणा का वह रूप दूसरे अर्थ का अपने मे उपादान कर लेने के कारण उपादान लक्षणा कहलाता है। पुनः जब एक शब्द के अर्थ पर दूसरे शब्द के अर्थ का आरोप किया जाता है तो आरोप सहित होने के कारण ऐसी लक्षणा सारोपा कहलाती है किन्तु जब यह आरोप इतना अधिक बढ़ जाता है कि आरोप का आधार अर्थात् विषय आरोप्यमाण में अपना अस्तित्व खो बैठता है, विषय का विषयी में अध्यवसान हो जाता है तो उस स्थल की लक्षणा को साध्यवसाना कहते हैं। सारोपा और साध्यवसाना के दो दो भेद किए जाते हैं—गौणी और शुद्धा। एक शब्द के अर्थ पर दूसरे शब्द के अर्थ का आरोप जब किसी गुण के सादृश्य के आधार पर होता है तो उस स्थल की लक्षणा को गौणी और जब आरोप किसी कार्य कारण, अंगांगी भाव ताद्रूप्य अथवा तात्कर्म्य आदि के आधार पर होता है तो उस स्थल की लक्षणा को शुद्धा लक्षणा कहते हैं। इस प्रकार आरोप के आधार पर लक्षणा के चार भेद होते हैं—गौणी सारोपा गौणी साध्यवसाना शुद्धा सारोपा तथा शुद्धा साध्यवसाना।

मझन ने लक्षणाद्भूत सौंदर्य की योजना पर्याप्त मात्रा में की है। मधुमालती में लक्षणा के प्रायः सभी रूपों का प्रयोग उन्होंने किया है। किन्तु उनकी वृत्ति गौणी सारोपा में जितनी रमी है, अन्य लाक्षणिक रूपों में उतनी नहीं। मधुमालती में उसका प्रयोग प्राचुर्य इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। अधोंकित स्थलों में प्रयुक्त गौणी सारोपा लक्षणा से उद्भूत सौन्दर्य इस विषय में द्रष्टव्य है —

(i) 'मन मतंग मारि बस किया। ग्यान महारस अंब्रित पिया।'[1]

(ii) ग्यान पखि कर गम जहवा लगि औ मति कर पटार।
तहवा लगि ते गमनब आगें को पं समार।[2]

(iii) 'पेम अमोलक नग संसारा। जेहि जिय पेम सो धनि औतारा।
पेम जोति सम सिष्टि अंजोरा। दोसर न पाव पेम कर जोरा।'[3]

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त), राज स० पृ० १६।
२ वही वही, पृ० ६।
३ वही वही, पृ० २४।

से कोकिल, तृतीय 'हरि' का अर्थ मुख के प्रसङ्ग तथा चन्द्र के सादृश्य से चन्द्रमा और चतुर्थ 'हरि' का अर्थ कटि के प्रसङ्ग तथा सिंह की कटि के सादृश्य से सिंह होगा।

इसी प्रकार पंचम अवतरण में 'बारी' और 'बानि' शब्द अनेकार्थवाची हैं। 'बारी' के अर्थ बाला, वाटिका और सन्देशवाहक जाति विशेष आदि अनेक होते हैं, किन्तु यहाँ प्रकरण के अनुसार प्रथम, द्वितीय एवं चतुर्थ 'बारी' का अर्थ जाति विशेष और तृतीय 'बारी' का अर्थ बाला होगा। 'बानि' के अर्थ स्वभाव, बोलने वाला (बानी), विद्वान् चतुर तथा बात करने वाला आदि अनेक होते हैं किन्तु यहाँ प्रकरण के अनुसार उसका अर्थ बात करने वाला अथवा बात होगा।

जहाँ तक अभिधा के माध्यम से प्रयोगों से उद्भूत सौन्दर्य का प्रश्न है वह मधुमालती के अनेक स्थलों पर देखा जा सकता है। ऐसे स्थलों की इसमें कमी नहीं है।

लक्षणोद्भूत सौन्दर्य :—

लक्षणा का मूलाधार अभिधा अवश्य है किन्तु काव्य में इसका महत्व अपेक्षाकृत अधिक है। मंझन लक्षणा के इस महत्व से परिचित थे। अभिधेयार्थ की अपेक्षा उन्होंने लक्ष्यार्थ एवं व्यंग्यार्थ को अधिक महत्व दिया है। उनकी मधुमालती में इस शब्द शक्ति से उद्भूत सौन्दर्य की कमी नहीं। समस्त ग्रन्थ में इसके विविध रूपों से उद्भूत सौन्दर्य बिखरा पड़ा है।

लक्षणा में तीन बातें आवश्यक हैं। प्रथम यह कि उसमें मुख्यार्थ का बाध होना चाहिए अर्थात् जब शब्द का मुख्य अर्थ ठीक नहीं बैठता तभी लक्षणा शक्ति कार्य करती है। द्वितीय यह कि मुख्यार्थ से लक्ष्यार्थ का कुछ न कुछ सम्बन्ध होना चाहिए अर्थात् लक्षणा से उसी अर्थ का बोध हो सकता है जिसका प्रधान और प्रसिद्ध अर्थ से कुछ न कुछ सम्बन्ध होगा। तृतीय यह कि रूढ़ि अथवा प्रयोजन उसका लक्ष्य होना चाहिए बिना प्रयोजन अथवा रूढ़ि के कोई शब्द लक्ष्यार्थ की ओर नहीं जाता।

सूक्ष्म रूप से विचार करने पर लक्षणा के अनेक भेद हो सकते हैं किन्तु स्थूलतः उसे ६ भागों में विभक्त किया जा सकता है—लक्षण लक्षणा, उपादान लक्षणा, गौणी सारोपा लक्षणा, गौणी साध्यवसाना लक्षणा, शुद्धा सारोपा लक्षणा

तथा शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा। जब शब्द अपने मुख्यार्थ को बिल्कुल छोड़ देता है, केवल लक्ष्यार्थ का बोध कराता है तो उस लक्ष्यार्थ का ज्ञान कराने वाली शक्ति लक्षणलक्षणा कहलाता है, किन्तु जब शब्द अपना अर्थ भी बनाए रखता है उसे छोड़ता नहीं और साथ ही लक्ष्यार्थ का भी ज्ञान कराता है तो लक्षणा का वह रूप दूसरे अर्थ का अपने में उपादान कर लेने के कारण उपादान लक्षणा कहलाता है। पुन जब एक शब्द के अर्थ पर दूसरे शब्द के अर्थ का आरोप किया जाता है तो आरोप सहित होने के कारण ऐसी लक्षणा सारोपा कहलाती है किन्तु जब यह आरोप इतना अधिक बढ़ जाता है कि आरोप का आधार अर्थात् विषय आरोप्यमाण मे अपना अस्तित्व खो बैठता है, विषय का विषयी मे अध्यवसान हो जाता है तो उस स्थल की लक्षणा को साध्यवसाना कहते हैं। सारोपा और साध्यवसाना के दो दो भेद किए जाते हैं—गौणी और शुद्धा। एक शब्द के अर्थ पर दूसरे शब्द के अर्थ का आरोप जब किसी गुण के सादृश्य के आधार पर होता है तो उस स्थल की लक्षणा को गौणी और जब आरोप किसी कार्य कारण, अगागी भाव तादर्थ्य अथवा तात्कर्म्य आदि के आधार पर होता है तो उस स्थल की लक्षणा को शुद्धा लक्षणा कहते हैं। इस प्रकार आरोप के आधार पर लक्षणा के चार भेद होते हैं—गौणी सारोपा गौणी साध्यवसाना शुद्धा सारोपा तथा शुद्धा साध्यवसाना।

मझन ने लक्षणोद्भूत सौन्दर्य की योजना पर्याप्त मात्रा मे की है। मधुमालती मे लक्षणा के प्राय सभी रूपों का प्रयोग उन्होंने किया है। किन्तु उनकी वृत्ति गौणी सारोपा मे जितनी रमी है, अन्य लाक्षणिक रूपों मे उतनी नहीं। मधुमालती मे उसका प्रयोग प्राचुर्य इसका प्रकाट्य प्रमाण है। अग्राकित स्थलो मे प्रयुक्त गौणी सारोपा लक्षणा से उद्भूत सौन्दर्य इस विषय मे द्रष्टव्य है —

(i) "मन मतग मारि बस किया। ग्यान महारस अम्रित पिया।'[1]

(ii) ग्यान पखि कर गम जहवा लगि औ मति कर पटार।
तहवा लगि त गमनब मार्गे को प समार।[2]

(iii) 'पेम अमोलक नग समारा। जेहिं जिय पेम सो धनि औतारा।
पेम जोति सम सिष्टि अजोरा। दोसर न पाव पेम कर जोरा।"[3]

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त), राज स० पृ० १६।
२ वही वही पृ० ६।
३ वही वही, पृ० २४।

(xi) 'तीनि रेख मुध गीव गिरासी। भई त मम म्रिग नन ९ फासी।
सेंदुर कुहुकुह मेर पिसावा। सुभर फटिक गिय नाल भरावा।
बिबि कुच स्याम छत्र सिर दीते। गडे ग्राइ नैन ह ग्रनचीते।
लगत दुवौ बीर जिउ हरिया। जो न हार हात बिच घरहरिया।

पून कनस अ म्रित रस पूरे बिबि कुच कठिन कठोर।
जोबन ब ला उमगन, देखेउँ बिपरित कनक कचोर ॥[1]

(xii) दुवो चतुर ग्रो बाला ग्रलीं। दुवौ पेम रस जाबन कली। [2]

गौणी सारोपा लक्षणा के उक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि मझन ने उसका मधुमालता म प्रचुर प्रयोग किया है। इसके अनन्तर दूसरा स्थान गौणी *साध्यवसाना* का है। मझन ने अपनी कृति मे इस लक्षणा के प्रयाग द्वारा भी *सौन्दर्य-सृजन* का यथाशक्ति प्रयत्न किया है। निम्नांकित अवतरण इस विषय म द्रष्टव्य हैं —

(i) माग के पथ चल को पारा। परग परग बसे फँसिहारा।
जेत गौने तेत मारे भारी। परगट रगत देखु रतनारी। [3]

(ii) "ग्रादि ग्रमिय एक बुद बँ ताई। मोहि सहमते रगत तिसाई।
का बरनौं ग्रोहि खजन जोरा। हरेसि जीउ देखत खिन कोरा।"[4]

(iii) ग्र म्रित कु ड जैस ग्रोनरा। ग्रजहू देखु ग्रो न्ह भरा।
पेम लीन हैं पाप न नास। ग्रजहूँ सुरसरि नीर पियास।
कवल करी नहि लीन बिगासा। भवर बिमाहि फूल नहि बसा।

ग्रजहु सेवाती धार सीप लगि धार गगन घहराति।
ग्रजहु जैति जनमी मधुमालति दई राखी तहि भाँति। [5]

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त) राज स० पृ० ८२७।
२ वही, वही, पृ० २५२।
३ वही, वही पृ० ६-६४।
४ वही, वही पृ० १६?।
५ वही, वही, पृ० ४६६।

(iv) 'यह सुनि कवल कली बिगसानी । फुल मधर दुइ अ बिन सानी ।'[१]

(v) लाग हिय काह मनियार । माउ कटाछ सान क सार ।[२]

लक्षणा के उक्त रूपों में उद्भूत सौन्दर्य के अतिरिक्त मधुमालती में उसके अन्य रूपों से उद्भूत सौन्दर्य भी यत्र तत्र लक्षित होता है। किन्तु ऐसे स्थल बहुत विरल हैं। योजन में हो वे स्थल में प्राप्त हैं। उदाहरण में प्रयोजित स्थल प्रस्तुत है —

उपादान लक्षणा —

(i) जोबन २२ अमीलि सिरधिमी राज करहु जग माह।
जो लहि मसिहर सूर धुव कायम जग पर छा॥'[३]

(ii) 'सात दीप नौ खंड पिरिथिमा चहु दिसि हरस अनन्द।
एक बिरह दुख परिहरि दामर औरु न द्वन्द।[४]

(iii) 'जगत क भल अहार क दाता। करता पूरता एक बिधाता।[५]

(iv) रावन चतुरा बहि मन मव तो त्रिभुवन मारि।[६]

लक्षण लक्षणा —

'बिरह प्रेम पथ आग न मारेउ। आगा कारि केस निर तारेउ।[७]

---

१ मधुमालती (डा०गुप्त, राज सं०), पृ० ४७६।
२ वही वही पृ० ८७।
३ वही वही, पृ० ११।
४ वही वही पृ० १।
५ वही वही पृ० ८।
६ वही, वही, पृ० २५१।
७ वही वही पृ० १२८।

शुद्धा सारोपा लक्षणा

(i) चेत हरेउ जिउ गा बौराई । बया नगर भइ बिरह दोहाई ।
बिरह निसान चहू दिसि बाजा । जिउ परजा बिरहा तन राजा ।"[1]

(ii) 'फूली मकु त पेम फुलवारी । जेहि सुवास पूरित महि सारी ।[2]

(iii) 'सुख फल कर फूल दुख आवा । बिनु दुख क'हू सुख नहिं पावा ।[3]

(iv) सुनिउ जाहि जिन सिस्टि उपाई । प्रीति परेवा दिहउ उड़ाई ।
तीनिउ लोक ढूढि के आवा । आपु जोग कहु ठाउ न पावा ।
तब फिरि मोहि घट पसउ आई । रहेउ लोभाइ न गएउ उड़ाई ।
तीनि भुवन तब पूँछो बाता । कहु तुइ कस मानुस घट राता ।
कहेसि दुक्ख मानुस कर आसा । जहा दुक्ख तह मोर नेवासा ।

जेहि ठा दुख होइ जग भीतर प्रीति होइ बस ताहि ।
प्रीति बात का जान बपुरा जेहि सरीर दुख नाहि ।"[4]

मधुमालती के उक्त लाक्षणिक प्रयोगों के अतिरिक्त उसमें यत्र-तत्र मुहावरों एव लोकोक्तियों के सुष्ठु प्रयोग द्वारा भी लाक्षणिक सौंदर्य की सृष्टि हुई है। मुहावरा एव लोकोक्तियों का प्रयोग लक्ष्यार्थ की व्यंजना के लिए ही किया जाता है। किसी भाषा के मुहावरे उसके लाक्षणिक प्रयोगों के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। मझन इस विषय में दक्ष हैं। किन्तु उनकी रुचि इस क्षेत्र मे अधिक प्रतीत नहीं होती। उनका प्रयोग मझन ने कम किया है। फिर भी जहा कहीं भी उनका प्रयोग हुआ है उससे यह स्पष्ट विदित होता है कि मझन में उनके प्रयोग की पर्याप्त क्षमता है। स्वाभाविक रूप से ही भाषा के धारा प्रवाह में उनका आगमन इस तथ्य का द्योतक है कि मझन उनके प्रयोग के प्रति सचेष्ट नहीं रहे हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इससे उनकी

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त) राज स०, पृ० १२८।
२ वही, वही पृ० २७१।
३ वही, वही, पृ० १२०।
४ वही, वही, पृ० ६७।

(iv) "मैं काहे असि भएउ अयानी। मरवौं निमल खीर महँ पानी।
पम लीन हूँ पाप न नासे। अजहूँ सुरसरि नीर पियासे।"[1]

(v) "अति किए रिस किछु भन न रहा। रानी रोइ सखिन्ह सउँ कहा।
अस बगरावहु कहु दुह जानी। जैस गिर पाल सउ पानी।
सखिन्ह दुहू बिच करवट दीन्हा। एक दह जनु दुइ ठा कीन्हा।
असि मोहनि चखु निद्रा लागे। करवट दीन्ह तबहु नहिं जागे।"[2]

(vi) "कान न कीन्ह जननि जेत लपा। जनु हुकार कया कर जपा।
जौ पर सिख बुधि किछु नहिं लगी। रानी चकित रही जनु ठगी।
सिख बुधि सुनें जाहि बुधि होई। बौरहि का सिख बुधि देइ कोई।"[3]

(vii) "रहसी देखि कुंवर उनिहारी। बसि आइ तेहि पास अटारी।
कहेसि जरे तेइ नन सिरावौं। विरह आगि तेहि दरस बुझावौं।
बूडत धाइ आस तिनु लेई। तिनुका बूडत असरौं दई।
ओस पियास न निखा बुझाई। आव साध वत अबिली जाई।"[4]

व्यंजनोद्भूत सौन्दर्य –

व्यंजना शक्ति मे उद्भूत काव्य सौंदय, भले ही वह अभिधा अथवा लक्षणा शक्ति पर ही आश्रित आधारित क्यो न हो, अपना स्वतन्त्र महत्त्व रखता है। काव्य मे व्यंग्यार्थ का महत्त्व सर्वप्रमुख है। ध्वनिकार आनन्दवर्द्धन तथा ध्वनि को प्राधान्य देने वाले परवर्ती आचार्यों ने व्यंग्यार्थ को सर्वाधिक महत्त्व दिया है और अद्यपर्यन्त उसका वह महत्त्व न्यूनाधिक रूप मे सुरक्षित है। कहने की आवश्यकता नही कि मझन व्यंग्यार्थ के इस महत्त्व से परिचित थे। उनकी मधुमालती मे लौकिक के माध्यम से अलौकिक की व्यंजना इसी व्यंग्यार्थ के आधार पर हुई है। नायिका मधुमालती के रूपोत्कर्ष मे यदि एक ओर सुन्दरी नारी का सामान्य रूप सौंदर्य व्यक्त

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त) राज स०, पृ० २६६।
२ वही वही, पृ० २६६।
३ वही वही, पृ० ३०५।
४ वही, वही, पृ० ३११।

हुआ है तो दूसरी ओर, परम तत्व परमात्मा के रूप सौन्दर्य की व्यंजना है। इसी प्रकार नायक राजकुमार मनोहर सामान्यतः लौकिक नायकोचित गुणों को लेकर भी जीवात्मा का प्रतीक है। उसकी साधना में परमात्मा की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील जीवात्मा की साधना की व्यंजना हुई है। प्रेम के सामान्य स्वरूप एवं महत्त्व विवेचन के प्रसंग में आध्यात्मिक प्रेम की मार्मिक व्यंजना का सौन्दर्य अन्य प्रेम गाथा-काव्यों की भांति मधुमालती की भी विशेषता है।

शब्द की अन्य दो शक्तियां शब्द के द्वारा ही अपना काम करती हैं पर व्यंजना शक्ति कभी कभी अर्थ के सहारे भी अपना व्यापार करती है। इसी से व्यंजना शाब्दी और आर्थी दो प्रकार की मानी गयी है। शाब्दी व्यंजना कभी अभिधामूला होती है कभी लक्षणामूला और आर्थी व्यंजना कभी वाच्यार्थसंभवा कभी लक्ष्यार्थसंभवा और कभी व्यंग्यार्थसंभवा होती है।'[1]

साहित्यशास्त्रियों ने व्यंजना के अनेक भेद किये हैं। जब वह किसी शब्द विशेष के बल पर किसी व्यंग्यार्थ का बोध कराती है और उस शब्द के स्थान पर उसका पर्यायवाची शब्द रखने से व्यंग्यार्थ नष्ट हो जाता है तो उसे शाब्दी व्यंजना कहते हैं किन्तु जब व्यंग्यार्थ, व्यंग्यार्थ या प्रतीयमान अर्थ किसी शब्द विशेष पर आश्रित न रहकर उसके पर्यायवाची शब्दों के रहने पर भी पूर्ववत् अक्षुण्ण रहता है तो वह अर्थ पर आश्रित रहने के कारण आर्थी व्यंजना कहलाती है। पुनः शाब्दी व्यंजना के मूल में जब अभिधा रहती है अर्थात् जब व्यंग्यार्थ वाचक शब्दों पर निर्भर रहता है तो उसे अभिधामूला शाब्दी व्यंजना और जब व्यंग्यार्थ के मूल में लक्षणा रहती है अर्थात् जब व्यंग्यार्थ लक्षक शब्दों से निष्पन्न होता है तो उसे लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना कहते हैं। साहित्य शास्त्र में अभिधामूला शाब्दी व्यंजना के पन्द्रह और लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना के बत्तीस भेद माने गये हैं किन्तु स्थानाभाव के कारण यहां उनका विवेचन सम्भव नहीं। आर्थी व्यंजना के तीस भेद माने गये हैं। किन्तु स्थूलतः उसे तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। व्यंग्यार्थ जब वाच्यार्थ के द्वारा निष्पन्न हो अर्थात् जब व्यंग्यार्थ की प्रतीति वाच्यार्थ के आधार पर हो तो उसे वाच्यार्थसंभवा व्यंजना कहते हैं। इसी प्रकार व्यंग्यार्थ जब लक्ष्यार्थ से निष्पन्न होता है तो उसे लक्ष्यार्थ संभवा और जब व्यंग्यार्थ से निष्पन्न होता है तो उसे व्यंग्यार्थ संभवा व्यंजना कहते हैं। इस प्रकार स्थूलतः शाब्दी व्यंजना के दो और आर्थी व्यंजना के तीन भेद हैं।

---

१ डा० श्यामसुन्दरदास भाषा विज्ञान, च० सं० पृ० २७३।

मधुमालती में व्यंजना के यह सभी स्थल रूप अपने उत्कृष्ट रूप मे विद्यमान हैं। किन्तु यहाँ उनका विस्तृत विवेचन अभीष्ट नहीं केवल संकेत मात्र ही पर्याप्त होगा।

अभिधामूला शाब्दी व्यंजना —

संयोग वियोग साहचर्य प्रकरण आदि पद्धतियों अथवा हेतुओं द्वारा अनेकार्थ वाची शब्दों के प्रकृतोपयोगी अथवा अभीष्ट एकार्थ के नियंत्रित हो जाने पर जिस शक्ति द्वारा अन्यार्थ (अप्रकृतार्थ) का बोध होता है उसे अभिधामूला शाब्दी व्यंजना कहते हैं। मधुमालती में ऐसे स्थल यद्यपि अधिक नहीं दिखाई देते, तथापि उनका उसमें नितान्त अभाव भी नहीं है। अधोलिखित स्थलों में इस व्यंजना का रूप द्रष्टव्य है —

(i) 'निभरम चित्त अवनी बन महँ रहसि निसंक।
हरि नो हरि ब्नी हरि बन्नी हरि लंक।'[1]

(ii) दुवौ अनूप सिरीफल नए। भेंट आनि तरुनापे दए।[2]

(iii) मानहि चक्र नरायन लहै दुहु दिसि जोति।
नातर राहु गरासत जो न चक्र भौ होत॥'[3]

(iv) 'अचिजु एक का बरनौं बरनत बरनि न जाइ।
जनु मारग सारग तर निभरम पौढे आइ।"[4]

(v) बरुनि बान को जोत पारा। एक मूठि सौ कान्ह पवारा।"[5]

(vi) चमर्कि, बीरि मदन दुइ ओरा। बीजु छुग जस भएउ अंजोरा।'[6]

१ मधुमालती (डा० गुप्त) राज सं० पृ० १९२।
२ वही वही पृ० ७।
३ वही वही पृ० ७६।
४ वही, वही, पृ० ६८।
५ वही वही पृ० ६६।
६ वही वही, पृ० ४२६।

(vii) पुन र तम म त्रिर रम दूर बिवि कुन कठिन क्ठार ।
जातन बाल उमगन दर्श । बिरहित कनक कवार ।।'[1]

उक्त अवतरणा म अनेकार्थवाची 'हरि विरोचन नरायन सारग कांड वारि (बीरा) तथा कवार शब्दों का अर्थ अभिधा शक्ति के विभिन्न ढगो पद्धतियों रूपो अथवा हेतुओं के आधार पर प्रकरण, काल एव सयोग द्वारा निर्दिष्ट होता है और इसके अन तर व्यजना शक्ति के व्यापार द्वारा नायिका मधुमालती के अद्भुत अनुपम लावण्य की व्यजना होती है अत अभिधा शक्ति पर आश्रित आधारित होने के कारण यहा अभिधामूला व्यजना है । इसके अतिरिक्त चूंकि अभिधागत सौन्दर्य उक्त अनेकार्थवाची शब्दों पर आश्रित है उनके अभाव में—उनके स्थान पर अन्य शब्दों के रखने से—अभिधा का सौन्दर्य जाता रहेगा साथ ही व्यजना का सौन्दर्य भी नष्ट हो जायगा अत अभिधा तथा उक्त अनेकार्थवाची शब्दों पर आश्रित होने के कारण यह व्यजनागत सौन्दर्य अभिधामूला है ।

लक्षणामूला शाब्दी व्यजना —

जिस व्यग्यार्थ को सूचित करने के लिए लक्षणा का आश्रय लिया जाता है अर्थात् लाक्षणिक शब्द का प्रयोग किया जाता है वह व्यग्य जिस शक्ति से प्रतीत होता है उसे लक्षणामूला शाब्दी व्यजना कहते हैं । मधुमालती में इस प्रकार के स्थल हैं जहाँ व्यग्यार्थ के द्योतन के लिए लाक्षणिक शब्दों का प्रयोग किया गया है । उदाहरणार्थ निम्नाकित अवतरण लिए जा सकते हैं —

(क) "रोमावलि नागिनि विस भरी । जनु कवरि हूतें विवर अनुसरी ।
नाभी कुण्ड परी जइ आई । घूमि रही पै निकसि न जाइ ।[2]

(ख) "बरुनि बनावरि बिसह बुझाई । सटकि परति उर जाहिं समाई ।
बरुनि बान सनमुख भ जाही । रावें राव रहन नाम्हर ताही ।
दिस्टि साथ ग हिए समानी । रुहिर करज कीन्ह घरि पानी ।
बरुनि बान को चीत पारा । एक मूठि सौ कींह पवारा ।

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त राज स०), पृ० ४२७ ।
२ वही पृ० ८० ।

बरनि बान के मारत मैं न सकेउँ जिउ नाखि।
कहि न मिरतु जिय भाव, बरनि सोहागिनि देखि। [1]

कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त अवतरण के लाक्षणिक शब्द 'नागिन', 'बिवर', 'कुण्ड', बनावरि, 'बान' तथा 'काड' नायिका मधुमालती के अभूतपूर्व सौन्दर्य तथा उसके प्रेम वाधिक्य की व्यंजना के लिए प्रयुक्त किए गए हैं। अतः यहाँ लाक्षणिक शब्दों के मूल में होने के कारण लक्षणामूला शाब्दी व्यंजना है।

वाच्यार्थ सभवा आर्थी व्यंजना —

जब वक्ता के वाच्यार्थ से किसी अन्य अर्थ की व्यंजना होती है तब उसको सभवा वाच्यार्थ सभवा आर्थी व्यंजना होती है। 'यदि कोई नित्य सिनेमा जाने वाला लड़का कहता है कि अब स ध्या हो गई, पढ़ना समाप्त करना चाहिए। [2] तो उसके व्यसन से परिचित श्रोता तुरत उसके व्यंग्यार्थ को समझ जाता है। इस वाच्यार्थ में उसकी सिनेमा जाने की इच्छा छिपी हुई है। इस प्रकार यह वाच्यार्थ व्यंग्यार्थ का व्यंजक है और वाच्यार्थ द्वारा घटित होने के कारण व्यंजना वाच्य सभवा है।

मझन ने इस व्यंजना का पर्याप्त प्रयोग किया है। उनकी सम्पूर्ण कहानी मे लौकिक के माध्यम से अलौकिक की व्यंजना है लौकिक प्रेम के आवरण मे आध्यात्मिक प्रेम की अभिव्यक्ति है। मनोहर की साधना में परमार्थिक प्रेम के लिए नायिका रूपिणी मधुमालती की प्राप्ति के लिए, पहुँची हुई कष्ट सहिष्णु जीवात्मा की साधना की व्यंजना गूढ है। उनकी कहानी में स्थान स्थान पर ऐसे सकेत हैं जिनसे इस तथ्य की पुष्टि होती है। उनकी इन व्यंजनाओं में कहीं वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ की उत्पत्ति हुई है कहीं लक्ष्यार्थ से और कहीं व्यंग्यार्थ से। किन्तु यहाँ हमें केवल वाच्यार्थ से सभूत व्यंजना से ही प्रयोजन है। अतः यहाँ हम केवल वाच्यार्थ सभवा व्यंजना पर ही अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे। निम्नांकित स्थलों में सकेतित व्यंग्यार्थ वाच्यार्थ पर ही आश्रित आधारित तथा उसी से उद्भूत है। अतः उनमें वाच्यार्थसभवा व्यंजना है —

(क) 'दुख मानुस कर आदि गरासा। ब्रह्म कवल महँ दुख कर बासा।
जेहि दिन तेहि दुख सिरिष्टि समाना। तेहि दिन तें जिउ जिउ कर जाना।

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त राज स०) पृ० ६६।
२ डा० श्यामसुन्दरदास, भाषा विज्ञान, च० स० पृ० २७७।

रहता है तब तक उस दुख का अनुभव नहीं होता किन्तु ज्यों ही वह उससे वियुक्त होता है उसका जीवन दुख की करुण कहानी बन जाता है। जीवात्मा मनोहर के विषय में भी यही कहा जा सकता है। वह अपने परम प्रिय परमात्मा रूपी मधुमालती से वियुक्त होने के कारण दुखी है। उर्दू के सुप्रसिद्ध कवि मिर्जा गालिब तथा हिन्दी के प्रख्यात कवि श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' ने जीवन के इस शाश्वत सत्य की व्यंजना इस प्रकार की है —

> बूए गुल नालए दिल दूदे चिरागे महफिल
> जो तेरी बज्म से निकला सो परीशाँ निकला।

तथा

> तारे ले कर जनम मध्य आँसू का पारावार लिए।
> सन्ध्या लिए विषाद पुजारिनि उषा विफल उपहार लिए।
> हमें कौन तुम। तजकर जो चला वही हेर न चला।
> ऐसी चली बयार हृदय में मैं भी हाहाकार लिए।'[1]

इसी प्रकार दूसरे अवतरण में मधुमालती के दिव्य रूपाकार की व्यंजना तथा उसके समग्र सृष्टि में परिव्याप्त होने के उल्लेख द्वारा यह व्यंजित किया गया है कि वह परम तत्त्व परमात्मा का प्रतीक है और उसका यह रूप ही सृष्टि का आदि, मध्य एवं अवसान है। उपर्युक्त रूप में नायक मनोहर (जीवात्मा) ने परमात्मा का साक्षात्कार किया है।

लक्ष्य सम्भवा व्यंजना —

व्यंजना जब लक्ष्यार्थ में होती है तब उसे लक्ष्य सम्भवा आर्थी व्यंजना कहते हैं। कोई पिता यदि अपने पुत्र के शिक्षक से कहे—'लड़का अब बहुत विद्वान् हो गया है। पढ़ाने की अब अधिक आवश्यकता नहीं है।" तो विपरीत लक्षणा से इसका यह अर्थ निकलेगा कि लड़के को आपके अध्यापन से कुछ भी लाभ नहीं हुआ, अतः उसे अब और पढ़ाना व्यर्थ है। इसके अतिरिक्त इससे यहाँ श्रोतृवैशिष्ट्य द्वारा यह व्यंग्य सूचित होता है कि शिक्षक बड़ा अयोग्य है।

---

१ द्वन्द्वगीत, पृ० १।

योजना समव नहीं। मधुमालती मे भी इस व्यजना का यथास्थान समुचित प्रयोग हुआ है। निम्नाकित अवतरण इस विषय म द्रष्ट य है —

> पावस गा दुर भोग बेरासा। रात कु वार साहिल परगासा।
> भएउ अगास सुफर निरमला। सूर सहस सति सोरह कला।
> सिमिट मेघ गगन जेत अहे। थाह भए जल हर औगाहे।"[१]

उक्त प्रवत रा म पावस के अवसान तथा रगील क्वार मास के आगमन एव परिणाम स्वरूप होन वाल मु त्वने प्रकाश आक श की निमलता, सूय तथा शशि के निर्बाध प्रकाश तथा बादलो क लुप्त और जलाशयों के था० ह हो जाने क उल्लेख स यह व्यजित किया गया है कि यात्रा के उपयुक्त ऋतु आ गइ है माग स्वच्छ हो गये हैं, माग के जो जलाशय प वम में अपन मयकर रूप प्रतवरुद्ध प्रवाह तथा जल की अग घता क कारण यात्रा मे बाधक थे व अब उसम, थाह वाने हो जान क कारण, उसमे कोई विशप व्यवधान उपस्थित न ही कर सकते। साथ ही इस व्यग्याथ स एक और यग्याथ निकलता है और वह य, है कि यात्रियो ने अपनी यात्रा प्रारम्भ कर दी है, कुमारो क भोग विलास का समय समा त हो चला है अब उ हें स्वदेश के लिए प्रस्थान करना है।

इसी प्रकार अ य कतिपय स्थलो पर भी इस यजना के प्रयोग देखे जा सकते हैं। स्थानाभाव के कारण यहा उनका उल्लेख समव न ही।

वैरूप्य

मभन की सौ दय सृष्टि सब धी उक्त विशपताओं का तात्पय यह नहीं कि उनमें कही कोई वैरूप्य नही है। विश्व नियता परम त्मा क अतिरिक्त ससार म कुछ भी पूण न ही मा व तो दूर रहा देवताओं स भी त्रुटिया होती हैं। मभन भी इसके अपवाद नहीं। उनके सौ य जगत् मे भी कहा कोई अभाव न हो ऐसा न हीं कहा जा सकता। यद्यपि उ होने तुलसी तथा सूर आदि भक्तो के समान राक्षसी वृत्ति निशाचरों के वरूप्य की सृष्टि न ही की है—उनकी मधुम लती म यद्यपि प्रतिनायक अथवा खलनायक को स्थान न ही मिला है—तथापि उनके आभि यक्तिक सौ दय मे यत्र तत्र यत्किचित् दोषआ गय हैं जिससे उसका सौ दय सवथा निष्कलक नहीं रह सका है।

---

[१] मधमालती (डा० गुप्त, राज स०), पृ० ४४०।

छन्द वैधानिक सौन्दर्य के प्रसंग में गति एवं यति सम्बन्धी विवादक शब्दों से उद्भूत बन्ध का उल्लेख किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त कतिपय अन्य स्थलों पर भी कुछ खटकने वाली बातें हैं जिनका संक्षिप्त उल्लेख आवश्यक है।

मधुमालती का नायक मनोहर सर्वगुणसम्पन्न अनन्य प्रेमी है, अतः मधुमालती के अतिरिक्त उसका अन्य किसी नारी के सौन्दर्य पर लुब्ध होना उचित नहीं प्रतीत होता। जायसी का नायक रत्नसेन पद्मावती के अतिरिक्त अन्य नारी से बात करना भी पसन्द नहीं करता[1] पर आन्तरिक सौन्दर्य के कहीं अधिक प्रेमी मंझन का नायक मनोहर प्रेमा के रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है और उसके अंग-प्रत्यंग के सौन्दर्य का तन्मय होकर निरूपण करता है, यह बात किंचित् खटकने वाली है। मंझन का यह कथन मनोहर के चरित्र को ऊंचा उठाने के स्थान पर कुछ गिरा सा देता है —

'सुभर सरोवर मांहि बर नारी। अरु जोबन सो परम पियारी।
रूप कुँवर चित रहेउ लोभाई। तन निहार तब बरनउ जाई।
बरनहु सब अंग मन धरइ। बरनहु सिरस रस निसरस करइ।'[2]

तथा

जो मन सारे बाता निसरस सेज सुख साव।
दुइ चरन कुँवर बकार जउ चन्द्रदर्शनि सुख जोव।'[3]

कहने की आवश्यकता नहीं कि एक अविवाहिता कुमारी का इस प्रकार सोलह श्रृङ्गार करना—उबटन लगाना, स्नान करना, वस्त्र धारण करना, बाल सँवारना, अंजन लगाना, सिंदूर भरना, महावर लगाना, भाल पर तिलक बनाना, ठोढ़ी पर तिल बनाना, मेंहदी रचना, सुगन्धित द्रव्यों का प्रयोग करना, अलङ्कार धारण करना, पुष्पहार पहनना, पान खाना, ओष्ठ रंगना और मिस्सी लगाना—उचित नहीं प्रतीत

---

१ मनहिं रंग अछरी तार राता। मोहि दुसर सों भाव न बाता।
—'पद्मावत' जायसी ग्रन्थावली (शुक्ल) पृ० ६१।
२ मधुमालती (डा० गुप्त राज स), पृ० १५७।
३ वही, पृ० १५५।

होता। कारण, प्रथम तो उसकी परिस्थितियाँ ऐसी नहीं, जिससे वह निश्चिन्त होकर यह सब कुछ कर सके, दूसरे, अविवाहिता होकर भी सौभाग्यवती सदृश शृंगार करना अस्वाभाविक ही नहीं, अनुचित भी है। इसके अतिरिक्त यह देखकर तो आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता कि यह वही युवती है, जो अपने माता-पिता से वियुक्त होने के समय से निरंतर रक्त के आँसू रोती रही है, वियोग को मृत्यु से भी अधिक दुखदायक समझती है, जी बहलाने के लिए जिसके पास कोई साथी संगी नहीं है, सम्पूर्ण आयु गुप्त रूप से जिसके रक्त का पान कर रही है, कलेजे में जिसके पीडा है, हृदय में दुख है और देह में दाह का उत्पात है और जो अपने दुख से दग्ध होकर इतना रोती है कि सूर्य, चन्द्र, तारे, वासुकि, इन्द्र, कुबेर, पृथ्वी, आकाश, सुमेरु—सभी उसके दुख से रो पडते हैं —

"रगत आंसु तस पेमै रोवा। जेइ रे सुनां तेइ हिया करोवा।
मन गहमर हिय उठेउ अन्दोरा। नैन समुन्द दै रगत हिलोरा।
दुख व्यापा मुख बकति न आवै। निससत बात कहे नहिं पावै।
लोयन दुवौ पूरि जल भरे। सीपि फूटि जनु मोती ढरे।
दुख तरंग भरि हियें उघारी। रोवैं रोवैं सा आंसू ढारी।

सूरुज चाँद तराइन वासुकि इन्द्र कुबेर।
पेमा दुख सम रोये धरती गगन सुमेर॥"[1]

समस्त प्रकृति उसके करुण विषाद से विह्वल हो उठती है। तोता उसके रक्ताश्रुओं से मुंह धो कर रक्त-मुख हो गया, कोकिल और काक उसकी दुख-दावाग्नि से जल कर काले हो गये, वृक्षों ने उसके दुख से दग्ध होकर अपने पत्ते झाड दिये कमल और गुलाल लाल हो गए, कलिकाओं ने अपने शरीर के वस्त्रों (पखुडियों) को फाड डाला, अनार का हृदय उसकी दशा को देख कर विदीर्ण हो गया तुरंज नींबू पीला हो गया, मेहंदी तथा नारंगी रक्त की घूंट पी कर लाल हो गई, खजूर की छाती उस दुख से आहत हो कर फट गई? आम उसके दुख से बावले हो गए, महुआ बिना पत्तों का हो गया, भ्रमर तथा सर्प उसकी दुख दावाग्नि में जल गये, तरुओं की फली हुई डालियाँ उस दुख से नमित हो गई, जामुन उस दुख से दग्ध हो कर काला हो गया कटहल ने कांटों की साटिका

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त, राज स०), पृ० १८४।

(ख) "पेम भाउ दूनहु अनुसरेऊ । पर आपन भय जिय नहिं धरेऊ ।
कबहूँ आलिगन रस देई । कबहूँ कटाच्छ जीउ हरि लेई ।
कबहूँ नन बात जिउ मारहिं । कबहू अमिअ बचन अनुसारहिं ।
कबहू सीस चरन ल लावहिं । कबहूँ आपु अपान गवावहिं ।
कबहूँ नन जीउ हरि लेहीं । कबहू अधर सुधानिधि देहीं ।

+ + +

कबहू लीन पेम रस माहा । कबहूँ आप माह गल बाहा ।

कबहुँ पेम रस मोनी गरबन दिस्टि न लाउ ।
कबहु पम भाउ रस मोही प्रीतम दासि कहाउ । [२]

(ग) कबहूँ पम घुमाइ अडावै । कबहुँ सुधारस सीचि जियावै ।
कबहू पम अनद हुलासा । कबहू दुह ह वियाग तरासा ।
कबहू नैन रूप पुनवारी । कबहू जिउ जोबन बलिहारी ।
कबहू पम महारस लेही । कबहू जिउ नवछावरि देही ।
कबहू लाज समुझि कुल भावा । कबहू रहस हुलास होइ भावा ।'[१]

(घ) 'बलया सन परी रिछ फूटी । कचुकि कसनि उरहिं ग टूटी ।
औ पुनि अग चीर गा भागी । नख रेखा कुच ऊपर लागी ।
उरदी हार हरावलि टूटी । उघसी माग बनि ग छूटी ।
दरहिं सेज मलगजी आई । औ लिलार गा तिलक मिटाई ।

कुवर अधर पर परगट परी जो काजर लीक ।
औ सोभित कारी मह दीसी नन सोहागिनि पीक ।'[२]

कहने की आवश्यकता नही कि विवाह पूव के शारीरिक प्रणय-व्यापारा का ऐसा गहित रूप जिसमे चूडिया टूट कर शय्या पर गिर पडे, चोली की कसनी हृदय

१ मधुमालती (डा० गुप्त राज स०), पृ० ११०-१११ ।
२ वही, पृ० ११२ ।
२ वही, पृ० ११४ ।

पर ही टूट जाए, शरीर से वस्त्र हट जाएँ, नख क्षत कुचों पर उभर आएँ, हृदय पर पड़े हुए हार तथा उसकी लड़ियाँ टूट जाएँ माँग उद्ध्वस्त हो जाए, वेणी खुल जाए शय्या म लन हो जाए ललाट का तिलक मिट जाए प्रमिका के नत्रों की कालिमा म नायक की पाक और नायक के अधरों पर नायिका के काजल की रेखा बन जाए देखन वाली सखिया भत्सना करन लगें या देख कर आश्चयस्तब्ध हो जाए मिलन-व्यापार म भाग देन वाली अन्तरंग सखी को गालियाँ देन लग और कहने में लज्जा का अनुभव कर, किसी प्रकार नो उचित नहीं ठहराया जा सकता और न ही इससे किसी प्रकार की सौंदय मूर्ति की प्रतिष्ठा हो सकती है। मधुमालती का यह प्रसग कितना कुरुचिपूर्ण है यह कदाचित् कहन की आवश्यकता नहीं —

'देखा सखिन्ह रवन गा राई। परगट सुरत चीन्ह सब पाई।

दखि सब हिय डरपीं ना अजुगुत यह काह।
जौ राजा भल विधु सुनि पावै घरि नाठी हम बाह।

राजकुँवरि तब सखिन्ह जगाई। कहन्हि कि केइँ तुम्ह नावेहु आई।
दखहु अवस्था आपनि जागी। उठिहु नाहिं सिर लादहु आगी।
काह जानि बूझि बिस खाइहु। कौन लाभ कहँ मूर गँवान्हु।
काह अनि भद किन्हु बखारा। काह बाधे गाठि अगारा।
काह आपुहि अरजस लान्हु। आपु ग नि कै कुलहि लजान्हु।

खिन एक के सुख कारन कुँवरि नसान्हु आपु।
औ कुल गारि दिवान्हु सिरहिं चढ़ाए पापु॥'[१]

तथा

जो रानी चित्रसारी आई। देखसि सो जा कहत लजाई।
ससि मडल रवि किरनि छुवानी। रवि दखत ससि जाति हुरानी।
दसन राहु जसि नख कारी। पमा पाम आइ दई गारी।
कै निलज तोहि कानि न मारी। दाग न्हिसि कस पाटिया कोरी।

१ मधुमालती (डा० गुप्त राज स०), पृ० ११५–११६।

मैं एहि तजी भरोमें तोरें । कुल कलंक कस तारहि मारें ।

सति भाखा सतह कर सतत जो रे यहेहि समुझाइ ।
कारा होइ सो निस्चै कारे सप जो बताइ ॥[1]

यहा यद्यपि यह कहा जा सकता है कि मधुमालती फारसी की मसनवी शैली में लिखा गया काव्य है, जिसमें इस प्रकार के वर्णनों म कोई अनौचित्य नही माना जाता । डा० माताप्रसाद गुप्त ने मझन के प्रेम की इस शारीरिकता का समाधान करते हुए लिखा है — प्रश्न यह है कि इस शारीरिकता का उपयुक्त अध्यात्मवाद से क्या सम्बन्ध है । मरी समझ मे इसका उत्तर यही है कि इन सतों ने जीवन को एक समग्र रूप मे देखा है । उनका जीवन दशन शारीरिक आवश्यकताओं की उपेक्षा नही करता है यह अवश्य है कि वह शारीरिक आवश्यकताओ को मर्यादित रखने का उपदेश करता है । इस शारीरिकता के अभाव में पुरुष और नारी की प्रेम कल्पना मिथ्या होती, इसलिए सूफी साधकों की यह मर्यादित शारीरिकता उनकी आध्यात्मिक प्रेम साधना का ऐसा अग है जो उनकी दृष्टि में उनके लक्ष्य मे बाधक नही होता है । भारतीय साधनाओ म प्राय शारीरिकता का सम्पूर्ण निषेध मिलता है, इसीलिए भारतीय पाठक प्राय इन प्रेम काव्यो मे इस प्रकार की शारीरिकता को देखकर इन्हे लौकिक प्रेम काव्य मात्र समझ बठता है अथवा वह एक उलझन में पड जाता है कि वह इन्हे अलौकिक प्रम का काव्य माने या लौकिक प्रेम का । किन्तु इस प्रकार के पूवग्रह से मुक्त होकर देखने पर ही हम सचमुच इन सूफी सतो की प्रेम साधना का मम ठीक ठीक ग्रहण कर पाएगे ।'[2]

किन्तु प्रश्न यह है कि जो गर्हित कुत्सित अथवा कुरुचिपूर्ण है उसके समाधान का प्रयत्न हो क्यों किया जाय ? मेरी समझ में उनका कोई समाधान प्रस्तुत करने की आवश्यकता नही । यो भारतीय प्रेम साधना तथा भक्ति माग मे भी शारीरिकता की उपेक्षा नही हुई है प्रत्युत एक प्रकार से उसम भी उसका महत्त्वपूर्ण स्थान रहा ह । वाम मार्गी सिद्धों की साधना पद्धति तथा विद्यापति एव सूर आदि कवियों का काव्य इसका प्रमाण है । कि तु इस प्रकार के वर्णन, चाहे वे वाम मार्गी सिद्धों अथवा कृष्ण भक्त कवियों के हों चाहे मझन आदि सूफी कवियो के, कुरुचिपूर्ण एव कुत्सित हैं और पाठक श्रोताओ तथा जनता को गुमराह करने वाले हैं, इसमे स देह नहीं । जायसी ने अपने नायक नायिका के विवाह के पूव इस

१ मधुमालती (डा० गुप्त, रा० स०), पृ० २६३ ।
२ वही, भूमिका पृ० २६ ।

प्रकार के शारीरिक प्रणय व्यापारों को स्थान नहीं दिया, अत 'पद्मावत' में इस प्रकार का कोई अनौचित्य नहीं है। यही नहीं, उनका विवाहोपरान्त का संयोग वर्णन भी मझन की अपेक्षा मर्यादित है। पदमावत तथा मधुमालती का यह अन्तर वस्तुत जायसी तथा मझन के व्यक्तित्व के कारण है। सौन्दर्य वर्णन के प्रसंग में भी जायसी की वृत्ति प्राय तटस्थ रही है किन्तु (भले ही गुरुजनों की लज्जा के कारण उन्होंने मधुमालती के गुह्यांग का वर्णन न किया हो) मझन की वृत्ति उसमें असंपृक्त अथवा तटस्थ नहीं रही, यह उनके वर्णनों—और विशेषकर नितम्ब वर्णन—में स्पष्ट विदित होता है। अत स्पष्ट है कि मझन द्वारा प्रदर्शित नायक नायिका के विवाह पूर्व के शारीरिक प्रणय व्यापार, भले ही वे सूफी सिद्धान्तों के अनुकूल हो अथवा न हों, कुरुचिपूर्ण एवं अमंगलकारी होने के कारण सौंदर्य भूति के प्रतिष्ठापक न होकर वैमनस्य विधायक हैं। अन्य कवियों की अन्य पद्धतियों अथवा किसी प्रकार के दार्शनिक सिद्धान्तों की आड़ लेकर उनका औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता। प्रश्न विवाहोपरान्त के वर्णनों का नहीं विवाह पूर्व के वर्णनों का है।

मझन के विवाहोपरान्त के नायक नायिका के रति वर्णन भी एक प्रकार से सुरुचिपूर्ण नहीं कहे जा सकते। उनका संकेत मात्र ही पर्याप्त था। कितना अच्छा होता यदि वे उसमें संयम एवं मर्यादा का ध्यान रखते। 'वेलि क्रिसन रुक्मिणी री' के रचयिता महाराज पृथ्वीराज के ये वर्णन कितने सुरुचिपूर्ण एवं संकेतात्मक हैं, कदाचित् यह कहने की आवश्यकता नहीं। यहाँ यद्यपि यह कहा जा सकता है कि जायसी आदि सूफी कवि ही नहीं अन्य कवियों ने भी इस विषय में सुरुचि कुरुचि की चिन्ता नहीं की है। यही नहीं अन्य कवियों ने तो इस विषय में सुरुचि की एक प्रकार से हत्या ही कर डाली है। निम्नांकित वर्णन मझन को भी मात करने वाले हैं —

(क) 'आदर स[illegible] हित सेज पर आना। लइ कर पान खाइयो पाना।
घूंघ[illegible] खोल अधर रस चाखा। मन व्यपार मनहिं मन राखा।
[illegible] कुकि खोलि क[illegible] अंग मलावो। कांपौं अंग उमंग बढ़ावो।
गहन नक बिर[illegible] है गढ़ तजा। जइ पंवरी पर गाड़ो धजा।
नौबत बाजै ल[illegible] गु नगारा। बिछिया घुंघुरुन भा झनकारा।
मैन भण्डार जा[illegible] इ उघारा। लेइ कुंजी जनु खोला तारा।

मरी सेज रुधिर से, विरह का भा सहार।
अग अग अग मा, जीत नौबत सिगार।"[1]

(ख) "सम्पुट बधी कनी खिलि गई। सिज्जा पर बसत रितु भई।
हना वियोग हारी का जारा। को ह बखान जौन बिधि मारा।"[2]

(ग) "सभोग करत विपरीत रति। तिय ख छात धरि अमित गति।
कटि लचकि उचकि कुच कठिन कोर। जब मचकि अक धरियत किसोर।
भकार होत पायन निसद्। कोकिल रव कूजत केलि नद्।'[3]

फिर भी मधुमालती का यह रति-वर्णन प्रसग अश्लील होने के कारण कवि की सुरुचि का परिचायक नहीं माना जा सकता —

साते पियत रूप चख दूहूँ। रवि ससि दुवौ एक भ किहू।
दीप मरम मुख फुँकि फुँकि बाला। अधिकौ करै रतन उजियाला।
दुहूँ कर लै लाज ह मुख भाप। अधर दसन खडत डर काँपै।

\+ \+ \+ \+ \+

कुच कुम्भन नख आकुस परे। विद्रुम अधर कीर रस धरे।
सुरत पेम रस अकौ भरऊ। रतन अबेध बेध जनु परेऊ।
कचुकि तार तार उर फाटी। उवसी सिरहिं माग औ पाटी।
सेंदुर मिलिगा तिलक लिलारा। काजर नैननि पीक रतनारा।
कठहि कठहार गा टूटी। दल मलि मलै पक गा छूटी।
बहुरि फूटि गै अम्रित खानी। भई साति हिय साध जुडानी।

---

1 पुहुपावती, भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य (डा० हरिकान्त श्रीवास्तव) पृ० ६२ से उद्धृत।
2 नलदमन, वही, वही।
3 उषा अनिरुद्ध, वही, वही।

काम सकति निसि बोती, एकहिं एक न टार ।
सब मैं तिंह जिय सात म जब छुटि गगन तें पार ।"[1]

कहना न होगा कि उक्त वर्णन से किसी प्रकार की सौम्य मूर्ति की प्रतिष्ठा न होने के कारण पाठक के हृदय म उसके प्रति एक प्रकार की अरुचि सी उत्पन्न होती है । साधक की सिद्धि प्राप्ति एवं तज्जन्य सुख का यह उल्लेख सङ्केतात्मक हो कर कितना सुरुचिपूर्ण होता, इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है ।

उक्त विरूपताओं के अतिरिक्त मधुमालती में कतिपय अन्य खटकने वाली बातें भी हैं । अपने शयनागार में निकटवर्ती शय्या पर कुमार मनोहर को देखकर मधुमालती का उसे क्रमश देवकुमार, गोस्वामी इन्द्रासन के देवता पाताल क नाग और मृत्युलोक क मनुष्य से सम्बोधित करने के अनन्तर राक्षस अथवा भूत की छाया से सम्बोधित करना उचित नहीं प्रतीत होता ।[2] इसी प्रकार वन की चौखण्डी में मध्य मध्य शय्या पर सोती हुई राजकुमारी प्रेमा को देख कर कुमार मनोहर का उसे चन्द्रमा, शापग्रस्त स्वर्ग की अप्सरा तथा बृहस्पति नक्षत्र कहने के अनन्तर माया रूप धारिणी डाकिनी कहना और सुषुप्त राजकुमारी का जागने पर, उसे काम की मूर्ति, गोस्वामी प्रेम-मार्गी परमपद क ज्ञानी तथा प्रेमशास्त्र के पाठक आदि स सम्बोधित करन क साथ ही पागल, भूत बताल, भ्रम म पड़ा हुआ सूम बावला, सिर फिरा एवं विकृत मस्तिष्क समझना अथवा कहना भी अनुचित प्रतीत होता है । जीवन में इस प्रकार की स्थिति म यद्यपि ऐसे अनुमान लगाए जा सकत हैं, तथापि नायक-नायिका क विषय में इस प्रकार क अनुमान उचित नहीं खटकने वाले हैं —

'देखसि चाद मनु इहाँ रहाई । रवि सरग गए उड़ै कराई ।
कै यह सरग अपछरा बारी । इन्द्र सराप धरनि महँ डारी ।
क यह सरग बिरसपति नाऊ । इहा आइ दिन कर बिसराऊ ।
कै यह है डाइनि वन केरी । माया रूप धरेसि है फेरी ।[3]

---

१ मधुमालती (स० डा० गुप्त रा० स०) पृ० २८४-३६६ ।
२ देखिए मधुमालती (गुप्त, राज स०) पृ० ८४-८५ ।
३ वही पृ० १५६ ।

तथा

"पूँछेसि को हसि कहँ हुँत आवा। भएउ अइस कातर बौरावा।
मदन मूरति मानुस जस अहै। कहा नाउँ कस बात न कहै।

सत्त भाखु तै मो सेउँ, को हसि भूत बेतार।
राजकुँवर मानुस जस देखौं, कस छाँडेहि घर बार।

क मूरुख मन रहसि भुलाना। के रे ग्यान महँ चित्त समाना।
क रैं माइँ तोहि दीन्ह सरापा। क काहू सिर टौना थापा।
क रे गूद तोरें सिर फिरा। कै रे सिस्टि बिधि बाउर सिरा।"[१]

प्रेमा द्वारा अमृत फल (वृक्ष) की बात सुनकर कुमार जब उसके साथ अमृत-वृक्ष की खोज में जाता है, तो राक्षस आता हुआ दिखाई देता है और उसके सिर पर आग जलती हुई दृष्टिगोचर होती है, किन्तु आगे चल कर कवि राक्षस के आगमन के तथ्य को विस्मृत कर देता है। परिणाम यह होता है कि कुमार मनोहर प्रेमा के साथ जा कर उस अमृत वृक्ष को उखाड़ कर पहले उसकी डालों, पत्तों और फलों को अग्नि में जलाता है और फिर उसकी पीड़ के भारी काष्ठ को अग्नि में जला कर राख कर डालता है। तदनन्तर कुमार और प्रेमा जब चौखंडी को लौटते हैं तब भी वहाँ राक्षस का पता नहीं होता और न ही कवि वहाँ इस बात का कोई संकेत करता है कि आता हुआ राक्षस कहाँ गया। यही नहीं, आगे चल कर कवि अपने पूर्व कथन को नितान्त विस्मृत कर देता है और प्रातःकाल सूर्य रश्मियों के प्रसार के समय राक्षस के आगमन की बात कहता है —

'कहा कुँवर पेमा सघ आवहि। अम्रित फर ल मोहि देखावहि।
चला कुँवर पेमा सघ लागी। राक्स आउ सीस बरि आगी।
पेमा लै कुँवरहि गइ तहाँ। अम्रित बिरिछ फर अम्रित जहाँ।
कुँवर निरखि जौ बिरखि निहारा। देखत सुफल सघन कनियारा।
देखि कुँवर जिय दया जनाई। फरा बिरखि जौ काटि न जाई।
पेमैं जो कुँवरहि समुझावा। सुनतहि चेत कुँवर चित आवा।

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त), रा० स०, पृ० १५८-१६१।

तहँ बर गहि हरि माउ मभारा । ममिय बिरचि मेउ सुर प्रसारा ।
पुनि नव डार पान पर माहू । मैं सन कुँवर भागि महँ दाहू ।
पीठ म काठ रहा जा मारी । मा पुनि निठुर मगिनि मह जारी ।

म दिन बिरिग उपारि क, जारि कौ न तहि छार ।
रहस प्राण चौंदना, कामिनि मौर कुँवार ।।

रजनी घटि रवि किरनि दमाग । रावत हार वार मैं मार । [1]

कहने की आवश्यकता नहीं कि मधुमालती की वस्तु-संरचना की यह त्रुटि, जो कि लेखक की असावधानी का परिणाम है सूक्ष्म चेतना के लिए खटकने वाली है और उसकी सौन्दर्य सृष्टि में व्यवधान उत्पन्न करती है।

रक्ताश्रुओं का वर्णन भले ही वह फारसी की मसनवी से लिया गया हो अथवा उसकी प्रेम-पद्धति के अनुकूल क्यों न हो, अस्वाभाविक होने के कारण सौन्दर्य-सृष्टि का प्रतिपादक नहीं माना जा सकता। मधुमालती के कतिपय वर्णन ऐसे ही हैं। मधुमालती और प्रेमा दोनों ही रक्त के आँसुओं से रोती हैं। राक्षस द्वारा अपहृत होने की अवस्था में प्रेमा बारहों महीने रक्ताश्रुओं से रोती है। कुमार मनोहर से अपनी कहानी कहते समय वह न केवल रक्त के आँसुओं से रोती है प्रत्युत उसके नेत्र-समुद्र में रक्त की हिलोरें भी उठने लगती हैं। मधुमालती कुमार मनोहर के वियोग में रो रो कर इतने रक्ताश्रु गिराती है कि उसकी शय्या वीर-बहूटियों से भर जाती है। कुमार ताराचन्द से सहानुभूतिपूर्ण वचन सुनकर पक्षी रूपिणी मधुमालती नेत्रों में रक्त (रक्ताश्रु) भर कर रो रो कर उससे अपनी कहानी कहती है। विरह-व्यथिता मधुमालती श्रावण मास में जो रक्त के आँसू गिराती है वे वीर-बहूटी बन जाते हैं —

(क) बारह मास रकत मैं रोवा । मरन समान तु एक बिछोवा । [2]

(ख) 'रकत आँसु तस पंखी रोवा । जेहि रे सुना तेहि हिया करोवा ।
मन गहबर लिय उठा अंदोरा । नैन समुद्र है रकत हिलोरा ।' [3]

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त), राज संस्करण, पृ० २२६–२२७ ।
२ वही, पृ० १७६ ।
३ वही पृ० १८४ ।

(ग) "ऊभि सास हिय गह भरि आवै। तजि लज्या चखु रुहिर बहावै।
नैन भरनि भरि धार जो छूटी। सन पूरि जनु बीर बहूटी।"[1]

(घ) 'यह सुनि पद्धि रुहिर भरि नना। रोइ रोइ कहै कुवरसेउ बना।'[2]

(ज) "रक्त आसु धर परे जो टूटी। सावन भए ते बीर बहूटी।
मैं पिक रूप किरिउ सम बारा। नन रगत विरहै तन जारी।"[3]

कहने की आवश्यकता नहीं कि उक्त वर्णनों का औचित्य सन्देह का विषय है। रक्ताश्रुओं का यह उल्लेख अस्वाभाविक एव वीभत्स होने के कारण प्रभावहीन एव नीरस है। गनीमत यही हुई कि कवि ने 'विरह सराग ह भूज मासू' जैसे वीभत्स वर्णनों से अपने को बचा लिया।

प्रमा से राक्षस की बात सुनकर कुमार मनोहर पहले चकरा जाता है और वहा से चले जाने का निश्चय करता है सोचता है कि 'यदि राक्षस अभी आ जाए, तो मुझको एक पल मे मार कर छोड दे। उसके आगे पलायित होकर मैं कहा जाऊँगा?"[4] किन्तु वही मनोहर आगे चलकर प्रेमा से कहता है—'ऐ बालिका, तू अपने जी में भ्रम (भय) न माने मैं रघुवशी और राक्षसों का सहार करने वाला हूँ। गाय और स्त्री की रक्षा यदि मैं न करू तो ह प्रेमा, मेरी माता का कुल लज्जित होगा। यदि तुझे छोडकर मैं भाग जाऊ तो कुल की लज्जा जन्म भर में भी न धोई जाएगी। तू राक्षस से डर से मुझे क्या डराती है? तू अग्नि के भ्रम से यह राख क्या उडा रही है? राक्षस मेरा क्या कर सकता है? वह तो सहज कीडा है जो उजाला देखकर मर मिटता है। तू देख कि मैं राक्षस के प्राण किस प्रकार लेता हू और किस प्रकार उसका सहार करता हूँ। मैं खडग के पानी (धार) से आग उठाता हू, राक्षस को तो धूल और वायु से ही उडा सकता हू। अवसर आ बनने पर यदि क्षत्रिय भागता है तो उसके कुल को कलक लगता है और वह अपनी जननी को लज्जित करता है।"[5] कहने की आवश्यकता नही कि कुमार मनोहर के प्रथम एव द्वितीय कथनों

१ मधुमालती (डा० गुप्त, राज स०), पृ० ३०२।
२ वही, पृ० ३१६।
३ वही, पृ० ३५१।
४ वही, पृ० १८२-१८३।
५ वही, पृ० २१८-२१९।

एवं व्यापारों में आकाश-पाताल का अन्तर है जो एक दृष्टि से उचित होते हुए भी सर्वथा उचित नहीं कहे जा सकते। उसका प्राथमिक नव प्रमिका मधुमालती का नाम सुनकर उत्साह एवं उमंग के कारण भले ही दूना हो जाए पर गाय एवं स्त्री रक्षा का जो ध्यान तथा अपने कर्तव्य का जो भान उसे बाद में होता है, वह पहले क्यों नहीं हुआ, यह बात किंचित् खटकने वाली है। साथ ही रघुवंशी नायक राक्षस का नाम सुन कर इस प्रकार भयभीत हो जाए, विशेषकर ऐसा व्यक्ति जो कुछ ही क्षणों के अनन्तर अपनी वीरता एवं पौरुष की चकितकारी बातें कहे और कुछ समय उपरान्त उन्हें कार्य रूप में भी परिणत करके दिखा दे, यह बात कुछ उचित प्रतीत नहीं होती।

प्रमा की सखियों के सोलह शृंगार का उल्लेख भी अस्वाभाविक है। जिन सखियों के विषय में वह कहती है— वे आज तक प्रेम भाव नहीं जानती थीं, आज तक उनके गात में काम नहीं समाया था। आज भी उनका प्रेम का उभार थोड़ा था, आज भी उनके उरोज उभरे नहीं थे। आज भी उनकी यौवन कलिका मुकुलित नहीं हुई थी। आज भी उनका शरीर लड़कपन का भाव नहीं छोड़ रहा था।[1] वे आज भी चोली पहनना नहीं जानती थीं। आज भी सुरत और सौभाग्य की चोली पहनकर उन्होंने प्रेम और रूप से कंठ नहीं खोला था।[1] उन्हीं के विषय में उसका अन्त में यह कहना उचित नहीं प्रतीत होता —

'अकुलाने भा भंग सिंगारा। कंचुकि फाटि टूट गिय हारा।
परी अवस्था सब अकुलानी। नासत तिलक मांग उघसानी।
भौ सत जो घर रुत क आइ। नासि चलीं सें सब अवराद।
बहुतहि के बदन कर फूट। बहुत ह हार उरहि के टूट।
बहुत अधर पयोधर टारहि। बहुत चीर दगहि दखि रोवहि।'[2]

सोलह शृंगार के अन्तर्गत क्या-क्या आता है इसका उल्लेख इसके पूर्व किया जा चुका है। सौभाग्यवती विवाहिता नारियां ही सोलह शृंगार कर सकती हैं, अविवाहिता बालिकायें नहीं। अतः उनके षोडश शृंगार के भंग होने अथवा उनकी मांग के उद्ध्वस्त होने की कल्पना अनुचित है।

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त, राज सं०) पृ० १६८–१६६।
२ वही पृ० १७४–१७५।

राक्षस के वैरूप्य की सृष्टि नायक नायिका तथा अन्य पात्रों के सौंदर्य की प्रभविष्णुता वृद्धि के लिए की गई है किन्तु उसके वैरूप्य विधान में मझन को उतनी सफलता नही मिली जितनी कि वस्तुत आवश्यक थी। कहने की आवश्यकता नहीं कि राक्षस के वाह्य एव आतरिक वैरूप्य—उसके रूपाकार की भयकरता तथा कृत्यों की विगर्हणीयता—म वह शक्ति नही जो अन्य पात्रो की सौंदर्य-वृद्धि में अभीष्ट योग दे सकती। फिर भी उसके भयावह एव विराट् रूपाकार तथा कुत्सित कृत्यो से इस विषय में कुछ न कुछ योग अवश्य मिला है, इस तथ्य से इनकार नही किया जा सकता। उसका आकाश से पृथ्वी तक फैला हुआ विराट् रूप भयानक आकार प्रकार, आकाश को छूते हुए पाच मस्तक, पृथ्वी को छूते हुए पैर, काजल के समान रग, कुम्हडे के फलो के समान दात तथा कज्जलवत् दीर्घ भुजाए जिस प्रकार विगर्हणीय हैं उसी प्रकार उसका स्वभाव एव कार्य-व्यापार भी। उसकी तुलना मे राजकुमार मनोहर तथा ताराचद के कार्य व्यापार एव रूप-वैभव, उनका बाह्य एव आतरिक सौंदर्य कितना स्तुत्य है यह कदाचित् कहने की आवश्यकता नही।

उपसहार

मधुमालती सौंदर्य एव प्रेम की अद्भुत सृष्टि है राज रस की कथा है। उसका लेखक भावुक होने के साथ ही विचारशील एव निर्भीक व्यक्ति है। उसे अपनी कथा की महत्ता पर गर्व है। किन्तु वह जानता है कि मानव यदि मानव है तो उससे त्रुटिया होनी स्वाभाविक हैं। त्रलोक्य एव चौदहों भुवनों में यदि कोई निर्दोष है तो वह केवल परमात्मा है, उसके अतिरिक्त अन्य कोई नही। मनुष्य म दोष होने स्वाभाविक हैं, उनस मुक्ति उसके लिए सभव नही। अत यदि उसमे किसी प्रकार के दोष अथवा त्रुटियाँ हों अथवा इसके लिए उसके वृत्ति-व्यापारों पर किसी प्रकार का दोषारोपण किया जाय तो इसम आश्चर्य ही क्या है ? दोषी में दोष होगे ही। कवि अपनी कृति में त्रुटिया करेगा ही। अत यदि वह इसके लिए पडिता शास्त्रज्ञ विद्वानों अथवा आलोचकों का कोप भाजन बन तो इसमें कोई आश्चर्य नही। निर्दोष आत्मा को परमात्मा ने शरीर रूपी दोष मे सयुक्त करके ससार में उत्पन्न करके सदोष कर दिया। अत जब तक वह इस शरीर स सयुक्त है, तब तक निर्दोष नहीं हो सकता। किन्तु मात्र दोषारोपण के लिए काक-वृत्त्यात्मक आलोचना करना अथवा कीचड उछालना उन्हें पसद नहीं। ऐसे मूर्खों को, अपनी कृति के प्रारम्भ में ही, उन्होंने आडे हाथों लिया है। उनका स्पष्ट कथन है —

(क) मूरख जो रे उदेन्हि तेहि क नाहि मोहि सोच।

परिशिष्ट

हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानक काव्य

मझन सूफी कवि हैं। अत उनके सौन्दर्य-दर्शन के निदर्शन के साथ ही सूफी प्रेमाख्यानक काव्य के स्वरूप का स्पष्टीकरण भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त चूंकि आलोचना का उद्देश्य केवल किसी कृति का विश्लेषण ही नहीं प्रत्युत उसके कर्ता के व्यक्तित्व का उद्घाटन भी है,[1] अत मधुमालती मे आये हुए मझन के व्यक्तित्व सम्बन्धी उल्लेखों तथा उसमें अन्तर्हित उनकी वैयक्तिक विशेषताओं पर किंचित् प्रकाश डालना भी अपेक्षित है।

मझन का व्यक्तित्व

कला कृति की उत्तमता की कसौटी उसमे उसके कर्ता के व्यक्तित्व की अन्तर्हिति है।[2] उत्कृष्ट कलाकार की यह विशेषता है कि उसकी कृति मे उसकी वैयक्तिक विशेषताएँ उसी प्रकार प्रतिबिम्बायमान होती हैं जैसे मूर्तिकार की छेनी के चिह्नो अथवा पेण्टर के ब्रुश के आघातो मे उसका व्यक्तित्व व्यक्त होता है।[3]

---

1 Criticism must concern itself, not only with the finished work of art, but also with the workman his mental activity and his tools

—T S Eliot

2 The work of so and so is good because it is the perfect expression of his personality

—Sir Arthur Quiller Couch

3 Personality appears in a writer s language as it does in the strokes of the painter s brush or the marks of the sculptor s chisel

—David Cecil

मझन उत्कृष्ट कलाकार हैं। अतः उनकी 'मधुमालती' से उनके जीवन-वृत्त पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। उनका रचनाकाल, स्वभाव तथा उनके व्यक्तित्व की विभिन्न विशेषताएँ उसमें स्पष्ट जानी जा सकती हैं। उनकी गुरु भक्ति काव्य निर्माण क्षमता, व्यवहार पटुता बुद्धिमत्ता, विद्वत्ता एवं जानकारी, विनम्रता, साहस एवं निर्भीकता, विश्वासमयता, औचित्य मर्यादा एवं सौन्दर्य प्रेम, संक्षिप्त वर्णन की प्रवृत्ति तथा उदारता, सतर्कता एवं प्रमाद गुण के प्रति अनुरक्ति आदि उनके व्यक्तित्व की विशेषताएँ उनकी कृति 'मधुमालती' में उसी प्रकार अन्तर्व्याप्त हैं जैसे अम्बुधि में मुक्ता, मूँगा एवं रत्नादि अन्तर्हित रहते हैं। यही नहीं, उनके जन्म तथा मृत्यु के समय के विषय में भी, उसके आधार पर निर्णय किया जा सकता है—उनके जन्म एवं मृत्यु काल का उससे पता लगाया जा सकता है—भले ही उससे उनकी तद्विषयक निश्चित तिथियों का ज्ञान न हो। अतः उनकी कृति के आधार पर उनकी विभिन्न विशेषताओं एवं व्यक्तित्व सम्बन्धी अन्य उपकरणों का पृथक् पृथक् उल्लेख करना होगा।

आविर्भाव एवं रचनाकाल :—

मझन का आविर्भाव कब हुआ, यह निश्चित रूप से कहना कठिन है। अपनी कृति 'मधुमालती' की रचना का आरम्भ उन्होंने सन् ९५२ हिजरी (सन् १५४५ ई०) में किया, इस बात का उन्होंने स्पष्ट उल्लेख किया है। साथ ही इस प्रसंग में उन्होंने यह भी लिखा है कि उनकी रचनारम्भ की इस अभिलाषा के समय तक उनके गुरु शेख मुहम्मद गौस का देहावसान हो चुका था। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपने गुरु शेख मुहम्मद गौस के विषय में यह भी लिखा है कि वे १२ वर्ष तक चुनार नामक निर्जन, भयावह एवं दुर्गम वन-पर्वतों में ब्रह्म-समाधि लगाए रहे। अतः इन सबके आधार पर अनुमान यही लगाया जा सकता है कि उनका जन्म १६वीं शती के प्रथम अथवा द्वितीय शतक में (सन् १५१० ई० के आसपास) हुआ होगा।

उनकी मृत्यु के विषय में भी इसी प्रकार निश्चित रूप से कुछ कह सकना कठिन है। क्योंकि उसके विषय में उनकी कृति 'मधुमालती' में अथवा अन्यत्र अभी तक कोई उल्लेख नहीं मिला है। 'मधुमालती' के रचनारम्भ सन् १५४५ ई०[1] के आधार पर अनुमान यही लगाया जा सकता है कि उनकी मृत्यु सन् १६०० ई० अथवा

---

१ सन नौ सौ बावन जब भए। सती पुरुख कलि परिहरि गए।
तब हम जिय उपजी अभिलाखा। कथा एक बाँधउ रस भाखा।
—मधुमालती, (गुप्त, राज सं०), पृ० ३।

१५६० ई० के आसपास हुई होगी। अपनी कृति का आरम्भ उन्होंने सन् १५४५ ई० मे किया और सम्भवत इस उद्देश्य से कि उससे उनके गुरु शेख मुहम्मद की स्मृति सजीव रहे क्योंकि अपने गुरु के परम भक्त शिष्य के हृदय में उसके निधन के अनन्तर किसी कृति की रचना की अभिलाषा किसी विशेष उद्देश्य से प्रेरित हो कर ही हो सकती है। पुन 'मधुमालती' की रचना में भी कई वर्ष लग गए होंगे। इसके अतिरिक्त उनकी असामयिक मृत्यु का भी कही कोई उल्लेख नही मिलता। अत निश्चित है कि वे पर्याप्त दीर्घायु हुए होंगे। इन सबके आधार पर अनुमान यही किया जा सकता है कि उनका निधन सन १६०० अथवा १५६० ई० के आस पास हुआ होगा। उनके विषय म यह कहना कि उनकी मृत्यु सन १६२० में हुई भ्रामक है, क्योंकि कलकत्ता के विक्टोरिया मेमोरियल हाल क दाराब खा के चित्र में उल्लिखित जिस कवित्त को इसका आधार माना गया है[1] वह मधुमालतीकार मझन का न हो कर किसी अन्य मझन का है। कारण उसकी भाषा शैली मधुमालतीकार मझन की भाषा शैली से सर्वथा भिन्न है।

---

१ कलकत्ता के विक्टोरिया मेमोरियल हालमें संख्या ७४५ पर खानखाना के पुत्र दाराबखां का एक चित्र है जिसमें हिन्दी में एक कवित्त है —

दप दरबार आयो औचक ही हरबर
अम्बर अनीक बर बरबर करिकै।
तरपि तुरकमान साहसी दराबखान
कीनो कतलाम घमसान उग्र करिकै।
'मझन सुकवि कहै यह चाह पाई अहाँ
जीत को नगारयो बज्यो बीतत समर कै।
जो लौ हिमाचल तो लौं डमरू बजाव सम्भु
तो लौं डाक चौकी डंक मार्यो हरहर कै।

चूकि यह घटना सन १६२० की है, अत मझन संवत् १६६८ विक्रमी तक जीवित रहे होंगे।'

—हिन्दुस्तानी सन् १९३८, पृ० २११।

नाम —

मधुमालती की अब तक केवल चार प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं—

(१) नवाब रामपुर के पुस्तकालय की फारसी लिपि में लिखी प्रति।

(२) भारत कलाभवन, वाराणसी की फारसी लिपि की प्रति।

(३) माइक्रो-फिल्म कापी नेशनल आर्काइव्ज नई दिल्ली की नागरी लिपि की प्रति।

(४) एकडला, जिला फतेहपुर की नागरी लिपि की प्रति।

इनमें से नवाब रामपुर की प्रति की पुष्पिका में मलिक मन्झन (नुस्खे मधुमालती तसनीफ मलिक मन्झन बनारसी) और एकडला की प्रति में गुलतार मिर्ज़ा मन्झन (इति श्री गुलतार मिर्ज़ा मन्झन कृत) नाम आया है। माइक्रो फिल्म कापी नेशनल आर्काइव्ज नई दिल्ली की प्रति की पुष्पिका में केवल मन्झन (इति श्री मधुमालती कथा मधु मन्झन कृत समाप्त) नाम आया है। भारत कलाभवन की प्रति आदि मध्य और अन्त में खण्डित है अतः उसकी पुष्पिका के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। किन्तु उक्त तीन प्रतियों की पुष्पिकाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मन्झन सम्भवतः कवि का उपनाम था, पूरा नाम नहीं। उनका पूरा नाम गुलतार मिर्ज़ा मन्झन मलिक मन्झन, गुलतार मिर्ज़ा मलिक मन्झन अथवा गुलतार मलिक मन्झन था। मधुमालती में मन्झन नाम कई स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है, जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि मन्झन कवि का सम्भवतः उपनाम ही था, पूरा नाम नहीं। डा० शिवगोपाल मिश्र ने भी मन्झन को कवि का उपनाम माना है पूरा नाम नहीं।

धर्म

मन्झन हिन्दू थे या मुसलमान इस विषय में पहले मतभेद था। सत्यजीवन वर्मा की धारणा थी कि वे मुसलमान थे और चन्द्रबली पाण्डेय मधुमालती के प्रारम्भिक मंगलाचरण के आधार पर उन्हें हिन्दू मानते थे। किन्तु इस भेद का कारण मधुमालती की खण्डित प्रतियाँ था। पूर्ण प्रतियों के प्राप्त हो जाने के अनन्तर अब इस मतभेद के लिए कोई स्थान नहीं रहा। मधुमालती की प्रतियों की पुष्पिकाओं में दिए गए कवि के नामों से स्पष्ट है कि वह मुसलमान था हिन्दू नहीं। गुलतार मिर्ज़ा मन्झन गुलतार मलिक मन्झन अथवा मलिक मन्झन हिन्दू कैसे हो सकते हैं? इसके अतिरिक्त

मधुमालती के छंद ४२६ की निम्नांकित पंक्तियों के आधार पर भी यह सिद्ध किया जा सकता है कि मझन मुसलमान थे, हिंदू नहीं।

> प्रथमहिं सवरौं नाउ गोसाईं । जो भरि पूरि रहा सब ठाईं ।
> दूजे लेउ नाउ तेहि केरा । उतरब पार लागि जेहि बेरा ।

कहने की आवश्यकता नहीं कि ऊपर उद्धृत दूसरी पंक्ति की विचारधारा इस्लाम की है, जिससे स्पष्ट है कि मझन मुसलमान थे। इस विषय में डा० माताप्रसाद गुप्त लिखते हैं— स्पष्ट ही उद्धृत दूसरी पंक्ति की विचार धारा इस्लाम की है। किन्तु अन्यथा रचना के पूरे कथाभाग में ऐसे कोई संकेत नहीं मिलते हैं, जिनसे लेखक मुसलमान ज्ञात होता हो। पूरी कथा में हिन्दू वातावरण का निर्वाह किया गया है, यथा शपथ हिंदू त्रिदेवों की दिलाई गई है।"[1]

इसके अतिरिक्त ग्रन्थारम्भ मे ईश्वर वन्दना के अनन्तर मुहम्मद साहब की वन्दना खलीफाओं का स्मरण शाहे वक्त का गुण-गान तथा गुरु शेख मुहम्मद गौस का उल्लेख भी उन्हे मुसलमान सिद्ध करता है। कवि के द्वारा वर्णित प्रेम कहानी हिंदू पात्रों की है अत समस्त कथा म हिंदू वातावरण का निर्वाह किया गया है। किन्तु इसका यह आशय नहीं कि मझन हिन्दू थे, क्योंकि ऐसा केवल कथा की स्वाभाविकता के लिए किया गया है। 'ब्रह्मा', 'हरि' 'ओंकार', एकोंकार, 'विधाता' आदि शब्दों का प्रयोग तथा कथा भाग में कवि द्वारा अपनी भूल के लिए पश्चात्ताप एवं हरि स्मरण आदि कवि की उदारता के द्योतक हैं उसके हिंदू होने के प्रमाण नहीं।

गुरु भक्ति —

मझन के गुरु शेख मुहम्मद गौस सत्तारी सम्प्रदाय के सूफी सन्त थे। मझन ने उन्ह बडे शेख कहकर उनकी बडी प्रशंसा की है। उनके अनुसार वे जिस पर हृदय से स्नेहपूर्ण कृपा करते थे उसे सहज ही बुलाकर राजा बना देते थे। बाबर की उनके प्रति अगाध श्रद्धा थी और उन्हीं की आज्ञा से उन्होंने हुमायूं को राज छत्र दिया था। अत हुमायूं पर भी उनका प्रभाव था और यही कारण था कि उनको शेरशाह का कोप भाजन बनकर बारह वर्ष तक अज्ञातवास करना पड़ा था।

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त राज स०), भूमिका, पृ० १९।

मंझन अपने गुरु के सच्चे शिष्य थे। उनके प्रति उनके हृदय में अगाध श्रद्धा थी। यही कारण है कि उन्होंने उनकी महिमा का बड़ी निष्ठा के साथ विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। उनकी निम्नांकित पंक्तियाँ उनके सच्चे शिष्यत्व, गुरु भक्ति तथा श्रद्धालु-हृदयता की परिचायिका हैं —

(क) सेख मुहम्मद पीर पियारा। जाउ समुद नाउ कँडहारा।
सँवरि पाउँ जो भाव कोई। परसन मुख स्वत सुख होई।
पुनि दुइ जग पूज मन आसा। परसत चरन पाप गा नासा।[1]

(ख) जस पारस के परसत लोह कनक होइ जाइ।
तिमि मैं सेख मुहम्मद दरस बिनु साहस सिधि पाइ॥[2]

(ग) परम तत्व सो सोत जो जाने। सो मन के सागर पहिचाने।
मन के सागर विसम अपारा। गुरु होइ सो लावै पारा।

\+ + + +

एक साऊ विधि निरमय सिरिटि राउ अपार।
इन्ह दूनो सिर ऊपर गौस मोहम्मद पीर॥[3]

(घ) ग्यान समुद मथहि गंभीरा। जेइ रवा सो मानिक हीरा।

\+ + + +

जा कहँ अमिय सिन्धु ता कहँ अमिय सिद्धि।
उदधि अपार पीर कलिजुग महँ ग्यान धरम के निद्धि॥[4]

(च) जो काहू मन इच्छा के आवै। रसत सुख परतिग्या पावै।
ता कहँ ब्रह्मग्यान चित आवै। सो लौ लीन तत दरसावै।

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त, रा० स०) पृ० १४।
२ वही, पृ० १५।
३ वही, पृ० १६।
४ वही पृ० १६।

+ + + +

जेहि सिर पुब्ब करम कै रेखा । तेइ जग सेत मुहम्मद देखा ।[१]

(छ) एहि कलि जेते पंडित भए । मूँड मुड़ाइ सिद्धि लै गए ।
अरु अनेग मूरुख जग आए । ते सभ ब्रह्म पद ग्यान चताए ।

+ + + +

जो षाइ चारि देवस सध रहा । ते छांडा दुहुँ जग सध गहा ।[२]

(ज) बारह बरिख तहाँ गा दूरे । जहाँ सूर ससि दिस्टि न परे ।

+ + + +

तहाँ जाइ कै जपेउ बिधाता । कै अहार बन जामुनि पाता ।
मन मतंग मारि बस किया । ग्यान महारस अंब्रित पिया ।[३]

निवास स्थान :—

मधुमालती में कथानक से सम्बद्ध चार नगरों एवं उनके गढ़ों के अतिरिक्त चर्नाढ़ी (चरणाद्रि = चुनार) नगरी तथा उसके गढ़ का वर्णन कथानक से सम्बद्ध न होने के कारण मंझन के निवास स्थान का द्योतक है ।

मंझन चरणाद्रि (चुनार) गढ के निवासी थे । मधुमालती में कथानक से सम्बद्ध मनोहर, मधुमालती, ताराचन्द और प्रेमा के नगरों (कनकगिरि, महारस नगर, पैनेरगढ अथवा पद्मनगरी तथा चित्तविश्रामनगर) के अतिरिक्त चर्नाढ़ी (चरणाद्रि) अथवा चुनार का जो उल्लेख है उसकी आवश्यकता न थी किन्तु अपने निवास स्थान के वर्णन का लोभ संवरण न कर सकने के कारण मंझन ने ऐसा किया, है जो स्पष्ट ही उनके जन्म भूमि प्रेम का द्योतक है । चुनारगढ मुस्लिम युग में महत्वपूर्ण गढ माना जाता था । इसके उत्तर पश्चिम में गंगा और पूर्व में जरगो

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त रा० स०), पृ० १७ ।

२ वही, पृ० १८ ।

३ वही, पृ० १६ ।

नदी बहती है। अतः इसके विषय में की जाने वाली कल्पनाएँ तथा इसे ग्वालियरगढ़ सिद्ध करने के प्रयत्न उचित नहीं। ग्वालियरगढ़ से इसका सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता, क्योंकि इसकी गंगातटवर्ती स्थिति तथा व्युत्पत्ति स्पष्ट है।

सतर्क एवं बुद्धिमान् कवि.—

मंझन सतर्क एवं बुद्धिमान् कवि हैं, मधुमालती से यह स्पष्ट जाना जा सकता है। पुनरुक्तियों तथा विषयान्तरों से किस प्रकार बचना चाहिए यह वे भली भाँति जानते हैं। नायक-नायिका के प्रथम साक्षात्कार के अनन्तर कवि निद्रा के गुणावगुण का जो निरूपण करने लगता है, ध्यान आने पर उसे इस विषयान्तर का दुःख होता है और वह पश्चाताप करते हुए कह उठता है —

हरि हरि कहा गएउ कह रहऊ। का किछु कहै निएउ का कहऊ।
कुँवर बात कहिब मैं लई। बीच नींद मोहि हरि लै गई।
अब हौं पलटि कहौं सुनु बाता। जस कुमार सुख निद्रा माता।[1]

पुनरावृत्तियों से वे यथाशक्ति बचने का प्रयत्न करते हैं। अतः यदि किसी विषय का वर्णन दो बार आने वाला होता है तो वे यथासम्भव एक ही बार करते हैं और उसके लिए उपयुक्त भूमिका बाँध देते हैं। उदाहरणार्थ मधुमालती तथा प्रेमा जब अपने माता पिता से विदा लेकर अपने अपने पतियों के साथ रहने के लिए उनके जनवासों में जाती हैं तो कवि उनकी विदाई के दुःख का वर्णन न करके श्वसुरालय प्रस्थान प्रसंग के लिए उसे छोड़ देता है —

करुना मैं न बखाना समन्त राजकुमारि।
दुवौ कुँवरि जब चलिहहिं तब किछु कहब विचारि।[2]

इसी प्रकार राजकुमारियों की विदाई के प्रसंग में वह मधुमालती तथा प्रेमा दोनों की विदाई का पृथक-पृथक वर्णन न करके केवल एक की ही विदाई का वर्णन करता है।

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त, रा० सं०), पृ० ५६।

२ वही, पृष्ठ ४०६।

विचारशीलता .—

मंझन विचारशील व्यक्ति हैं। वे जानते हैं कि त्रलोक्य एवं चौदहों भुवनों में यदि कोई निर्दोष है तो वह परमात्मा है, उसके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं। मनुष्य में दोष होने स्वाभाविक हैं उनसे मुक्ति उसके लिए सम्भव नहीं। कवि अपनी कृति में त्रुटियां करेगा ही। अत यदि वह इसके लिए विद्वानों अथवा आलोचकों का कोप भाजन बने तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। निर्दोष आत्मा को परमात्मा ने शरीर रूपी दोष से संयुक्त कर संसार में उत्पन्न करके सदोष कर दिया। अत जब तक वह इस शरीर से संयुक्त है तब तक निर्दोष नहीं हो सकता। किन्तु वे जानते हैं कि विद्वान् उन पर दोषारोपण नहीं करेंगे, क्योंकि वे मनुष्य की अपूर्णता एवं सदोषता से परिचित हैं। मूर्ख एवं अज्ञानी अवश्य उनके दोषों को बढ़ा चढ़ा कर कहेंगे, पर इसकी उन्हें चिंता नहीं। यही कारण है कि वे जहां पंडितों से अपनी कृति के दोष संशोधन के लिए विनम्रतापूर्वक प्रार्थना करते हैं वहां मूर्खों की चिंता न करके उनकी निर्भीकतापूर्वक भर्त्सना। उनकी निम्नांकित पंक्तियाँ उनकी विचारशीलता, विनम्रता एवं निर्भीकता की द्योतक हैं —

> पंडित सुनु बिनती यह मोरी। बिनवौं पाय लागि कर जोरी।
> जौं भल बचन सराहि न जाई। ओछ न दूलबु दोस लगाई।
> जौं पढ़ि बचन भला किछु भेदहु। दोस लाइ जनि ओछ उछेदहु।
> जहां न अच्छर जुरै सवारहु। भलया भए भल मन बिचारहु।
> का तहिं लिखे ओछ जा हाई। कहहु काह लै कीजै सोई।
>
> मूरुख जौ रे उछेदहि तहि कै नाहि मोहि सोच।
> धनि जग ताकर औतरब अरथ लाइ गह पोच।

सौन्दर्योपासक वृत्ति —

मंझन सौन्दर्योपासक कलाकार हैं। उनका सौन्दर्य-प्रेम सामान्य कवियों से बहुत बढ़ा चढ़ा है। अपने सौंदर्य प्रेम के कारण ही वे 'मधुमालती' जैसी उत्कृष्ट कृति की रचना कर सके। किंतु उनका यह सौंदर्य प्रेम केवल बाह्य सौन्दर्य तक

मधुमालती (डा० गुप्त राज स०), पृ० ३५।

नदी बहती है। अत इसके विषय में की जाने वाली कल्पनाएँ तथा इसे ग्वालियरगढ़ सिद्ध करने के प्रयत्न उचित नहीं। ग्वालियरगढ़ से इसका सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता, क्योंकि इसकी गंगातटवर्ती स्थिति तथा व्युत्पत्ति स्पष्ट है।

सर्तक एवं बुद्धिमान् कवि —

मझन सतक एव बुद्धिमान् कवि हैं, मधुमालती से यह स्पष्ट जाना जा सकता है। पुनरुक्तियां तथा विषयान्तरों से किस प्रकार बचना चाहिये यह वे भली भांति जानते हैं। नायक-नायिका के प्रथम साक्षात्कार के अनन्तर कवि निद्रा के गुणावगुण का जो निरूपण करने लगता है, ध्यान आने पर उसे इस विषयान्तर का दुख होता है और वह पश्चात्ताप करते हुए कह उठता है —

> हरि हरि कहा गएउ कह रहेऊ। का किछु कहै लिएउ का कहेऊ।
> कुंवर बात कहिब मैं लई। बीच नींद मोहि हरि लै गई।
> अब हौं पलटि कहौं सुनु बाता। जस कुमार सुख निंद्रा माता।[1]

पुनरावृत्तियों से वे यथाशक्ति बचने का प्रयत्न करते हैं। अत यदि किसी विषय का वर्णन दो बार आने वाला होता है तो वे यथासम्भव एक ही बार करते हैं और उसके लिए उपयुक्त भूमिका बांध देते हैं। उदाहरणार्थ मधुमालती तथा प्रेमा जब अपने माता पिता से विदा लेकर अपने अपने पतियों के साथ रहने के लिए उनके जनवासों में जाती हैं तो कवि उनकी विदाई के दुख का वर्णन न करके श्वसुरालय प्रस्थान प्रसंग के लिए उसे छोड़ देता है —

> करुना मैं न बखाना समन्त राजकुमारि।
> दुवौ कुंवरि जब चलिहहिं तब किछु कहब विचारि।[2]

इसी प्रकार राजकुमारियों की विदाई के प्रसंग में वह मधुमालती तथा प्रेमा दोनों की विदाई का पृथक-पृथक वर्णन न करके केवल एक की ही विदाई का वर्णन करता है।

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त, रा० स०), पृ० ५६।

२ वही, पृष्ठ ४०६।

विचारशीलता :—

मंझन विचारशील व्यक्ति हैं। वे जानते हैं कि अलोकेश एवं चौदहों भुवनों में यदि कोई निर्दोष है तो वह परमात्मा है उसके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं। मनुष्य में दोष होने स्वाभाविक हैं उनसे मुक्ति उसके लिए सम्भव नहीं। कवि अपनी कृति में त्रुटियां करेगा ही। अतः यदि वह इसके लिए विद्वानों अथवा आलोचकों का कोप भाजन बने तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं। निर्दोष आत्मा को परमात्मा ने शरीर रूपी दोष से संयुक्त कर संसार में उत्पन्न करके सदोष कर दिया। अतः जब तक वह इस शरीर से संयुक्त है तब तक निर्दोष नहीं हो सकता। किन्तु वे जानते हैं कि विद्वान् उन पर दोषारोपण नहीं करेंगे क्योंकि वे मनुष्य की अपूर्णता एवं सदोषता से परिचित हैं। मूर्ख एवं अज्ञानी अवश्य उनके दोषों को बढ़ा चढ़ा कर कहेंगे पर इसकी उन्हें चिंता नहीं। यही कारण है कि वे जहाँ पंडितों से अपनी कृति के दोष संशोधन के लिए विनम्रतापूर्वक प्रार्थना करते हैं वहाँ मूर्खों की चिंता न करके उनकी निर्भीकतापूर्वक भर्त्सना। उनकी निम्नांकित पंक्तियाँ उनकी विचारशीलता, विनम्रता एवं निर्भीकता की द्योतक हैं —

पंडित सुनु बिनती यह मोरी। बिनवौं पाय लागि कर जोरी।
जौ भल बचन सराहि न जाई। क्रोध न दूतबु दोस लगाई।
जौ पढ़ि बचन भला किछु भेन्हु। दोस लाइ जनि क्रोध उठेदहु।
जहाँ न अच्छर जुरै सवारहु। भलया भए भल मन बिचारहु।
का तहि लिखे मांछ जो हार्ई। कहहु काह ल कीजै सोई।

मूरुख जो रे उठेन्हि तेहि क नाहि मोहि सोच।
धनि जग ताकर औनरव अरथ लाइ गहु पोच।

सौन्दर्योपासक वृत्ति :—

मंझन सौन्दर्योपासक कलाकार हैं। उनका सौन्दर्य प्रेम सामान्य कवियों से बहुत बढ़ा चढ़ा है। अपने सौन्दर्य प्रेम के कारण ही वे 'मधुमालती' जैसी उत्कृष्ट कृति की रचना कर सके। किन्तु उनका यह सौन्दर्य प्रेम केवल बाह्य सौन्दर्य तक

मधुमालती (डा० गुप्त राज सं०), पृ० ३५।

ही सीमित नहीं। प्राकृतिक प्राभिव्यक्तिक तथा अन्य सौन्दर्य रूपों का भी उनके हृदय में उतना ही स्थान है जितना कि बाह्य सौंदर्य का।

मर्यादा-प्रेम —

सौन्दर्योपासक होते हुए भी मंझन का मर्यादा में पर्याप्त प्रेम है। मर्यादा-पालन एवं संकोचशीलता की भावना के कारण ही उन्होंने मधुमालती के गुह्यांग का वर्णन नहीं किया —

गुरजन लाज मनहिं मन मानउं। तो नहि मंझन कहउँ बखानउँ।[1]

कहने की आवश्यकता नहीं कि उनका सौन्दर्य प्रेमी हृदय यद्यपि नायिका के नितम्बों के सौन्दर्य से अभिभूत होकर उनमें जाकर चिपक जाता है, और वे उसमें आत्म विभोर हो जाते हैं तथापि उनका मर्यादा प्रेम उन्हें अपनी सीमा का अतिक्रमण करने नहीं देता।

संक्षिप्त वर्णन की प्रवृत्ति —

मंझन संक्षिप्त वर्णनों के समर्थक हैं यह उनकी कृति 'मधुमालती' से स्पष्ट परिलक्षित होता है। जायसी के समान उन्हें न तो विषयान्तरों से प्रेम है और न वर्णन विस्तार से। यही कारण है कि उनकी कृति में विषयान्तरों तथा वर्णन विस्तार का प्रायः अभाव है। गुरु-प्रेम के कारण उन्होंने अपने गुरु शेख मुहम्मद गौस का अवश्य विस्तार से वर्णन किया है पर अन्य सभी वर्णन प्रायः संक्षिप्त हैं। कहना न होगा कि 'मधुमालती' के महाकाव्य न बन सकने का एक प्रमुख कारण कवि की संक्षिप्त वर्णन की प्रवृत्ति है।

प्रसाद गुण प्रेमी —

काव्य-गुणों में प्रसाद गुण का महत्त्व प्रायः सर्वमान्य है। दुरूहता काव्य का गुण नहीं दोष है। मंझन इस तथ्य से परिचित थे। यही कारण है कि उनके हृदय में प्रसाद गुण के प्रति जो अनुरक्ति है उसे उन्होंने स्पष्ट अभिव्यक्ति दी है। उनका कथन है कि उन्होंने प्रसाद गुण के लिए अन्य गुणों को छोड़ दिया —

---

[1] मधुमालती (डॉ॰ गुप्त, सं॰ सं॰) पृ॰ ८१।

मैं छाडेउ गुन कर परसादू। तुम्ह छाड़हु जो बाद सवादू।[1]

विद्वत्ता एव बहुज्ञता :—

मझन विद्वान् तथा बहुज्ञ थे यह उनकी कृति मधुमालती से स्पष्ट है। हठ योग, ज्योतिष विज्ञान तथा कोकशास्त्र आदि का उन्हें पर्याप्त ज्ञान था, यह उनके वर्णनों से स्पष्ट है। निम्नांकित पंक्तियां उनके ज्योतिष सम्बन्धी ज्ञान का उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

(क) सतति आस राज जौ पाई। करै लाग सुत आस बधाई।
मेख लगन अमुनी यसारा। दसए मास ऊंच औतारा।
पचए ससि औ सूरुज सतए। दसए सुक्र बिरस्पति नवए।
दिस्टि सनीचर नखत निलारा। दसई राति भएउ औतारा।[2]

मदन मूरति औ भागिवत रानी राउ अधार।
सुभम महूरत औतरा राजा कुल उजियार।[2]

(ख) पंडितन गनि गुनि कहा बिचारी। होइ नरेस छत्रपति भारी।
गन गध्रप मुनि बार नोहारहिं। जग नरेस सम सेवा सारहिं।

+ + + +

लखन चीन्ह रुद्र रेखा कंठ माथ दुहु पाउ।
सिघ रासि कुल दीपक धरेउ मनोहर नाउ।[3]

(ग) चौदह बरिस इगारह मासा। नवए दिन पूनिब परगासा।
जनम सूर सतए ससि तारा। मिल सजन कोटू पेय पियारा।
बुद्धवार बिहफ क राती। उपजहि बिरह कुंवर क छाती।

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त, रा० स०), पृ० ३३।
२ वही, पृ० ४१।
३ वही, पृ० ४२।

जो पिय कर मन राखि न पाई। चित अपने मुखतुम्ह हेउ जाई।
साई सेव जनम सुख सारै। साई सब परत्तर तारै।[1]

(ग) सासुहि उतर न दीबी काऊ। सइ दुइ छूनि परवारबि पाऊ।
हसि क पलवि सासु कै गारी। पलटि उतर नहि दीबी बारी।
श्रौ सौतिन सउ करबि मिताई। रहबि जानु एक जननि कै जाई।

प्रेम, वात्सल्य तथा ममत्व की प्रतिमूर्ति :—

मझन प्रेम, वात्सल्य एव ममत्व की प्रतिमूर्ति हैं, यह मधुमालती की कथावस्तु तथा वर्णनों से स्पष्ट परिलक्षित होता है। राजा सूर्यभानु चित्रसेन तथा विक्रमराज श्रौर रानी कमलावती रूपमजरी तथा मधुरा का वात्सल्य प्रेम एक प्रकार से मझन के वात्सल्य प्रेमी हृदय की देन है। साथ ही कथावस्तु में उनके हृदय का प्रेम एव ममत्व भी स्पष्ट प्रतिबिम्बायमान होता प्रतीत होता है। यह उनके व्यक्तित्व की विशेषता के कारण ही है कि उनकी कृति मधुमालती प्रेम, ममत्व एव वात्सल्य का श्रागार बन गई है।

अद्वैतवादी भावना —

जैसा कि कहा जा चुका है मझन निर्भीक कलाकार हैं। भारतीय दर्शन तथा श्रद्वैतवाद का उन पर पर्याप्त प्रभाव पड़ा है श्रौर अपनी निर्भीकता के कारण उन्होंने उसको स्पष्ट अभिव्यक्ति भी दी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि अनलहक के उद्घोषक मसूर को अपने जिस सिद्धान्त के लिए सूली पर चढ़ना पड़ा था, एकेश्वरवाद के समर्थक अपने साथी मुसलमानों की चिंता न करके हिन्दू वेदान्त की उसी श्रद्वैतवादी भावना की निर्भीकता पूर्वक व्यजना करना मझन की विशेषता है —

तैं जलनिधि सब निधि का भरा। काहे मरसि गरब बस परा।
तोर बदन तिरभुवन श्रजोरा। सकल सिस्टि मुख दरपन तोरा।
तोरिय जोति सकल परगासा। मितु लोक पाताल अगासा।

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त, रा० स०), पृ० ४४८।
२ वही, पृ० ४४६।

मझम विस्टि मह परगट तुहीं। सरवस मुइ दासर काइ नहीं।
जो पाइ माथ माइ [प] आवा। मा का जाइ जहि नहि बिनु मावा।

कौन सा ठाउ जहाँ न नाहीं तीनि भुवन उजियार।
निरमि ष्हु ने मरवस पूरे मर टा तोर ववहार।[1]

इस विषय में डा० मातादसाद गुप्त ने ठीक ही लिखा है —

गद मुसलमान होने के नाते यह कहने के लिए मझन म एक असाधारण मास्म और निर्भीकता का करना करनी पड़ती है। यह विचार धारा उस युग के सामान्य सूफियों का पक्ति स निकाल कर मझन को उन सूफी सन्तों की कोटि में ला बिठानती है जो इस्लाम स लगाव रखते हुए भी भारतीय अद्वैतवाद के पुन समर्थक थे। यह मझन की एक बड़ा विशेषता है।[2]

इस प्रकार स्पष्ट है कि मझन निर्भीक मान्सी उदार प्रकृत, बुद्धिमान् महात्मा, सौन्दय एव मर्यादितना प्रमी, व्यवहार कुशल एव सामाजिकता में पटु प्रम ममत्व एव वात्सल्यकी प्रतिमूर्ति सच्चे शिष्य औचित्यानौचित्य का ध्यान रखने वाले विचारशील व्यक्ति तथा मनक एव बुद्धिमान कलाकार हैं। सत्यनिष्ठता करुणा, त्याग परोपकार सवाधीनता प्रम विरह दुख कष्ट सहिष्णुता एव साधना का उनकी दृष्टि में अपरिमय महत्त्व है। उदार सूफी सन्त की दृष्टि स उनका सानी सम्भवत दूसरा नहीं।

सूफी प्रेमाख्यानक काव्य उद्भव, विकास एव स्वरूप —

'सूफी शब्द का व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों म पर्याप्त मतभेद है। विभिन्न विद्वान् उसकी व्युत्पत्ति विभिन्न प्रकार स करते हैं—कोई उसका सम्बन्ध अरबी सफ' (पंक्ति) शब्द म जोड़ता है कोई 'सोफिया' (ज्ञान) स, कोई सुफ्फा (चबूतरा) स, कोई सफा (स्वच्छ या पवित्र) स कोई 'सुफ्फाह (भक्त विशष) स कोई सूफा' (अरब की एक जाति विशष) स और कोई सूफ (ऊन अथवा सफ दऊन) स। प्रथम वग के विद्वानों का मान्यता है कि 'सूफी' व व्यक्ति हैं जो अपने पवित्र जीवन एव सदाचार के कारण निर्णय के दिन खुदा क सामने अग्रिम पंक्ति में खड़े होने क

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त रा० स०) पृ० २६-२७।
२ वही भूमिका पृ० २१।

अधिकारी होंगे। उस समय उन्हें प्रथम पंक्ति में खड़े हुए देखकर जब मुहम्मद साहब खुदा से कहेंगे—'ऐ खुदावन्द! ये लोग कौन हैं, मैं नहीं जानता' उस समय खुदा कहेगा—'ऐ मुहम्मद! जिनको तुमने पेश किया है वे तुम्हें जानते हैं, मुझे नहीं जानते। ये लोग मुझे जानते हैं तुम्हें नहीं जानते।" द्वितीय वर्ग के विद्वानों की धारणा है कि 'सूफी' शब्द का सम्बन्ध 'सोफिया' अथवा 'सोफिस्त' शब्द से है जो ज्ञान का रूपान्तर है। उनके अनुसार 'सोफिस्त' अर्थात ज्ञानी होने के कारण ये लोग सूफी कहलाए। तीसरे वर्ग के अनुसार मदीना की मस्जिदके सामने के 'सुफ्फा' (चबूतरा) पर बैठकर रात व्यतीत करने वाले मुसलमान निर्धन फकीर आगे चलकर सूफी कहे जाने लगे। चौथे वर्ग के विद्वानों के अनुसार 'सूफी' वस्तुतः सफा (स्वच्छ या पवित्र) रहने के कारण इस संज्ञा के अधिकारी हुए। पाँचवा वर्ग 'सूफी' शब्द को सुफ्फाह' अर्थात् भक्त विशेष की आख्या मानता है और छठे के अनुसार 'सूफी' शब्द का सम्बन्ध सूफा अर्थात अरब की एक जाति विशेष से है। किन्तु वस्तुतः 'सूफी' शब्द का मूल 'सूफ' शब्द है जिसका अर्थ ऊन होता है। सूफी ऊन के वस्त्र धारण करने वाले वे उदार मुसलमान फकीर हैं जो 'सूफ' वस्त्रधारी होने के कारण कालान्तर में सूफी कहे जाने लगे। पं० परशुराम चतुर्वेदी, श्री अबू नस्र अल-सर्राज एनसाइक्लोपेडिया आव इस्लाम तथा एन्साइक्लोपेडिया ब्रिटानिका की अधोंकित पंक्तियों से भी इसी मत की पुष्टि होती है—

(क) सूफी शब्द मूलतः उन अरब और ईराक देशों के कतिपय व्यक्तियों को ही सूचित करता जान पड़ता है जो मोटे ऊनी वस्त्रों का चोगा पहना करते थे, जो विरक्तों एवं संन्यासियों का सा पवित्र जीवन यापन करते थे तथा जो अपनी महत्त्वपूर्ण साधनाओं के कारण मुस्लिमों की अगली पंक्ति में खड़े होने के अधिकारी थे।'[1]

(ख) " the word Sufi' is derived from Suf (wool), for the woolen raiment is the habit of the prophets and the badge of the saints and elect, as appears in many traditions and narratives "[2]

(ग) 'Tasawwuf formed from the root Suf, meaning wool' to denote "the practice of wearing the woollen robe (labsal Suf)",

---

१, पं० परशुराम चतुर्वेदी।

२ Abu Nasr al Sarraj Enclopaedia of Religion and Ethics Vol XII, 1921 P 10

hence the act of devoting oneself to the mystic life on becoming what is called in Islam a Sufi.[1]

(घ) Sufism (Tasawwuf) is formed from the Arabic word Sufi, which was applied, in the Second Century of Islam to men or women who adopted an ascetic or quietistic way of life. The word Sufi from Suf (wool) refers to garments worn by such persons.'[2]

सूफी धर्म की व्याख्या विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से की है। अल गज़ाली के अनुसार परमात्मा के ध्यान में निरन्तर तल्लीन रहना, उसमें सतत निवास करना और मानव समाज के साथ शान्तिमय जीवन व्यतीत करना ही सूफी धर्म का पालन करना है।[3] अबू सहल का कथन है कि ईश्वरीय विधि निषेध में सन्तोष और दैवीय घटनाओं के समय सर्वस्व समर्पण की भावना का परिचय देना ही सूफी धर्म है। इसी प्रकार कतिपय विद्वानों के अनुसार 'संसार के प्रति घृणा और परमात्मा के प्रति प्रेम',[4] कतिपय के अनुसार 'मनुष्य की वह महान् विरक्ति जो उसे लोक परलोक में परमात्मा के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं दृष्टिपात करने नहीं देती'[5] कतिपय के अनुसार 'अपने अस्तित्व की समाप्ति तथा परमात्मा की चेतना और उसमें निवास'[6] और कतिपय के अनुसार अमूर्त साधना ही सूफी धर्म है।

---

1 Shorter Encyclopaedia of Islam (Gibb and kramers 61), P 579

2 Encyclopaedia Britannica Vol 21, 1965, P 523

3 To be a Sufi' he said means to abide continuously in God and to live at peace with men....
—Al Ghazzali the mystic P 104

4 ....Sufism was the expression of a profound religious feeling — hatred of the world and love of the Lord"
—Abul Hasan Alnoori A Literary History of the Arabs P 392

5 Tasawwuf is renunciation i.e. guarding oneself against seeing other than God in both the worlds
—Abu Bakar Shibli Islamic Sufism P 20

6 'Tasawwuf is this that God should make thee die from thyself and should make thee live in Him"
—Junayd A Literary History of the Arabs P 392

उक्त समस्त व्याख्याओं से स्पष्ट है कि सूफी धर्म का मूल सिद्धान्त संसार के प्रति विरक्ति तथा परमात्मा के प्रति अनुरक्ति है।

'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति तथा सूफी धर्म की व्याख्या के समान ही सूफी धर्म के आविर्भाव काल एवं मूल स्रोत के विषय में भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। एक वर्ग के विचारकों की धारणा है कि आदम सबसे पहले सूफी थे और सूफी धर्म का अस्तित्व सृष्टि के आदि काल से है। दूसरे वर्ग के विचारकों की मान्यता है कि प्रथम सूफी मसीह के शिष्य थे। अतः सूफी धर्म का आविर्भाव ईसा मसीह के समय अर्थात् ईसवी सन् के प्रारम्भ के पूर्व ही हो गया था। तृतीय वर्ग के मनीषी सूफी मत को इस्लाम के विरुद्ध आर्य धर्म की प्रतिक्रिया मानते हुए उसका उद्भव इस्लाम धर्म के आविर्भाव के उत्तरवर्ती काल में मानते हैं। इसी प्रकार कतिपय विचारकों के अनुसार सूफी मत का उद्भव कुरान की रहस्यमयी उक्तियों से और कतिपय के अनुसार नव अफला-तूनी मत से हुआ और कतिपय के अनुसार उसका इन सबसे परे सर्वथा स्वतन्त्र विकास हुआ। इसके अतिरिक्त कतिपय लोगों का कथन है कि सूफी मत का 'आदम में बीजवपन, नूह में अंकुर, इब्राहीम में कली, मूसा में विकास, मसीह में परिपाक और मुहम्मद में मधु का फलागम हुआ।" कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार विभिन्न विचारकों के अनुसार सूफी मत का आविर्भाव काल एवं मूलस्रोत भिन्न भिन्न है। किन्तु सम्यक् विचार करने से विदित होता है कि सूफी धर्म का अस्तित्व न तो आदम के समय अथवा सृष्टि के आदिकाल से है और न ईसा मसीह के समय से। उसका आविर्भाव, वस्तुतः, अनुदार इस्लाम धर्मावलम्बियों की विचारधारा एवं वृत्ति व्यापारों की प्रतिक्रिया तथा आर्य धर्म की सहानुभूति में, ईसा की दसवीं ग्यारहवीं शती में हुआ और तभी से उसका प्रचार व प्रसार होता रहा। सूफी मत का मूला-धार इश्क मजाजी (लौकिक प्रेम) था, जिसका प्रारम्भिक अवस्था में, सामी जातियों द्वारा पर्याप्त विरोध हुआ। सूफियों के अनुसार इश्क मजाजी (लौकिक प्रेम) इश्क हकीकी (अलौकिक अथवा आध्यात्मिक प्रेम) का प्रथम सोपान है। कभी कभी ये लोग किसी देवता के वश में होकर बोलने लग जाते थे। उनके इस बोलने को 'इलहाम' और 'इलहाम' की दशा को 'हाल' की संज्ञा से अभिहित किया गया है। सामियों में एक गुह्य वर्ग था, जो निरन्तर मद्यपान करता रहता था। सूफियों का प्रेम तत्त्व इसी गुह्य वर्ग की देन है। सूफी धर्म में मनुष्य के चार भाग माने गये हैं—(१) नफ्स (विषय भोग-वृत्ति या इन्द्रिय), (२) रूह (आत्मा), (३) कल्ब (हृदय) और (४) अक्ल (बुद्धि)।

सूफी सिद्धान्तों के अनुसार नफ्स के साथ युद्ध साधक का प्रथम लक्ष्य होना चाहिए और कल्ब (हृदय) और रूह (आत्मा) द्वारा अपनी साधना पूर्ण करनी

hence the act of devoting oneself to the mystic life on becoming what is called in Islam a Sufi [1]

(घ) 'Sufism (Tasawwuf) is formed from the Arabic word Sufi, which was applied, in the Second Century of Islam to men or women who adopted an ascetic or quietistic way of life The word Sufi from Suf (wool) refers to garments worn by such persons' [2]

सूफी धर्म की व्याख्या विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से की है। अल गज़ाली के अनुसार परमात्मा के ध्यान में निरन्तर तल्लीन रहना उसमें सतत निवास करना और मानव समाज के साथ शान्तिमय जीवन व्यतीत करना ही सूफी धर्म का पालन करना है।[3] अबू सईद का कथन है कि ईश्वरीय विधि-निषेध में सन्तोष और दवीय घटनाओं के समय सवस्व समर्पण की भावना का परिचय देना ही सूफी धर्म है। इसी प्रकार कतिपय विद्वानों के अनुसार 'ससार के प्रति घृणा और परमात्मा के प्रति प्रेम',[4] कतिपय के अनुसार मनुष्य की वह महान् विरक्ति जो उस लोक परलोक में परमात्मा के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं दृष्टिपात करने नहीं देती [5] कतिपय के अनुसार अपने अस्तित्व की समाप्ति तथा परमात्मा की चेतना और उसमें निवास [6] और कतिपय के अनुसार अमून साधना ही सूफी धर्म है।

---

1 Shorter Encyclopaedia of Islam (Gibb and kramers 61), P 579

2 Encyclopaedia Britannica Vol 21, 1965, P 523

3 To be a Sufi he said means to abide continuously in God and to live at peace with men— —

—Al Ghazzali the mystic P 104

4 — —Sufism was the expression of a profound religious feeling — hatred of the world and love of the Lord"

—Abul Hasan Alnoori, A Literary History of the Arabs P 392

5 Tasawwuf is renunciation i e guarding oneself against seeing other than God in both the worlds

—Abu Bakar Shibli Islamic Sufism P 20

6 Tasawwuf is this that God should make thee die from thyself and should make thee live in Him

—Junayd, A Literary History of the Arabs P 392

उक्त समस्त व्याख्याओं से स्पष्ट है कि सूफी धर्म का मूल सिद्धान्त संसार के प्रति विरक्ति तथा परमात्मा के प्रति अनुरक्ति है।

'सूफी' शब्द की व्युत्पत्ति तथा सूफी धर्म की व्याख्या के समान ही सूफी धर्म के आविर्भाव काल एवं मूलस्रोत के विषय में भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। एक वर्ग के विचारकों की धारणा है कि आदम सबसे पहले सूफ़ी थे और सूफी धर्म का अस्तित्व सृष्टि के आदि काल से है। दूसरे वर्ग के विचारकों की मान्यता है कि प्रथम सूफी मसीह के शिष्य थे। अत सूफी धर्म का आविर्भाव ईसा मसीह के समय अर्थात् ईसवी सन् के प्रारम्भ के पूर्व ही हो गया था। तृतीय वर्ग के मनीषी सूफी मत को इस्लाम के विरुद्ध आर्य धर्म की प्रतिक्रिया मानते हुए उसका उद्भव इस्लाम धर्म के आविर्भाव के उत्तरवर्ती काल में मानते हैं। इसी प्रकार कतिपय विचारकों के अनुसार सूफी मत का उद्भव कुरान की रहस्यमयी उक्तियों से और कतिपय के अनुसार नव अफलातूनी मत से हुआ और कतिपय के अनुसार उसका इन सबसे परे सर्वथा स्वतन्त्र विकास हुआ। इसके अतिरिक्त कतिपय लोगों का कथन है कि सूफी मत का "आदम में बीजवपन नूह में अंकुर इब्राहीम में कली, मूसा में विकास, मसीह में परिपाक और मुहम्मद में मधु का फलागम हुआ।' कहने की आवश्यकता नहीं कि इस प्रकार विभिन्न विचारकों के अनुसार सूफी मत का आविर्भाव काल एवं मूलस्रोत भिन्न भिन्न है। किन्तु सम्यक विचार करने से विदित होता है कि सूफी धर्म का अस्तित्व न तो आदम के समय अथवा सृष्टि के आदिकाल से है और न ईसा मसीह के समय से। उसका आविर्भाव, वस्तुत, अनुदार इस्लाम धर्मावलम्बियों की विचारधारा एवं वृत्ति व्यापारों की प्रतिक्रिया तथा आर्य धर्म की सहानुभूति में, ईसा की दसवीं ग्यारहवीं शती में हुआ और तभी से उसका प्रचार व प्रसार होता रहा। सूफी मत का मूलाधार इश्क मजाजी (लौकिकप्रेम) था, जिसका *प्रारम्भिक अवस्था में, सामी जातियों* द्वारा पर्याप्त विरोध हुआ। सूफियों के अनुसार इश्क मजाजी (लौकिक प्रेम) इश्क हकीकी (अलौकिक अथवा आध्यात्मिक प्रेम) का प्रथम सोपान है। कभी कभी ये लोग किसी देवता के वश में होकर बोलने लग जाते थे। उनके इस बोलने को 'इलहाम' और 'इलहाम' *की दशा को हाल की संज्ञा से अभिहित किया गया है। सामियों* में एक गुह्य वर्ग था जो निरन्तर मद्यपान करता रहता था। सूफियों का प्रेम तत्त्व इसी गुह्य वर्ग की देन है। सूफी धर्म में मनुष्य के चार भाग माने गये हैं—(१) नफ्स (विषय भोग-वृत्ति या इन्द्रिय), (२) रूह (आत्मा), (३) कल्ब (हृदय) और (४) अक्ल (बुद्धि)।

सूफी सिद्धान्तों के अनुसार नफ्स के साथ युद्ध साधक का प्रथम लक्ष्य होना चाहिए और कल्ब (हृदय) और रूह (आत्मा) द्वारा अपनी साधना पूर्ण करनी

चाहिए। उनके अनुसार मानव अपनी अध्यात्म उन्नति में क्रमश: चार अवस्थाओं से होकर गुजरता है— 'शरीअत' अर्थात् धर्म-ग्रन्थों के विधि निषेध का सम्यक पालन अथवा कर्म काण्ड, 'तरीकत' अर्थात् बाह्य क्रिया कलाप से परे होकर केवल हृदय की शुद्धता द्वारा भगवान् का ध्यान अथवा उपासना काण्ड, 'हकीकत' अर्थात् भक्ति एवं उपासना के बल से सत्य का सम्यक ज्ञान अथवा ज्ञान काण्ड और 'मारफत' अर्थात् सिद्धावस्था जिसमें साधक की आत्मा परमात्मा में लीन हो जाती है। प्रसिद्ध सूफी कवि जायसी ने इन अवस्थाओं का उल्लेख अपने ग्रन्थ 'अखरावट' में इस प्रकार किया है।

\+ + + +

कही तरीकत चिश्ती पीरू। उधरित असरफ औ जहँगीरू।

\+ + + +

राह हकीकत परै न चूकी। पैठि मारफत मार बुड़की।

सूफियों का भारत में आगमन बारहवीं शताब्दी में हुआ। प्राचीनकाल में भारत एवं अरब में व्यापार सम्बन्ध अवश्य था, किन्तु सूफियों का भारतवर्ष में आगमन बारहवीं शताब्दी से पूर्व नहीं माना जा सकता। सूफी मत भारतवर्ष में चार सम्प्रदायों के रूप में आया —

(१) चिश्ती सम्प्रदाय (बारहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध) (२) सुहरावर्दी सम्प्रदाय (तेरहवीं शताब्दी पूर्वार्द्ध) (३) कादरी सम्प्रदाय (पन्द्रहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध) (४) नक्शबन्दी सम्प्रदाय (सोलहवीं शताब्दी उत्तरार्द्ध)। इन सम्प्रदायों का प्रचार अधिकतर तुर्किस्तान, ईराक, ईरान और अफगानिस्तान से विभिन्न सन्तों द्वारा भारतवर्ष में किया गया। ये सभी सम्प्रदाय अपने मूल सिद्धान्तों में प्राय: समान थे और धार्मिक तथा सामाजिक पक्षों में अत्यन्त उदार। परमात्मा की एकता (Unity of God) और सर्वोपरिता (Transcendental Godhood) इन सभी सम्प्रदायों में समान रूप से मान्य है। सामाजिक समता और एकता का धर्मों में विशेष महत्त्व है ऊँच-नीच जाति का कोई भेद भाव नहीं। इनमें चिश्ती सम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक ख्वाजा अबू अब्दुल्लाह चिश्ती और इसे भारत में लाने तथा प्रचारित

---

[१] जायसी, अखरावट, जायसी-ग्रन्थावली (शुक्ल) प० सं० पृ० ३११।

करने वाले सीस्तान के ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती सोहरावर्दी सम्प्रदाय को सवप्रथम भारत म प्रचारित करने वाल सैयद जलालुद्दीन सुखपोश (सन् ११९९–१२९१ ईसवी), कादरी सम्प्रदाय के प्रवतक बगदाद के शेख अब्दुल कादिर जीलानी (सन् १०७८–११६६ ईसवी) और भारत में प्रचारित करन वाले उनके वशज सयद बन्दगी मुहम्मद गौस और नक्शब दी सम्प्रदाय के आदि प्रवतक ख्वाजा बहा उल दीन नक्शबन्द और भारत म प्रचारित करने वाले ख्वाजा मुहम्मद बाकी बिल्लाह वैरग थे।

भारतवष म सूफी प्रेमाख्यानक काव्य की परम्परा का श्री गणेश मुल्ला दाऊद की कृति 'चदायन से हुआ। तदन तर कुछ काल तक यह काव्य धारा लुप्त प्राय रही। पुन इसका प्रारम्भ सन् १५०१ ई० म कुतुबन की मृगावती से हुआ। जायसी ने अपने सुप्रसिद्ध ग्र थ 'पदमावत' मे अपनी पूवकालीन प्रेमाख्यानक काव्य कृतियों का उल्लेख इस प्रकार किया है —

> बिक्रम धँसा प्रेम के बारा। सपनावति कहँ गयउ पतारा।
> मधू पाछ मुगधावति लागी। गगनपूर होइगा बरागी।
> राजकुँवर कचनपुर गयऊ। मिरगावति कहँ जोगी भयऊ।
> साध कुँवर खडावत जोगू। मधुमालति कर कीन्ह वियोगू।
> प्रेमावति कहँ सुरपुर साधा। ऊषा लगि अनिरुध बर बाँधा।[1]

उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि जायसी के 'पदमावत के पूव 'स्वप्नावती', 'मुग्धावती', 'मृगावती', खडरावती मधुमालती तथा 'प्रेमावती की रचना हो चुकी थी। इनमें 'मधुमालती (मभन) और मृगावती' (कुतुबन) उपलब्ध हैं, किन्तु अन्य कृतियों का पता अब तक नही चला। प्रेमावती के विषय म यह कहा जाता है कि सम्भवत वह रजन द्वारा रचित प्रेमबन जोव निरजन शीषक रचना की नायिका है।

इसके अन तर जायसी का विख्यात ग्र थ पदमावत आता है। तदन तर कतिपय अन्य सूफी प्रेमाख्यानक का य ग्रन्थों की रचना हुई जिनमें निम्नांकित उल्लेखनीय हैं —

आलम	माधवानल काम कन्दला	सन् १५९१ ई०
उसमान	चित्रावली	सन् १६१३ ई०

१ पदमावत, जायसी ग्रन्थावली (शुक्ल), प० स०, पृ० १००।

शेख नबी	ज्ञानदीप	सन् १६१६ ई०
जान कवि	कनकावती	सन् १६१८ ई०
,,	पुहुप बरिखा	सन् १६२१ ई०
,,	कामलता	सन् १६२२ ई०
,,	रतनावती एवं बुद्धिसागर	सन् १६३४ ई०
,,	छीता	सन् १६ ६ ई०
,,	रूपमंजरी	सन् १६३७ ई०
,,	कवलावती	सन् १६३६ ई०
,,	कथा कलंदर	सन् १६४५ ई०
,,	नल दमयन्ती	सन् १६५१ ई०
कासिमशाह	हंस जवाहिर	सन् १७२१ ई०
हुसैनअली	पुहुपावती	सन् १७३० ई०
नूरमुहम्मद	इन्द्रावती	सन् १७४४ ई०
फाजिलशाह	प्रेमरतन	सन् १८४८ ई०
शेख रहीम	भाषा प्रेमरस	सन् १९१५ ई०

इसके अतिरिक्त जान कवि कृत 'रतनमंजरी', 'कथा मोहिनी', 'कलावती', 'कथा तमीम अंसारी' तथा 'कथा रिजवानशाह', नेवाज की 'चौपाई', अली मुराद कृत 'कुंवरावत', नूर मुहम्मद कृत 'अनुराग बांसुरी', शेख निसार कृत 'यूसुफ जुलेखा', नजफ अली कृत 'प्रेम चिनगारी', अमी की 'प्रेम प्रकाश', [illegible] की 'फूलबन', तहसीनुद्दीन की 'किस्सए कामरूप व कला', हाशिमी की 'यूसुफ जुलेखा', ख्वाजा अहमद की 'नूरजहाँ' तथा नसीर की 'प्रेमदर्पण' आदि कतिपय अन्य छोटी मोटी कृतियों की भी रचना हुई है पर इनका कोई विशेष महत्त्व नहीं है।

मधुमालती की परम्परा —

मंझन कृत 'मधुमालती' के अतिरिक्त इस नाम के अथवा इससे मिलते-जुलते शीर्षक वाले कुछ अन्य प्रेमाख्यानक काव्य भी लिखे गये हैं जिनमें से कतिपय मंझन के पूर्व के हैं और कतिपय उनके बाद प्रत्यक्ष अनुसरण पर लिखे गये हैं जो न केवल हिन्दी में ही उपलब्ध हैं प्रत्युत बंगला, दक्खिनी तथा गुजराती में भी पाये जाते हैं। इनमें हिन्दी साहित्य में चतुर्भुजदास कृत 'मधुमालती' तथा जान कवि कृत 'मधुकर मालती' (सं० १६९१), बंगला-साहित्य में अमीर हामजा की 'मधुमालती' (सं० १८०६), मामूद का 'मधुमालती मनोहर' तथा मुहम्मद कबीर की

मधुमालती (स० १८१६ वि०), और दक्खिनी के प्रसिद्ध कवि नुसरती की 'गुलशने इश्क' आदि कृतियाँ उल्लेखनीय हैं। इनमें चतुर्भुजदास की मधुमालती का समय अभी निश्चित नहीं हो पाया है, यद्यपि उनके द्वारा लिखित मधुमालती की प्राचीनतम प्रति स० १७०७ की उपलब्ध हुई है। अत यह कथन कि उनके द्वारा रचित 'मधुमालती' मझनकृत 'मधुमालती' की पूर्ववर्ती रचना है, केवल अनुमान पर आधारित है। मधुमालती के इन विभिन्न रूपों की कथाओं में पर्याप्त वभिन्य है। बगला तथा गुजराती की कथाओं से न तो यहा कोई विशेष प्रयोजन है और न ही उनके उल्लेख के लिए यहा कोई स्थान ही। चतुर्भुजदास कृत 'मधुमालती', जान कवि कृत 'मधुकर मालती', नुसरती की 'गुलशने इश्क' तथा मझन कृत 'मधुमालती' की कथाएँ क्रमश इस प्रकार हैं —

(चतुर्भुजदास कृत मधुमालती)

यह कृति नीलावती नरेश चतुरसन की पुत्री मालती तथा उनके मन्त्री तारणशाह के पुत्र मधु (अथवा मनोहर) की प्रेम कहानी पर आधारित है। राजकुमारी मालती तथा मन्त्री-पुत्र मनोहर (मधु) दोनों एक पडित से पढते थे। राजकुमारी परदे के भीतर रहती थी और मनोहर बाहर। एक दिन पडित के न रहने पर दोनों का साक्षात्कार हुआ, किन्तु मन्त्री पुत्र और राजकुमारी का प्रेम-सम्बन्ध असम्भव होने के कारण मनोहर ने पढाई छोड दी और मालती से दूर रामसरोवर में नित्य जाकर गुलेल खेलने लगा। राजकुमारी को जब इस बात का पता लगा तो वह वहा भी पहुचने लगी। तदनन्तर राजकुमारी की सखी जतमाल ने दोनों के पूर्व जन्म की कथा कहकर उन्हें परस्पर मिलाया। किन्तु उनके प्रेम सम्बन्ध की सूचना जब माली द्वारा राजा को दी गई तो उसने क्रुद्ध होकर दोनों को मौत के घाट उतार देने का आदेश दिया। रानी को जब इस बात का पता चला तो उसने उन दोनों से कहला भेजा कि वे इस स्थान को छोडकर किसी अन्य देश को चले जाएँ। राजकुमारी तो स्थान छोडने को तैयार हो गई, किन्तु मधु नही माना। उसने राजा द्वारा भेजी गई सेना को गुलेलों से मार कर नष्ट भ्रष्ट कर दिया। अन्तत जब राजा स्वय लडने के लिए आया तो राजकुमारी की प्रार्थना से प्रसन्न होकर शिव तथा केशव भगवान् ने मधु की सहायता के लिए भारड पक्षी तथा सिंह भेजे। मधु को विजय मिली और राजा ने हार मानकर दोनों का विवाह कर दिया।

(ख) ज्ञान कवि कृत मधुमालती —

इस कृति में अयोध्या के सौदागर रतन के पुत्र मधुकर तथा मालती नाम की युवती की प्रेम-कहानी वर्णित है। दोनों एक पाठशाला में पढ़ते थे जहाँ उनमें प्रेम हो गया, किन्तु कुछ समय के अनन्तर मालती के पिता ने उसे घर ही पर पढ़ाना उचित समझ कर पाठशाला से एक अध्यापक को माँग लिया। संयोगवश मधुकर को ही उसकी पुत्री को पढ़ाने का काम मिला। किन्तु जब मधुकर के पिता को उनके इस प्रेम सम्बन्ध की सूचना मिली तो वह उसे लेकर अन्यत्र चला गया। उधर मालती एक बादशाह द्वारा दासी बनाने के लिए खरीद ली गई। पिता की मृत्यु के अनन्तर जब मधुकर स्वदेश लौटा और उसे ज्ञात हुआ कि मालती बिक गई है तो वह उस वजीर के यहाँ गया, जहाँ मालती शाही कार्य को अस्वीकार करने के कारण यातना भोग रही थी। अन्तत वजीर ने परेशान होकर मालती को तुर्किस्तान के सुलतान को दे दिया पर जब सुलतान जहाज द्वारा मालती को लेकर चला तो मधुकर भी उसके साथ हो लिया। अन्त में बादशाह ने, जिसने कि पाँच रत्न लेकर मालती को खरीदा था मालती को मधुकर को दे दिया किन्तु मधुकर द्वारा रत्नों की अदायगी न की जा सकने के कारण उसे उसने कारागार में डलवा दिया। संयोगवश जब एक दिन उसे, नित्य प्रति के भोजन में मिलने वाली मछली के भीतर पाँच रत्न मिल गये तो उसने उन्हें बादशाह को भेंट करके मालती को वापस लिया। तदनन्तर दोनों एक नाव पर बैठकर स्वदेश के लिए रवाना हुए किन्तु नाव टूटने के कारण दोनों पुन पृथक-पृथक हो गये।

संयोग से दोनों किसी प्रकार किनारे लगकर बंगाल पहुँचे किन्तु एक दूसरे की खोज या पहिचान न पाये। अन्त में बादशाह हाजी रशीद को जब उनके प्रणय सम्बन्धों का पता चला तो उसने उन दोनों का विवाह करवा कर उन्हें अयोध्या पहुँचवा दिया।

(ग) नुसरती कृत 'गुलशने इश्क' —

इस कृति का आधार राजकुमार मनोहर तथा राजकुमारी मधुमालती की प्रेम-कहानी है। शत्रु के बन्दीगृह में पड़ी राजकुमारी चंपावती अपने उद्धारकर्ता राजकुमार मनोहर से प्रेम करने लगती है। किन्तु चंपावती की माँ यह जानकर कि मनोहर उनके अधीन किसी अन्य राजा की पुत्री मधुमालती पर आसक्त है, उसके उपकार का बदला चुकाने के लिए, मधुमालती की माँ को अपने यहाँ बुला भेजती है। मधुमालती की माँ उसको साथ लेकर उनके यहाँ आती है और चंपावती से बातें करने में लग जाती है। इधर चंपावती मधुमालती को अपनी वाटिका दिखाने ले जाती है जहाँ वह उस को अपने उद्धार की कथा सुनाती है और कहती है कि उसी के प्रेमी

मनोहर ने उसका उद्धार किया है। मधुमालती यह सुनकर लज्जित हो जाती है। तदनंतर वह उसे मनोहर की एक अंगूठी दिखाता है और स्वयं अपनी प्रेम कहानी कह सुनाती है।

मझनकृत मधुमालती—

मझनकृत मधुमालती कनकगिरि के सूर्यवंशी राजा सूर्यभानु के यशस्वी पुत्र राजकुमार मनोहर तथा महारस नगर के गंधर्व राजा विक्रमसेन की पुत्री राजकुमारी मधुमालती की प्रेम कहानी पर आधारित है। प्रासंगिक कथा के नायक-नायिका राजकुमार ताराचंद तथा राजकुमारी प्रेमा हैं। ताराचंद पौनेर गढ़ (पद्म नगर) का यशस्वी युवक राजा है और राजकुमारी प्रेमा चितबिसराव (चित्तविश्राम) नगर के राजा चित्रसेन की पुत्री है।

राजा सूर्यभानु प्रतापी एवं तेजस्वी राजा थे किंतु आयु अधिक हो जाने पर भी उनके कोई संतान नहीं थी। कुछ समय के अनंतर एक समाधिस्थ तपस्वी का बारह वर्ष तक सेवा करके राजा ने उससे एक पिंड प्राप्त किया और उसके आदेशानुसार अपनी सर्वाधिक प्रिय रानी कमलावती को उसे खिलाया। फलतः यथासमय उसके एक सर्वगुण सम्पन्न पुत्र हुआ जिसका नाम उनने मनोहर रखा।

कालांतर में राजा मनोहर को राजसिंहासन देकर स्वयं राजकार्य के उत्तरदायित्व से मुक्त हो गये। किंतु ज्योतिषियों की भविष्यवाणी के अनुसार एक दिन नाटक अभिनय को देखकर सोये हुए राजकुमार मनोहर के रूप वैभव से मंत्र मुग्ध होकर, अप्सराओं ने यह निश्चय किया कि उसकी जोड़ी मनोविष को सर्वाधिक सुंदरी राजकुमारी से मिलानी चाहिए। परिणामतः उन्होंने उसका पलंग उठाकर राजकुमारी मधुमालती के शयन कक्ष में उसके पलंग के पास डाल दिया। राजकुमार ने जागने पर जब राजकुमारी का अभूतपूर्व रूप-लावण्य देखा तो वह उस पर आसक्त हो गया और उसके अंग प्रत्यंगों की शोभा का साक्षात्कार कर अपने को धन्य समझने लगा। राजकुमारी की जब आँख खुली तो अपने समीप ही एक दूसरे पलंग पर उस अपरिचित राजकुमार को देखकर वह पहले तो डरी किंतु बाद में उसने उससे उसका परिचय पूछा। दोनों का परिचय हुआ और राजकुमार ने राजकुमारी को अपने जन्म जन्मांतर के प्रेम सम्बन्धों का स्मरण कराया। तदनंतर दोनों ने अपने आजीवन प्रेम निर्वाह की शपथें खाईं और मुद्रिकाएं बदलीं। इसके उपरांत दोनों एक दूसरे से प्रेम की समस्त तन्मयता के साथ मिलते रहे और अंततः शय्या बदल कर सो गये।

अप्सरायें जो राजकुमार को पलंग सहित मधुमालती के शयन कक्ष में डालकर 'लगरात' मेंगन चली गई थी लौटकर आई तो उन्होंने राजकुमार को पुन पलंग सहित उठाकर उसके घर पहुँचा दिया। जागने पर राजकुमार मधुमालती को न पाकर बचन हो उठा और विरह विह्वलता से उसकी दशा शोचनीय हो गई। वैद्य बुलाये गये किन्तु उनकी समझ में कुछ नहीं आया। पुन राजा के एक महामात्य ने, जो बड़ा बुद्धिमान् एवं ज्ञानी था, उसकी विरह-दशा को समझकर उसे समझाने बुझाने का प्रयत्न किया, किन्तु राजकुमार पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। राजा और रानी उसकी शोचनीय स्थिति को देखकर बड़े दुःखी हुए। उन्होंने राजकुमार से, जो उनसे अपनी प्रेमिका को खोजने के लिए जाने की आज्ञा माँग रहा था, अपनी वृद्धावस्था की ओर संकेत करते तथा उसके पैरों में गिरकर, घर छोड़कर न जाने के लिए अनुनय विनय किया, किन्तु विरह विह्वलता के कारण राजकुमार के कानों में उनका एक शब्द तक न गया। अन्तत उसने योगी का वेश बनाया और अपनी प्रेमिका मधुमालती को खोजने के लिए चल पड़ा। मार्ग में बहुत समय तक चलने के बाद वह एक समुद्र के किनारे पहुँचा। राजा की आज्ञा से वह अपने दल-बल के साथ आया था। अत उसने उसके साथ एक बड़े जहाज़ पर चढ़कर प्रस्थान किया। चार मास तक चलने के अनन्तर एक दिन, जहाज़ पथ भ्रष्ट हो जाने के कारण समुद्र की भँवर में पड़कर नष्ट हो गया। इष्ट मित्र, जन-परिजन तथा सेना आदि समुद्र में डूब गई, किन्तु राजकुमार एक लकड़ी के तख्ते का सहारा पाकर किनारे पर जा लगा। होश आने पर उसने स्वयं को समुद्र तटवर्ती एक भयंकर वन में पाया। कुमार पुन मधुमालती की खोज में चल पड़ा। चलते चलते वह दूसरे दिन जब वन की एक चौखण्डी को देखकर उसके भीतर पहुँचा तो एक सुषुप्ता सुन्दरी को देखकर आश्चर्य स्तब्ध हो उठा। युवती के जागने पर दोनों का परिचय हुआ। राजकुमारी से यह जानकर कि वह चित्तविश्राम नगर के राजा चित्रसेन की पुत्री प्रेमा है, जिसे एक वर्ष पूर्व एक राक्षस उठा लाया था, *राजकुमार मनोहर पहले तो डरकर वहाँ से चलने को उद्यत हुआ, किन्तु राज-*कुमारी जब उसके पैरों पर गिरकर रोने लगी तो उसका हृदय करुणा विह्वल हो उठा और उसने, राक्षस को मारकर उसका उद्धार करने का संकल्प किया। *तदनन्तर उसने राजकुमारी से अस्त्र शस्त्र लिए और राक्षस को मारकर उसका उद्धार किया।*

इसके उपरान्त मनोहर तथा प्रेमा दोनों चित्तविश्राम नगर पहुँचे। राजा चित्रसेन तथा रानी मधुरा राक्षस द्वारा अपहृता अपनी कन्या को, एक वर्ष बाद, पाकर बड़े प्रसन्न हुए और उसके उद्धारकर्ता मनोहर के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए

उससे अपनी पुत्री प्रेमा के साथ विवाह करने का प्रस्ताव किया। किन्तु राजकुमार ने उसे यह कह कर अस्वीकार कर दिया कि प्रेमा उसकी बहन है।

चार पाच दिन के उपरान्त जब मधुमालती अपनी माता रूपमजरी के साथ प्रेमा के यहा आई तो प्रेमा न मधुमालती को मनोहर से अपनी वाटिका की चित्रसारी में मिलाया जहाँ दोनों रात भर एक शय्या पर सोते रहे। रूपमजरी ने जब देखा कि मधुमालती वाटिका से लौटकर नही आई तो उसे चिंता हुई और वह चित्रसारी पहुँची। किन्तु वहाँ जाकर जब उसने मधुमालती को मनोहर के साथ सोते देखा तो वह क्रुद्ध होकर प्रेमा को बुरा भला कहने लगी। प्रेमा ने रूपमजरी से दोनों के पूर्व प्रेम की कथा कह सुनाई और साथ ही यह भी कहा कि मधुमालती गगाजल के समान पवित्र है। किन्तु रानी का क्रोध शात नही हुआ और उसने अपनी सखियों को आज्ञा देकर मनोहर को कनकगिरि और मधुमालती को महारस नगर पहुँचवा दिया। जागने पर दोनों ने जब अपने को अपने प्रेम पात्र से पृथक् पाया तो उनकी दशा अत्यधिक शोचनीय हो गई। रानी ने अपनी पुत्री मधुमालती को बहुत समझाया, पर उस पर उसका कोई प्रभाव नही पडा। अन्तत उसने मन्त्र पढकर तथा चुल्लू भर पानी छिडक कर मधुमालती को पक्षी बना दिया।

पक्षी का रूप पाते ही मधुमालती राजकुमार की खोज के लिए उड चली और एक वर्ष तक वन पर्वत, गिरि-कन्दरा एव देश विदेश मे घूमकर तथा विभिन्न ऋतुओ मे वृक्षों पर बसेरा करके, अनेक कष्ट सहन करके उसे खोजती रही किन्तु सफल न हुई। एक दिन चीतेर गढ के राजा ताराचन्द ने उसे पकड लिया और तीन दिन तक उसके कुछ न खाने पर स्वय भी उसके साथ उपवास करता रहा। अन्तत जब उसे उससे उसकी कहानी ज्ञात हुई, तो वह उसे लेकर राजकुमार मनोहर से मिलाने की प्रतिज्ञा करके महारसनगर पहुँचा, जहाँ मधुमालती को रानी ने पुन नारी रूप मे परिवर्तित कर दिया।

अब राजा तथा रानी ने उपयुक्त वर देखकर, ताराचन्द से मधुमालती के साथ उसके विवाह का प्रस्ताव किया, किन्तु राजकुमार के यह कहने पर कि मधुमालती उसकी भगिनी है और उसका विवाह वह मनोहर से करायेगा, उन्होंने प्रेमा के पास सदेश भेजकर मधुमालती और मनोहर के विवाह का प्रस्ताव किया। जब प्रेमा को यह सदेश मिला और सयोगवश राजकुमार भी योगीवेश मे मधुमालती को खोजता हुआ उसके पास पहुँच गया तो उसने, मधुमालती के पिता राजा विक्रमसेन के पास सन्देश भेजकर उन्हे इष्ट मित्र जन परिजन एव दल बल सहित बुलवा लिया और मधुमालती और मनोहर का विवाह करवा दिया।

विवाह के उपरान्त मनोहर ताराचन्द को अपने साथ ले आया और दोनों ही राजकुमार मित्रों की भांति रहने लगे। एक दिन, जब चित्रसारी में प्रेमा अपनी सखियों के साथ झूला झूल रही थी ताराचन्द की दृष्टि उस पर पड़ गई और उसके रूप लावण्य को देखकर वह मूर्च्छित हो गया। मधुमालती को जब इस बात की सूचना मिली तो तुरन्त ही वह ताराचन्द के पास पहुँची। अन्त में, चेतना-लाभ करने पर जब ताराचन्द ने मधुमालती को अपने मूर्च्छित होने का कारण बताया तो उसने उसका विवाह प्रेमा से करवा दिया।

कुछ समय तक दोनों मित्र अपनी पत्नियों के साथ प्रेमपूर्वक रहते रहे। किन्तु शरद् ऋतु आने पर उन्होंने राजा चित्रसेन तथा विक्रमराज से अपने घर के लिए प्रस्थान की आज्ञा मांगी। दोनों राजकुमारियां विदा हुईं और कुछ समय तक साथ साथ चलकर ताराचन्द तथा मनोहर के जब भिन्न भिन्न मार्ग ग्रहण करने का समय आया, तो राजकुमारियां तथा राजकुमार सभी एक दूसरे से मिलकर विदा हुए। मनोहर मधुमालती को लेकर जब कनकगिरि पहुँचा, तो राजा सूर्यभानु और रानी कमलावती के हर्ष की सीमा न रही।

उक्त चारों कथाओं की तुलना से ज्ञात होता है कि उनमें समानता केवल नाम मात्र की है। मंझन कृत 'मधुमालती' तथा 'गुलशने इश्क' की कथा में किंचित् साम्य अवश्य है, पर परवर्ती रचना होने के कारण उससे मंझन की महत्ता पर कोई आंच नहीं आती क्योंकि मंझन उनके ऋणी नहीं हैं, नुसरत इश्कदार भले ही उनका ऋणी हो। जान कवि की कृति 'मधुकरमालती' भी परवर्ती रचना है। अतः उसके विषय में भी यही कहा जा सकता है। चतुर्भुजदास की 'मधुमालती' पूर्ववर्ती रचना है इस विषय का भी कोई निश्चित प्रमाण नहीं दिया जा सकता। मंझन कृत 'मधुमालती' की रचना सन् ९५२ हिजरी अर्थात् सन् १५४५ ई० में हुई जब कि चतुर्भुजदास कृत मधुमालती की प्राचीनतम प्रति सन् १६५० ई० की है। इसके अतिरिक्त उसकी कथा भी मंझन कृत मधुमालती की कथा से सर्वथा भिन्न है। साथ ही कवित्व शक्ति एवं सौन्दर्य सृष्टि की दृष्टि से भी मंझन का महत्व उक्त समाख्यानक कवियों की अपेक्षा कहीं अधिक है।

प्रवृत्तियाँ तथा विशेषताएँ

हिन्दी सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता उनका प्रेम चित्रण है। प्रेम का महत्त्व इन कवियों की दृष्टि में अपरिमेय है। वही इनकी साधना है और वही इनका लक्ष्य। मझन के शब्दों में प्रेम संसार का बहुमूल्य रत्न है। जिसने उसे प्राप्त कर लिया, उसका जीवन धन्य है। वही विधाता की सृष्टि का मूल कारण है और उसी की सार्थकता के लिए वह संसार में प्रकट होता है। प्रेम की दिव्य ज्योति से ही यह सृष्टि देदीप्यमान है। उसका साक्षी अन्य कोई नहीं। विरला ही कोई भाग्यवान उसके सौभाग्य को प्राप्त करता है। प्रेम के मार्ग में जो अपने सिर की बलि देता है, वह राजा होता है —

> पेम अमोलिक नग संसारा। जेहि जिअ प्रेम सो धनि औतारा।
>
> पेम लागि संसार उपावा। पेम गहा विधि परगट आवा।
>
> \+ + + +
>
> सबद ऊँच चारिहु जुग बाजा। पेम पंथ सिर देइ सो राजा।[1]

जिसके अंतःकरण में प्रेम का दीपक जलता है उसके लिए आदि और अंत दोनों ही प्रकाशपूर्ण हो जाते हैं। प्रेम की चिता पर चढ़ कर प्राणी को अपने प्राणों का लोभ नहीं करना चाहिए क्योंकि उसका जो जीव अपने प्रिय के निमित्त लग जाता है वह इस लोक और परलोक दोनों ही में शोभायमान होता है —

> मझन चढ़ि कै पेम सर करै न जिय कर लोभ।
>
> पीतम काज जो जिउ घट सो जीउ दुनहु जग सोभ।[2]

इस सृष्टि में मानव अनेकानेक यत्न करके भी जो अमरत्व प्राप्त नहीं कर पाता, प्रेम-मार्ग पर चल कर उसकी उसे सहज उपलब्धि हो जाती है। प्रेम की आँच सहन करने वाला प्रेम मार्ग में चल कर अपने प्राणों की बलि देने वाला मृत्यु फल को अमृत के रूप में प्राप्त कर, अमरत्व को प्राप्त होता है। अतः काल भय से भीत प्राणी को चाहिए कि वह प्रेम की शरण शाला में आकर अपना जीवन तथा जन्म सार्थक बनाये —

---

१ मधुमालती (डा० गुप्त, राज स०), पृ० २४।

२ वही, पृ० ३२३।

एक बार जो मरि जिउ पावै । काल कबूरि तेहि नियर न आव ।
मिरितुक फल अमित होइ गया । निरभै अमर ताहि कै कया ।
जो जिउ जानहि काल भौ पम सरन कर नम ।
फौट मुई जग काल सौ मरन मारि जग पम ।।[1]

प्रेम मार्ग का यह महत्त्व निश्चय प्राय सभी प्रेमाख्यानक सूफी कवियों की विशेषता है । प्रेम के अपार एवं अगाध क्षीर समुद्र को पार करने वाले मनुष्य 'जीव' सत्ता का त्यागकर आत्मस्वरूप को प्राप्त हो, मुक्त हो जाते हैं ।[2] प्रेम मार्ग पर चलने वाले प्राणी को न तो स्वर्ग के ऐश्वर्य-वैभव की कामना होती है और न नरक का भय—

ना हौं मरग क चाहौं राजू । ना मोहि नरक सेंति किछु काजू
चाहौं ओहि कर दरसन पावा । जेइ मोहि आनि प्रेम पथ लावा ।[3]

मनुष्य के हृदय में यदि प्रेम की चिनगारी पड़ जाय और सुलगाते बन पड़े तो फिर उससे ऐसी अद्भुत अग्नि प्रज्वलित हो सकती है, जिससे पृथ्वी तथा आकाश सभी भयभीत हो उठें —

मुहमद चिनगी प्रेम कै सुनि महि गगन डेराय ।
धनि विरही औ धनि हिया, जहँ अस अगिनि समाय ।।

सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता विरह का महत्त्व प्रदर्शन है । विरह का अस्तित्व यद्यपि सृष्टि के आदि काल से है तथापि इसकी प्राप्ति जीवको बिना पूर्व पुण्यों के नहीं होती । जिसके शरीर में विरहपूर्ण जीव होता है, वह विरह के मार्ग में सहस्रों बार मर कर भी अमर हो जाता है । किन्तु विरह की भावना और सिद्धि आध्यात्मिक कष्टों से प्राप्त नहीं होती करुणासागर परमात्मा जिसको देता है वही उस महान् निधि को प्राप्त करता है ।

१ मधुमालती (डा० गुप्त राज स०), पृ० ४८१ ।

२ जो एहि खीर समुद मन्हँ पर । जीव गँवाइ हम होइ तरे ।
—जायसी 'पदमावत जायसी-ग्र० (गुप्त) प० स०, पृ० ६० ।

३ वही वही वही, वही, पृ० ६६ ।

विरह जीउ जेहि के घट होई । सदा अमर रहै मरै न कोई ।
कौनों पाठ पढे नहिं पाइय विरह बुद्धि औ सिद्धि ।
जा कहँ देइ दयाल दया करि सो पावै यह निद्धि ।।[1]

उस व्यक्ति का जीवन धन्य है जो विरह पर न्योछावर हो जाता है ।
जिस प्रकार आकाश के मेघ मण्डल की समस्त बूँदें मोती नही बनतीं, उसी प्रकार विरह भी सभी जीवो के अंत करण मे अपनी ज्योति का प्रकाश नही फैलाता । करोड़ों जीवों म कोई विरला ही ऐसा होता है जिसके शरीर में वियोग दु ख का आविर्भाव होता है । रत्न जिस प्रकार प्रत्येक सागर मे नही होते, गजमुक्ता जिस प्रकार प्रत्येक हाथी मे नही होते, चन्दन जिस प्रकार प्रत्येक वन मे नही होता, विरह का दु ख भी उसी प्रकार प्रत्येक प्राणी के शरीर म नही होता —

\+ \+ \+ \+

कोटि माहिं विरला जग कोई । जाहि सरीर विरह दुख होई ।
रतन कि सायर सायरहिं गज मुकुता गज कोइ ।
चन्दन कि बन बन उपनै, विरह कि तन तन होइ ।।[2]

जिसके अ त करण में परमात्मा विरह उत्पन्न करता है निश्चय ही वह तीनों भुवनों का राजा होता है । विरह ससार म अमृत मूल है । जीवन में जो उसे पा लेता है, वह युग युग के लिए अमर हो जाता है काल भी उसके पास नही आता । जिसने विरह वृक्ष का अपने अन्त करण मे आरोपण करके नेत्र खोले उसके लिए तीनों लोक प्रकाशपूर्ण हैं, और जिसके हृदय मे विरह की अग्नि नही लगी, उसका जीवन व्यर्थ है । इस भूतल में जन्म लेकर जिसने विरह से अनुराग नही किया, वह उस सूने घर के 'पाहुने' के सदृश है जो जैसा आता है वैसा ही लौट जाता है —

मझन एहि जग जनमि क विरह न कीता चाउ ।
सूने घर का पाहुना जेउ आया तेउ जाउ ।।[3]

---

१ मधुमालती (डॉ० गुप्त राज स०) पृ० २५ ।
२ वही, पृ० १६६ ।
३ वही पृ० २०० ।

इन काव्यों की तीसरी प्रमुख विशेषता दुःख के महत्व का गान है। सूफी कवियों के अनुसार दुःख जीवन की अनिवार्य आवश्यकता है। उसके वरदहस्त को पाकर मानव जीवन धन्य हो जाता है। अपने प्रेम पात्र के लिए दुःख को सहन करने वाला प्राणी भविष्य में दस गुना सुख प्राप्त करता है। जीव को एक सुख के लिए सहस्र दुःख सहन करने पड़ते हैं और विरह का एक दुःख सहस्रों सुखों की सृष्टि करता है।[1] विरह की दावाग्नि जिसके अन्तस् में प्रज्वलित हो वह यदि भस्म जल न मरे, तो बड़ा ही अभागा है। विवेकशील प्राणी विरह-दुःख को दुःख न मानकर सुख मानता है। विरह का जो साधक मृत्यु का वरण करने पर नहीं रखता वह प्रेमामृत रूपी सुरस का स्वाद कभी नहीं चख पाता। विरह मार्ग का पथिक पहले से ही अपना सिर काट कर हाथ में रख लेता है, तदनन्तर वह उस मार्ग पर अग्रसर होता है —

> जिउ बरि मींचु धर नहिं पाऊ। पेम अमिय पर चाख न काऊ।
> प्रथमहिं सीस हाथ के लेई। पाछे ओहि मारग पगु देई।[2]

कहने की आवश्यकता नहीं कि वियोग-दुःख के इस महत्वाभिव्यंजन में कष्ट सहिष्णुता का महत्व स्वतः अन्तर्भूत है। कष्ट सहिष्णुता, त्याग एवं बलिदान प्रेम-योगी की अनिवार्य विशेषताएँ हैं जिनके अभाव में वह अपनी लक्ष्य प्राप्ति में सफल नहीं हो सकता। सूफी प्रेमाख्यानक काव्य के नायक राजकुमार मनोहर तथा राजा रत्नसेन की प्रेम साधना की सफलता का श्रेय उनकी इन्हीं विशेषताओं को है।

इस काव्य धारा की चौथी महत्वपूर्ण विशेषता लौकिक से अलौकिक की व्यंजना, स्थूल से सूक्ष्म की अभिव्यक्ति तथा आध्यात्मिक एवं रहस्यवादी संकेत हैं। भावना की कठोरता तथा साधक की अनन्यता आत्मविश्वास एवं अविचल धैर्य आदि विशेषताएँ मानव-सामर्थ्य की अभिव्यंजक हैं। साधक पुरुष जीवात्मा और साध्या नायिका परमात्मा के प्रतीक रूप में प्रस्तुत की जाती है। प्रेम योगी साधक

---

१ मधुमालती (डॉ० गुप्त, राज सं०) पृ० २६६।

२ वही, पृ० १६८।

का माग विघ्न बाधाओं से आपूर्ण रहता है—विघ्नो के पहाड़, नदी नाले एव पवत-कन्दराए तथा काम, क्रोध, मोह एव लोभादि बटमार अथवा डाकू उस प्रेम-पथ मे विचलित करते है, किन्तु अपने अविचल धय एव अडिग आत्म विश्वास के कारण वह अपनी साधना में सफल हुए बिना नहीं रहता --

> ओहि मिलान जो पहुच कोई। तब हम कहब पुरुष भल सोई।
> है आग परबत क बाटा। विषम पहार अगम सुठि घाटा।
> बिच बिच नदी खोह ओ नारा। ठावहि ठाँव बठ बटमारा।[1]

रहस्यवादकी सुन्दर सरस एव मार्मिक अभिव्यक्ति इस काव्य धारा की पचम विशेषता है। ब्रह्म सत्य जगत् मिथ्या क सिद्धान्त को आधार मानकर चलने तथा रागात्मक अनुभूति के नितान्त अभाव के कारण सत कवियों का रहस्यवाद जहाँ शुष्क एव नीरस हे वहाँ सूफियो के रहस्यवाद में, अद्वैतवादी आधार भूमि के होने हुए भी जगत् को सत्य मानकर चलने प्रेम कहानियों द्वारा व्यक्त म अव्यक्त का सकेत देन *तथा मानव मन की सूक्ष्म, मार्मिक एव मधुर भावनाओं की अभिव्यक्ति के कारण* आई हुई सरसता देखते ही बनती है।

सूफी प्रेमाख्यानक का या की छठी महत्त्वपूर्ण विशेषता प्रेम योगी साधक की साधना म गुरु का योग तथा उसका महत्त्व प्रदशन है। साधक को पथ भ्रष्ट करने वाल शैतान द्वारा जहाँ उसके माग में व्यवधान उपस्थित किया जाता है, वहाँ उसके कल्याण कामी गुरु की महत्ता एव निर्देशो से उसके माग की बाधाओं का निराकरण भी हो जाता है। कहने की आवश्यकता नही कि गुरु का महत्त्व इन कवियों की दृष्टि म किसी भी सत अथवा भक्त कवि से कम नही। जायसी द्वारा अपने गुरु शेख मुहम्मद गौस की महत्ता की अभिव्यक्ति इसका उत्कृष्ट उदाहरण है।

इस का य धारा की सातवी प्रमुख विशेषता इसके काव्य ग्र थो का फारसी मसनवी शली म लिखा जाना है। मसनवी शली के अनुसार इनम प्रारम्भिक

---

१ जायसी, पदमावत', जायसी-ग्र ० (शुक्ल), प० स०, पृ० ५७।

मंगलाचरण में ईश्वर मुहम्मद एवं समकालीनों की वंदना तथा गुरु एवं शाहे वक्त की प्रशंसा है, कथा का विभाजन भारतीय चरित-काव्यों के समान सर्गों में न होकर खण्डों में है और खण्डों के नाम विषय-वस्तु के आधार पर हैं। इसके अतिरिक्त प्रेम-पद्धति, कथानक रूढ़ियों तथा अन्य कतिपय बातों में भी उन पर फ़ारसी मसनवी शैली का प्रभाव है यद्यपि भारतीय प्रभाव भी उन पर कम नहीं है। भारतीय कथाओं में प्रयुक्त कथानक रूढ़ियों का भी उनमें पर्याप्त प्रयोग हुआ है। चित्र-दर्शन स्वप्न-दर्शन अथवा शुक-सारिका आदि द्वारा किसी सुन्दरी नायिका के रूप-सौंदर्य का वर्णन सुनकर उस पर आसक्त होना, मन्दिर अथवा चित्रशाला में प्रिय युगल का मिलन होना आदि भारतीय कथानक-रूढ़ियों का प्राय सभी में प्रयोग मिलता है।

इन प्रेम-गाथाओं की आठवीं प्रमुख विशेषता इनके रचयिताओं का उदार एवं उदात्त दृष्टिकोण है। इनके कर्ता प्राय सभी उदार मुसलमान हैं जिन्हें हिन्दू धर्म का पर्याप्त सामान्य ज्ञान है। हिन्दू धर्म के सिद्धान्तों तथा उसके अनुयायी हिन्दुओं के आचार विचार, रहन-सहन तथा उनकी सभ्यता एवं संस्कृति का स्वाभाविक वर्णन इनकी महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

सूफ़ी कवियों की प्राय सभी प्रेम-गाथाएँ हिन्दू घरों की प्रेम कहानियों पर आधारित हैं। इतिहास तथा कल्पना का मणि कांचन संयोग इनकी महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

प्राय सभी सूफ़ी प्रेमाख्यानों की नायिकाएँ परमात्मा की प्रतीक रूपा हैं। अत कवियों ने उनका सौन्दर्य-वर्णन भी खुलकर किया है। इनके अतिशयोक्ति-पूर्ण वर्णनों का प्रमुख कारण नायिकाओं का यही दैवी रूप है जिसका ध्यान न रखने वाले पाठकों को उनके नख शिख-वर्णन में अस्वाभाविकता की गन्ध प्रतीत होती है। नायिकाओं की इसी महत्ता तथा दैवी रूप के कारण प्राय सभी कवियों में उन्हें प्रधानता मिली है और यही कारण है कि उनका नामकरण भी प्राय उन्हीं के नाम के आधार पर किया गया है। केवल कुछ ही काव्य-ग्रन्थ ऐसे हैं जिनका नामकरण नायक तथा नायिका दोनों के ही नाम के आधार पर हुआ है।

प्राय सभी कृतियों की यह विशेषता है कि प्रकृति-वर्णन अधिकतर उद्दीपन एव आलकारिक रूप मे हुआ है। उसके अन्य रूपों का चित्रण प्राय बहुत कम है। षटऋतु वर्णन तथा बारहमासे की योजना प्राय सभी सूफी कवियों ने की है।

सूफी सिद्धान्तों का समावेश प्राय सभी प्रेम-गाथाओं में हुआ है। इश्क मजाजी और इश्क हकीकी प्रेम-रूपो, शरीअत, तरीकत, हकीकत और मारफत अवस्थाओं तथा अन्य सूफी सिद्धान्तों का अन्तर्भाव इन कृतियों की महत्वपूर्ण विशेषता है।

प्राय सभी सूफ़ी कवि बहुज्ञ हैं। हठ-योग, ज्योतिष तथा कोक शास्त्र सम्बन्धी इन कृतियो के वर्णन इनके रचयिताओं की बहुज्ञता के द्योतक हैं।

भारतीय अद्वैतवाद तथा जन्मान्तरवाद का प्रभाव प्राय सभी कृतियों में पाया जाता है। 'पदमावत' का सुआ पूर्व जन्म का पडित था। 'मधुमालती' के नायक राजकुमार मनोहर तथा नायिका मधुमालती का प्रेम-सम्बन्ध जन्म जन्मान्तर से चला आया है।[1]

प्राय सभी काव्यों की भाषा तत्कालीन ठेठ अवधी है, जिसका सहज स्वाभाविक रूप तथा उससे उद्भूत माधुर्य गुण पाठक के हृदय को बरबस आकृष्ट कर लेता है। दोहा तथा चौपाई छन्दों का प्रयोग प्राय सभी सूफी प्रमाख्यानक काव्यों में समान रूप से हुआ है। ये दोनो ही छन्द अवधी भाषा के अपने छन्द हैं और उसके लिए ये कितने उपयुक्त हैं, यह गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस से सिद्ध है।

प्रतीक एव उपमान-योजना की दृष्टि से भी इन सभी काव्यों में पर्याप्त साम्य है। प्रतीक तथा उपमान प्राय सभी कवियो के अधिकाशत परम्पराभुक्त हैं फिर भी उनमे यत्र-तत्र नवीनता तथा मौलिकता के भी दर्शन होते हैं। 'पदमावत' तथा 'मधुमालती' का कलापक्ष इस दृष्टि से अन्य कृतियो की अपेक्षा कहीं अधिक उत्कृष्ट है।

सौन्दर्य सृष्टि प्राय सभी कृतिकारों का उद्देश्य है, किन्तु अधिकांश कृतियों में आन्तरिक सौन्दर्य कुछ उपेक्षित सा रहा है। केवल मझन जैसे कुछ

१ मधुमालती (डॉ० गुप्त, राज स०), पृ० ६४।